PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

प्रो. आशुरानी
कुलपति, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

वेन होमगगम धम्मानंद तेरो
चेअर प्रोफेसर उपकुलपति
बौद्ध तथा पाली विश्वविद्यालय, कोलम्बो

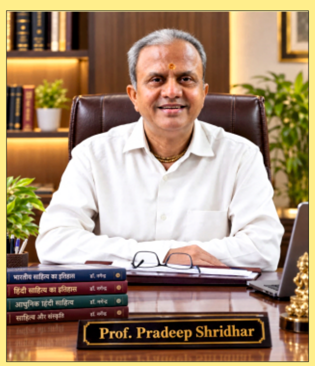

प्रो. प्रदीप श्रीधर
वरिष्ठ आचार्य, हिन्दी विभाग एवं निदेशक,
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

प्रो. शिखा श्रीधर
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
श्रीमती बी.डी. जैन गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, आगरा

डॉ. नितिन सेठी
डी. लिट्.
सचिव, यथार्थ गीता दिव्य ज्ञान ट्रस्ट, बरेली

डॉ. जैस्मीन पटनायक
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, भुवनेश्वर, ओड़िशा

नूतन अग्रवाल 'ज्योति'
कवयित्री एवं लेखिका, आगरा

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2348:5639

शोध समालोचन (भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य)

Impact Factor
6.521

सितम्बर 2026

ISSN 2348-5639
(त्रैमासिक)

शोध समालोचन

SHODH SAMALOCHAN

A Peer Reviewed Billingual International Journal of Multi-Disciplinary Research

(भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य)

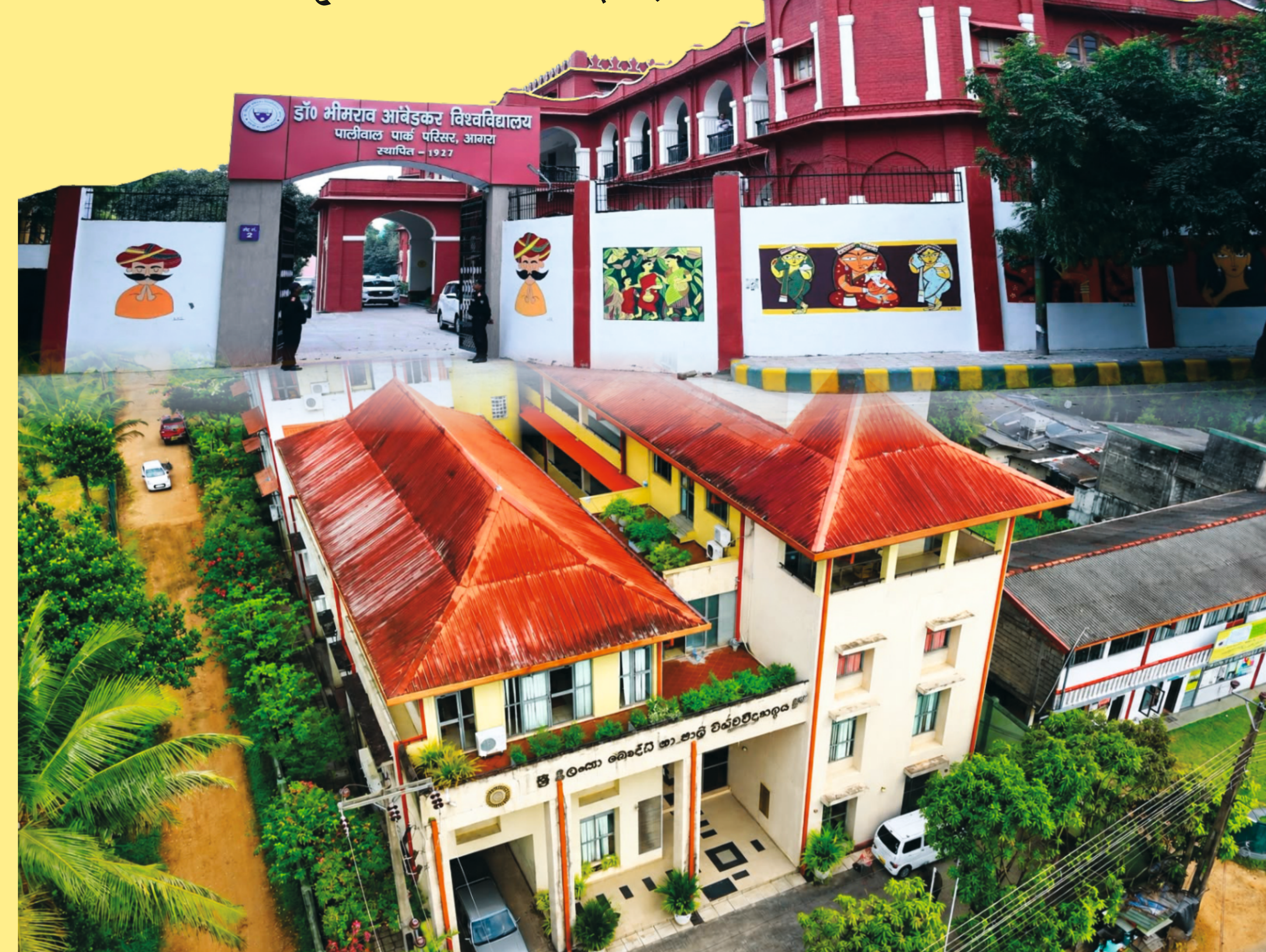

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-3 सितम्बर (भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य)

आईएसएसएन : 2348-5639 / 2026

इस विशेषांक का संपादक-मंडल

संरक्षक

प्रो. आशुरानी
कुलपति
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

वेन होमगगम धम्मानंद तेरो
चेअर प्रोफेसर उपकुलपति
बौद्ध तथा पाली विश्वविद्यालय, कोलम्बो

प्रधान संपादक

प्रो. प्रदीप श्रीधर
वरिष्ठ आचार्य, हिन्दी विभाग एवं निदेशक,
कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

संपादक मण्डल

प्रो. शिखा श्रीधर
आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग
श्रीमती बी.डी. जैन गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, आगरा

डॉ. नितिन सेठी
डी.लिट्.
सचिव, यथार्थ गीता दिव्य ज्ञान ट्रस्ट, बरेली

डॉ. जैस्मीन पटनायक
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कलिंग इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस
मानित विश्वविद्यालय
भुवनेश्वर, ओड़िशा

नूतन अग्रवाल 'ज्योति'
कवयित्री एवं लेखिका
आगरा

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY PRINT RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-3 सितम्बर (आगरा-श्रीलंका विशेषांक) आईएसएसएन : 2348-5639 2026

स्थायी संपादक-मंडल

संपादक
- **डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल'** एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
- **डॉ. वर्षा रानी**

प्रबंध संपादक
- **डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'**

सह-संपादक
- **डॉ. लता एस. पाटिल,**
- **डॉ. सुलक्षणा अहलावत**

अक्षर संयोजन
- **मो. सलीम**

कानूनी सलाहाकार
- **डॉ. रामफल दलाल,** एडवोकेट
- **अजीत सिहाग,** एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक मंडल

- **आशीष कुमार, गाजियाबाद**
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल**
- **डॉ. निशीथ गौड, आगरा**
- **डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर**
- **श्री शियोन छन श्यू, चीन**
- **डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड**
- **डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर**
- **श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन**
- **डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा**
- **डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ**
- **डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद**
- **डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा**

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध-पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2500/- रु.

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

[भाग III—खण्ड 4] भारत का राजपत्र : असाधारण 105

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

भारत और श्रीलंका के संबंध केवल भौगोलिक निकटता अथवा राजनीतिक संपर्कों तक सीमित नहीं हैं; इनके मूल में सहस्राब्दियों से विकसित एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक और बौद्धिक अंतस्सम्बंध निहित हैं। हिन्द महासागर द्वारा जुड़े ये दोनों देश दक्षिण एशियाई सभ्यता के ऐसे महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं, जहाँ इतिहास की दीर्घकालिक प्रक्रियाओं ने परस्पर संवाद, आदान-प्रदान और सांस्कृतिक सह-अस्तित्व की समृद्ध परंपरा निर्मित की है। इस दृष्टि से भारत और श्रीलंका का अध्ययन केवल दो देशों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन नहीं, बल्कि दक्षिण एशिया की साझा सभ्यतागत चेतना को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक सम्बंधों की जड़ें प्राचीन काल से लेकर आज तक सभ्यता की गहराइयों तक विद्यमान हैं। बौद्ध धर्म के प्रसार-प्रचार ने दोनों देशों के बीच आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संवाद को विशेष आयाम प्रदान किया। सम्राट अशोक के काल से सम्बंधित परंपराओं तथा महेंद्र और संघमित्रा के श्रीलंका आगमन से जुड़ी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक स्मृतियों ने दोनों देशों के मध्य संबंधों को एक विशिष्ट धार्मिक एवं सांस्कृतिक आधार प्रदान किया। बौद्ध दर्शन, कला, स्थापत्य, शिक्षा, साहित्य और लोकाचार के विभिन्न रूपों में इन अंतर्सबंधों की छाप आज भी देखी जा सकती है। इसके साथ ही रामायण, हिंदू परंपराओं, समुद्री व्यापार, भाषायी संपर्क और लोक-संस्कृतियों ने भी भारत-श्रीलंका संबंधों को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया है।

दोनों देशों की सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि निकटता का अर्थ पूर्ण समानता नहीं होता। भारत और श्रीलंका में अनेक समान सांस्कृतिक तत्त्वों के साथ-साथ विशिष्ट ऐतिहासिक अनुभवों, भाषायी विविधताओं, धार्मिक संरचनाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं ने अपनी-अपनी विशिष्ट पहचान निर्मित की है। अतः इन दोनों समाजों का अध्ययन समानताओं की खोज के साथ-साथ उनकी विशिष्टताओं और अंतर्विरोधों को समझने की दृष्टि से भी आवश्यक है। यही तुलनात्मक दृष्टि मानविकी अध्ययन को अधिक व्यापक, संतुलित और वैज्ञानिक बनाती है।

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में भारत और श्रीलंका के सम्बंधों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन और भी प्रासंगिक हो गया है। वैश्वीकरण, प्रवासन, पर्यटन, डिजिटल संचार, शिक्षा, साहित्यिक आदान-प्रदान और सांस्कृतिक कूटनीति ने दोनों समाजों के पारस्परिक सम्पर्क के नए आयाम निर्मित किए हैं। सीमाओं से परे विकसित हो रहे सांस्कृतिक संवाद ने यह सिद्ध किया है कि संस्कृति केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान में निरंतर निर्मित और पुनर्निर्मित होने वाली जीवंत प्रक्रिया है। इसलिए भारत-श्रीलंका संबंधों को समझने के लिए ऐतिहासिक स्रोतों के साथ-साथ समकालीन सामाजिक अनुभवों और सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन भी आवश्यक है।

इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में 'भारत एवं श्रीलंका : सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य' विषय पर केंद्रित यह शोध-पत्रिका मानविकी के विभिन्न अनुशासनों के मध्य अंतःविषयक संवाद स्थापित करने का एक प्रयास है। इसका उद्देश्य भारत और श्रीलंका के सामाजिक तथा सांस्कृतिक संबंधों से संबंधित विविध पक्षों पर मौलिक, प्रमाण आधारित और आलोचनात्मक शोध को एक साझा मंच प्रदान करना है। इसमें हिंदी, इतिहास, दर्शनशास्त्र एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य, तुलनात्मक साहित्य, संस्कृति-अध्ययन, दर्शन, धर्म-अध्ययन, लोक-संस्कृति, कला, भाषा-विज्ञान, समाजशास्त्रीय विमर्श तथा अन्य संबद्ध मानविकी अनुशासनों के माध्यम से दोनों देशों के संबंधों को समझने की संभावनाएँ निहित हैं।

विशेष रूप से साहित्य भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंधों को समझने का एक सशक्त माध्यम है। साहित्य में किसी समाज का केवल बाह्य जीवन ही नहीं, बल्कि उसकी सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक चेतना, लोकविश्वास, मानवीय संवेदना और ऐतिहासिक अनुभव भी अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय और श्रीलंकाई साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से उन सांस्कृतिक बिंदुओं को पहचाना जा सकता है जहाँ दोनों समाज एक-दूसरे के निकट आते हैं और उन क्षेत्रों को भी समझा जा सकता है जहाँ उनकी स्वतंत्र सांस्कृतिक अस्मिताएँ आकार ग्रहण करती हैं। अनुवाद और अंतर्भाषिक संवाद इस प्रक्रिया को और अधिक व्यापक बनाते हैं।

इस शोध-पत्रिका का एक प्रमुख उद्देश्य भारत और श्रीलंका के संबंधों को किसी एक अनुशासन या एकांगी दृष्टिकोण में सीमित न रखकर बहुविषयी एवं अंतःविषयी परिप्रेक्ष्य में देखना है। सामाजिक संरचना, धार्मिक सह-अस्तित्व, लोक परंपराएँ, कला एवं स्थापत्य, साहित्यिक संपर्क, भाषायी अंतर्संबंध, शिक्षा, प्रवासन, स्त्री-अनुभव, पर्यावरणीय चेतना, सांस्कृतिक विरासत और समकालीन सांस्कृतिक कूटनीति जैसे विषय इस व्यापक अध्ययन के विविध आयाम हो सकते हैं। इस प्रकार की बहुआयामी दृष्टि दोनों देशों के संबंधों की जटिलता और जीवंतता को अधिक समग्रता से उद्घाटित करने में सहायक होगी।

शोध की गुणवत्ता केवल उसके विषय की महत्ता से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसकी पद्धतिगत दृढ़ता, स्रोत-संपदा, तर्कसंगति और मौलिकता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है। अतः इस पत्रिका में प्रकाशित शोध-लेखों से अकादमिक प्रामाणिकता, संदर्भों की विश्वसनीयता, शोध-पद्धति की स्पष्टता, मौलिक चिंतन और बौद्धिक ईमानदारी की अपेक्षा की जाती है। हमारा उद्देश्य ऐसी शोध-संस्कृति को प्रोत्साहित करना है जिसमें स्थापित धारणाओं का विवेकपूर्ण पुनर्परीक्षण हो और नवीन प्रश्नों तथा नवीन व्याख्याओं के लिए पर्याप्त अवकाश उपलब्ध हो।

डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा की समृद्ध शैक्षणिक एवं शोधपरंपरा के संदर्भ में इस प्रकार का प्रयास विशेष महत्त्व रखता है। आगरा स्वयं भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला, स्थापत्य और साहित्य की बहुविध परंपराओं का महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। ऐसी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक भूमि से भारत और श्रीलंका के मध्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक अंतर्संबंधों पर केंद्रित शोध-विमर्श को आगे बढ़ाना दक्षिण एशियाई अध्ययन की व्यापक परंपरा में एक सार्थक अकादमिक हस्तक्षेप के रूप में देखा जा सकता है।

हमारा विश्वास है कि भारत और श्रीलंका के संबंधों को समझने का सबसे सार्थक मार्ग केवल राजनीतिक या कूटनीतिक विमर्श से होकर नहीं जाता, बल्कि उन सामान्य मनुष्यों, समुदायों, परंपराओं, भाषाओं, साहित्यिक कृतियों, धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक स्मृतियों के अध्ययन से भी होकर गुजरता है जिन्होंने इन संबंधों को वास्तविक अर्थों में जीवित रखा है। संस्कृति की यही मानवीय आधारभूमि दोनों देशों के मध्य संवाद को स्थायित्व और आत्मीयता प्रदान करती है।

यह शोध-पत्रिका इसी सांस्कृतिक आत्मीयता को अकादमिक विमर्श में रूपांतरित करने का प्रयास है। हमारा उद्देश्य अतीत के गौरव का मात्र पुनर्स्मरण करना नहीं, बल्कि इतिहास और संस्कृति के उन अंतर्संबंधों को नए प्रश्नों और समकालीन शोध-दृष्टियों के आलोक में पुनर्परिभाषित करना है, जो भारत और श्रीलंका के वर्तमान तथा भविष्य के संबंधों को समझने में सहायक हो सकते हैं।

अंततः यह शोध-पत्रिका एक निष्कर्ष नहीं, बल्कि संवाद का आरंभ है ऐसा संवाद जो इतिहास से वर्तमान तक, परंपरा से आधुनिकता तक और स्थानीय अनुभव से वैश्विक परिप्रेक्ष्य तक विस्तृत है। आशा है कि इसमें प्रकाशित शोध-लेख भारत और श्रीलंका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संबंधों के अध्ययन को नई दिशाएँ प्रदान करेंगे तथा मानविकी के क्षेत्र में अंतःविषय और तुलनात्मक शोध की संभावनाओं को अधिक सशक्त बनाएँगे।

- प्रो. प्रदीप श्रीधर

विषयानुक्रमणिका

भारत एवं श्रीलंका: सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य 08

प्रो. प्रदीप श्रीधर

बुद्ध-दर्शन, विपासना और आज का विश्व (निजी अनुभव- भीतर की ओर लौटने की यात्रा) 11

डॉ. शैलजा सक्सेना

श्री लंका की महिलाओं के जीवन पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का विश्लेषण 16

डॉ. सरसि रणसिंह

सिंहली जातक कथा संग्रह में राम कथा 22

Dr. Amila Damayanthi

करुणा, अहिंसा और मानवीय संवेदना की अनुगूँज : दो कथाओं के माध्यम से बौद्ध नैतिक दृष्टि का प्रतिबिंब 29

Leshani Weerasinghe

बौद्धकालीन समाज और नारी 34

डॉ. सिन्धु सुमन

बौद्ध धर्म के मूल तत्त्व 39

डॉ. राजवाला

बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य (वरिष्ठ नागरिकों के विशेष संदर्भ में) 44

रमा निगम

माता सीता और भक्त शबरी की संवेदनशील भूमिकाएँ : भारतीय सांस्कृतिक चेतना, नारी-अस्मिता और वैश्विक मानवीय मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन 48

अनीता चेची

गौतम बुद्ध का जीवन वृत्त : शिक्षाएं एवं बौद्ध धर्म के उद्भव का मानव जीवन पर प्रभाव 53

प्रो. (डॉ.) अनिता रानी

कबीर की रचनाओं में बौद्ध धर्म का प्रभाव 58

डॉ. अर्चना कुमारी

भारत के संताल एवं श्रीलंका के वैद्दा आदिवासियों की संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन 62

डॉ. धनु मुर्मू

भारत-श्रीलंका का भाषाई रामसेतु संस्कृत 68

डॉ. नौनिहाल गौतम

बौद्ध धम्म और डॉ. भीमराव आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन का दृष्टिकोण 71

सविता

भारत और श्रीलंका की समकालीन संस्कृति में बुद्ध 76

दीक्षा सिंह

यज्ञ संस्कृति के रक्षक श्रीराम 81
डॉ. वैशाली गावली
भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक विनिमय में संस्कृत, पाली और क्लासिकल भाषाओं की भूमिका 86
डॉ. मधु विनय
वाल्मीकि रामायण और कम्ब रामायण का तुलनात्मक अध्ययन 91
डॉ. पी. बी. वनिता
आदिवासी और दलित समाज में बौद्ध धर्म का प्रभाव 95
प्रियंवदा शबर
डिजिटल युग में रामायण पर्यटन सर्किट : सांस्कृतिक विरासत और वैश्विक संवाद के नए आयाम 98
डॉ. जैस्मीन पटनायक
भारत और श्रीलंका- आर्थिक संबंध 104
डॉ. संगीता शर्मा
संत रविदास के साहित्य पर बौद्ध चिंतन का प्रभाव 109
प्रो. राजमुनि
रामसेतु, रामेश्वरम्, अग्नि तीर्थ एवं धनुषकोडी का आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व 115
डॉ. अश्विनी सचिन सदावर्ते
स्त्री मुक्ति का आख्यान : थेरीगाथा 118
डॉ. नीतू बंसल
'अपने-अपने राम' : 'कंब-रामायण' के संदर्भ में 123
डॉ. करुणा शर्मा
श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार तथा श्रीलंकाई बौद्ध परंपरा में थेरवाद : बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक भूमिका 128
वाघ सचिन कैला
हिन्दी लोक साहित्य में रामकथा और सिंहली लोक-सांस्कृतिक परंपरा में बुद्ध कथा : एक तुलनात्मक अध्ययन 131
डॉ. दीप्ति अग्रवाल
कंब रामायण में नारी चेतना के विविध आयाम 140
वीरेन्द्र कुमार, डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा
कबीर की धार्मिक चेतना का आधुनिक संदर्भ 147
फर्नांडो, डब्ल्यू. सी. एम.
अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में डॉ. रामदयाल मुंडा की भागीदारी 153
कृष्णा सरदार
बौद्ध दर्शन एवं बौद्ध धर्म के पंचशील : मानवीय मूल्यों और समकालीन समाज के लिए एक नैतिक आधार 158
राजवीर सिंह ओझा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत एवं श्रीलंकाः सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

प्रो. प्रदीप श्रीधर

भारत और श्रीलंका के बीच के सम्बन्ध केवल बत्तीस किलोमीटर समुद्र से अलग दो देशों के ही सम्बन्ध नहीं हैं। इतिहास, धर्म, संस्कृति, साहित्य और रक्त के सम्बन्धों का निरंतर निर्वहन इनके माध्यम से होता आया है। पुरातन काल में श्रीलंका को लंका, सिंहल द्वीप और धर्मद्वीप के नाम से जाना जाता था। दोनों देशों की सभ्यताएं एक-दूसरे में इस तरह घुली-मिली हैं कि इन्हें अलग करके देखना असंभव है।

भारत और श्रीलंका के संबंधों का आरंभ पौराणिक काल से माना जाता है। पौराणिक और रामायणकालीन सम्बन्ध दोनों ही देशों के बहुत गहरे रहे हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार भगवान राम ने रावण का वध करने के लिए वानर सेना के साथ लंका पर आक्रमण किया। रामेश्वरम से धनुषकोडी होते हुए जो पुल बनाया गया उसे आज राम सेतु कहा जाता है। भारत और श्रीलंका को यह आज भी जोड़ता है। हनुमान जी द्वारा लंका दहन, अशोक वाटिका में सीता जी से भेंट और विभीषण को लंका का राजा बनाना– ये सभी घटनाएँ दोनों देशों को एक आध्यात्मिक सूत्र से बाँधती हैं। इन पावन घटनाओं की याद में सीता मंदिर, रावण की गुफाएं, अशोक वाटिका जैसे तीर्थ स्थान आज भी अपना अस्तित्व रखते हैं। स्पष्ट है कि रामायण काल से ही भारत और श्रीलंका के मध्य धर्म और नीति के सम्बन्ध चले आ रहे हैं।

भारत में बौद्ध धर्म की पर्याप्त मान्यता है। बौद्ध धर्म का उदय भले ही भारत में हुआ परन्तु इसका व्यापक प्रचार-प्रसार विश्व के अनेक देशों में भी हुआ। बौद्ध धर्म के कारण भारत और श्रीलंका के आपसी सम्बन्ध भी स्थापित हुए। कलिंग युद्ध में हुई अपार जनहानि देखकर मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म की शरण प्राप्त की थी। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका में भेजा। संघमित्रा अपने साथ बोधिवृक्ष की एक शाखा श्रीलंका ले गईं थीं। वह शाखा आज भी अनुराधापुरा में 'जय श्री महाबोधि' के नाम से जीवित है और उल्लेखनीय है कि यह दुनिया का सबसे पुराना जीवित वृक्ष माना जाता है। बौद्ध धर्म के प्रचार के समय महेन्द्र की मुलाकात राजधानी अनुराधापुर के निकट महिंदाताले (अब मिहिंताले) नामक स्थान पर राजा देवानाम्पिया तिस्सा से हुई। राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर अपनी राजधानी में तीर्थस्थल और मठ बनवाए। महेन्द्र के निर्देशों के अनुसार, उन्होंने धर्म की एक मजबूत नींव स्थापित करने के लिए थुपरमा परिषद का आयोजन किया ताकि स्थानीय भिक्षुओं द्वारा पवित्र ग्रन्थों को कंठस्थ किया जा सके और पढ़ाया जा सके। देवानाम्पिया तिस्सा ने महाविहार मठ का निर्माण करवाया, जो थेरवाद बौद्ध धर्म का एक मुख्य केंद्र बना। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्रीलंका का पहला ऐतिहासिक स्तूप 'थूपाराम' भी बनवाया।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म के थेरवाद संप्रदाय का उद्भव हुआ। आज, श्रीलंका को बौद्ध शिक्षा और विचार का एक प्रमुख केंद्र माना जाता है। ऐसा विश्वास है कि बुद्ध स्वयं छठी शताब्दी में श्रीलंका आए थे और अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने वहाँ तीन स्थानों का भ्रमण किया था। कोलंबो क्षेत्र में रहते हुए वे जिस पलंग पर सोए थे, वह कोलंबो के पास केलानिया मंदिर के स्तूप के अंदर है। बुद्ध की आराधना स्तूपों और बो-वृक्षों के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त की गई है। दुनिया के पहले स्तूपों में से एक वर्तमान अनुराधापुरा में बनाया गया था और पास में ही उस मूल बो वृक्ष की टहनी से एक बो वृक्ष

लगाया गया था, जिसके नीचे बुद्ध को भारत में ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी क्रम में थेरवाद बौद्ध धर्म का सबसे बड़ा केंद्र धीरे-धीरे श्रीलंका बन गया भारत से बड़ी संख्या में बौद्ध भिक्षु, बौद्ध विचार, साहित्य और कला श्रीलंका पहुँचे। इसीलिए कहा जाता है कि भारत ने श्रीलंका को बौद्ध धर्म दिया और श्रीलंका ने उसे आज तक तक अक्षुण्ण बनाए रखा है।

भारत और श्रीलंका के मध्य व्यापारिक और राजनीतिक सम्बन्ध भी विशिष्ट रहे हैं। दोनों देशों के मध्य समुद्री व्यापार भी उस समय बहुत उन्नत था। दक्षिण भारत के चोल और पांड्य राजाओं का श्रीलंका से व्यापार और संघर्ष दोनों चलता रहा। चोल राजा राजराज प्रथम ने श्रीलंका के उत्तरी भाग पर शासन भी किया। उस समय में तमिलनाडु के तटीय बंदरगाहों से विभिन्न प्रकार के मसाले, मोती, हाथी दाँत और रत्न श्रीलंका होते हुए रोम तक जाते थे। इस व्यापार के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अन्तर्गत भारतीय कला, स्थापत्य, सिक्के और भाषा भी श्रीलंका पहुँचे।

भारत और श्रीलंका के मध्य भाषा, साहित्य और कला के सम्बन्ध बहुत ही गहरे माने जाते हैं। श्रीलंका की सिंहली भाषा की उत्पत्ति उत्तर भारत की भाषाओं से मानी जाती है। तमिलनाडु की तमिल भाषा श्रीलंका में भी हजारों वर्षों से बोली जाती है। श्रीलंका के प्रसिद्ध ग्रंथ महावंश, दीपवंश और चूलवंश पालि भाषा में लिखे गए हैं। इनमें भारत और श्रीलंका दोनों ही देशों का इतिहास मिलता है।

कला और स्थापत्य भी भारत और श्रीलंका एक-दूसरे से साझा करते हैं। अनुराधापुरा, पोलोन्नारुवा और सिगिरिया की गुफाएं भारतीय गुप्तकालीन कला से बहुत मिलती-जुलती हैं। पोलोन्नारुवा के गल विहार में चट्टानों को काटकर बनाई गईं भगवान बुद्ध की चार भव्य और सुंदर मूर्तियाँ हैं। बुद्ध की मूर्तियां, स्तूप और विहार दोनों देशों की साझा विरासत हैं।

धार्मिक और आध्यात्मिक साझा विरासत भी इसी क्रम में उल्लेखनीय है। भारत में हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्म अपना अस्तित्व रखते हैं और श्रीलंका में बौद्ध धर्म के साथ हिन्दू धर्म भी रहा। श्रीलंका में हिंदू धर्म से संबंधित भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। श्रीलंका में आज भी मुनेश्वरम, केतेश्वरम जैसे प्राचीन शिव मंदिर हैं। ये दोनों मंदिर श्रीलंका के प्रसिद्ध 'पंच ईश्वरम' में सम्मिलित हैं, जो भगवान शिव के मंदिर हैं। द्वीप के चारों ओर तटीय क्षेत्रों में स्थापित ये पांच प्राचीन मंदिर माने जाते हैं। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, रावण का वध करने के बाद जब भगवान श्री राम अयोध्या लौट रहे थे, तब उन्हें 'ब्रह्महत्या दोष' का अनुभव हुआ। भगवान शिव के परामर्श पर, श्री राम ने इसी स्थान पर रुककर शिवजी की पूजा की थी और दोष से मुक्ति पाई थी। यहाँ श्री राम द्वारा स्थापित एक शिवलिंग भी मौजूद है।

श्रीलंका के मन्नार जिले में केतेश्वरम मंदिर स्थित है। माना जाता है कि छाया ग्रह 'केतु' ने यहाँ भगवान शिव की तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें दर्शन दिए थे। केतु द्वारा पूजे जाने के कारण ही इसका नाम 'केतेश्वरम' पड़ा। दोनों देशों में नवरात्रि, दीपावली, वेसक जैसे त्योहार मनाए जाते हैं। वेसक को पालि भाषा में वेसाख और संस्कृत में वैशाख कहा जाता है। यह उत्सव विश्व भर के बौद्धों एवं अधिकांश हिन्दुओं द्वारा मनाया जाता है। यह उत्सव बुद्ध पूर्णिमा को मनाया जाता है जिस दिन गौतम बुद्ध का जन्म और महापरिनिर्वाण हुआ था तथा इसी दिन उन्हें बोधि अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

भारत और श्रीलंका का सम्बन्ध 'रक्त और धर्म' का सम्बन्ध है। राम ने लंका को मुक्त कराया, अशोक ने उसे धर्म दिया और व्यापार ने उसे समृद्ध किया। आज के समय में भी दोनों देश एक-दूसरे के सबसे करीबी मित्र हैं। भारत ने हमेशा श्रीलंका को पड़ोसी प्रथम नीति के तहत सहायता प्रदान की है।

भारत एवं श्रीलंका की सरकारों द्वारा 29 नवंबर, 1977 को नई दिल्ली में हस्ताक्षरित सांस्कृतिक सहयोग समझौता दोनों देशों के बीच आवधिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों की नींव है। श्रीलंका बिम्सटेक (बंगाल की खाड़ी बहु-क्षेत्रीय तकनीकी एवं आर्थिक सहयोग पहल) एवं सार्क (SAARC) जैसे क्षेत्रीय संगठनों में भाग लेता है, जहां भारत एक प्रमुख स्थान रखता है। श्रीलंका भी भारत के प्रति अपना सम्मान भाव प्रदर्शित करता रहा है। श्रीलंका भारत का निकटतम समुद्री पड़ोसी है और रणनीतिक रूप से हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी में स्थित है। श्रीलंका क्षेत्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करने में, विशेष रूप से समुद्री सुरक्षा और आतंकवाद-रोधी प्रयासों में सहयोग के माध्यम से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत के साथ श्रीलंका के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सम्बन्ध, विशेष रूप से बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में, द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ाते हैं। अपनी 'पड़ोसी-प्रथम नीति' और 'सागर (क्षेत्र में सभी के लिए सुरक्षा और विकास) सिद्धांत' के अनुसार भारत हिंद महासागर क्षेत्र को शांतिपूर्ण और सुरक्षित बनाए रखने के लिए श्रीलंका को बहुत महत्व देता है। कोलंबो स्थित भारतीय सांस्कृतिक केंद्र भारतीय संगीत, नृत्य और हिंदी की कक्षाएं प्रदान करके भारतीय संस्कृति के प्रति जागरूकता को सक्रिय रूप से बढ़ावा देता है। यह केंद्र प्रतिवर्ष अंतरराष्ट्रीय योग दिवस कार्यक्रम का भी आयोजन करता है। भारत-श्रीलंका फाउंडेशन की स्थापना नागरिक समाज के आदान-प्रदान के माध्यम से वैज्ञानिक, तकनीकी, शैक्षिक और सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने के लिए की गई थी। साझा लोकतांत्रिक मूल्य और बहुदलीय प्रणाली दोनों देशों के बीच लोकतांत्रिक संवाद की सशक्त आधारशिला हैं।

सीलोन नागरिकता अधिनियम के समाधान के लिए वर्ष 1974 में श्रीमती इंदिरा गांधी तथा श्रीमती भंडारनायके के बीच हुए समझौते द्वारा भारत मूल के निवासियों की समस्या का शांतिपूर्ण समाधान हो गया। इसके अलावा भारत एवम् श्रीलंका के मध्य कच्छदीप के विवाद को वर्ष 1974 में भारत ने इस द्वीप पर श्रीलंका की सम्प्रभुता को स्वीकार करके समाप्त कर दिया। वर्ष 1990 में भारत ने आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ अपनाई। 1998 के परमाणु तथा मिसाइल परीक्षण, विदेशी मुद्रा के भण्डार में वृद्धि, विदेशी व्यापार तथा आर्थिक विकास में वृद्धि के कारण भारत ने दक्षिण एशिया में उभरती शक्ति का स्थान प्राप्त किया।

भारत व श्रीलंका के संबंधों को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारक हैं- एक सुरक्षा और दूसरा कारक है भाषा। श्रीलंकाई के जातीय संघर्ष का इतिहास बहुत पुराना है। दक्षिण भारत और श्रीलंका के उत्तर और पूर्वी भाग में रहने वाले तमिलों की नृजातीयता की समस्या श्रीलंका की एक महत्त्वपूर्ण समस्या रही है। श्रीलंका में तमिल जनसंख्या है जिसके भावनात्मक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सम्बन्ध भारतीय तमिलों से हैं जबकि श्रीलंकाई तमिलों के लिए तमिलनाडु के लोगों में विशेष सहानुभूति है। श्रीलंका में चार प्रमुख जातियाँ हैंः सिंघली, श्रीलंकाई तमिल, भारतीय तमिल तथा शेष अन्य। श्रीलंका में सिंघली बहुमत में हैं जबकि तमिल अल्प होते हुए भी प्रभावशाली स्थिति रखते हैं। श्रीलंका के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में सिंघली समुदाय का व्यापक एकाधिकार कहा जा सकता है। तमिल समस्या के समाधान में भारत की भूमिका सदैव सकारात्मक रही और भारत और श्रीलंका के बीच आर्थिक सम्बन्ध विकसित हुए। सीलोन नागरिकता अधिनियम के समाधान के लिए वर्ष 1974 में श्रीमती इंदिरा गांधी तथा श्रीमती भंडारनायके के बीच हुए समझौते द्वारा भारत मूल के निवासियों की समस्या का शांतिपूर्ण समाधान हो गया। इसके अलावा भारत एवम् श्रीलंका के मध्य कच्छदीप के विवाद को वर्ष 1974 में भारत ने इस द्वीप पर श्रीलंका की सम्प्रभुता को स्वीकार करके समाप्त कर दिया। वर्ष 1990 में भारत ने आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ अपनाई। 1998 के परमाणु तथा मिसाइल परीक्षण, विदेशी मुद्रा के भण्डार में वृद्धि, विदेशी व्यापार तथा आर्थिक विकास में वृद्धि के कारण भारत ने दक्षिण एशिया में उभरती शक्ति का स्थान प्राप्त किया।

संक्षेप में कहा जाए तो भारत बिना श्रीलंका अधूरा है और श्रीलंका बिना भारत अधूरा है। ये सम्बन्ध केवल इतिहास की पुस्तकों तक ही सीमित नहीं हैं अपितु दोनों देशों के लोगों के हृदयों में इस पावन सम्बन्ध की अनुगूंज युगों-युगों से सुनाई देती आ रही हैं।

वरिष्ठ आचार्य, हिन्दी विभाग एवं निदेशक

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बुद्ध-दर्शन, विपासना और आज का विश्व (निजी अनुभव- भीतर की ओर लौटने की यात्रा)

डॉ. शैलजा सक्सेना

विपासना बुद्ध धर्म के मर्म तक पहुँचने में सहायक, शक्तिशाली क्रिया है। यह पूजा नहीं है, रीति भी नहीं पर साँसों पर ध्यान केंद्रित कर स्वयं के भीतर झाँकने की एक खिड़की है जो शरीर की संवेदनाओं में अपने मन के बदलते रूप की छायाओं को देखती है और कुछ भी निश्चित नहीं (अनिच्चौ) को स्वीकार कर 'सम' हो जाने की चेष्टा करती है। लगभग आठ वर्ष पहले जब मैंने पहली बार विपासना का अनुभव किया, तब मेरे मन में भी वही प्रश्न थे जो आज बहुत से लोगों के मन में उठते हैं—क्या कई दिनों तक शांत बैठने से वास्तव में कुछ बदल सकता है? क्या अपने ही भीतर उठते विचारों, पीड़ाओं और बेचैनियों को केवल देखते रहने से कोई समाधान मिलता है? और सबसे बड़ा प्रश्न—क्या मैं इतने लंबे समय तक अपने मन के साथ अकेली रह पाऊँगी? मैं इसे जाँचने की मानसिक स्थिति में भी गई थी। आदरणीय बी.के. गोयनका जी के पॉडकास्ट भी सुन चुकी थी..अतः प्रश्नों के साथ एक गहरी जिज्ञासा भी मन में थी।

हम सामान्यतः यह मानते हैं कि हम स्वयं को अच्छी तरह जानते हैं। हमें पता है कि हमें क्या अच्छा लगता है, किस बात पर क्रोध आता है, कौन-सी स्मृति दुःख देती है और कौन-सा संबंध हमें प्रसन्न करता है। पर विपासना के दौरान पहली बार यह स्पष्ट होने लगता है कि अपने विषय में हमारी जानकारी कितनी सतही है। हम अपने विचारों की कहानी तो जानते हैं, किंतु उन विचारों के पीछे शरीर में उठने वाली बेचौनी, तनाव, गर्मी, कंपन, भय और प्रतिक्रिया को बहुत कम पहचानते हैं। मेरे लिए वह अनुभव किसी चमत्कार की तरह नहीं था। ऐसा नहीं हुआ कि साधना पूरी होते ही जीवन की सभी समस्याएँ समाप्त हो गईं। किंतु एक छोटा-सा दरवाज़ा अवश्य खुला—अपने भीतर देखने का दरवाज़ा। मैंने पहली बार समझा कि मन के भीतर कितनी निरंतर हलचल चलती रहती है। बाहर चाहें कोई मुझसे बात नहीं कर रहा था, पर भीतर जैसे अनेक लोग एक साथ बोल रहे थे। कोई अतीत की घटना दोहरा रहा था, कोई भविष्य की चिंता कर रहा था, कोई किसी व्यक्ति से मन-ही-मन बहस कर रहा था और कोई स्वयं को सही सिद्ध करने में लगा था। तभी मेरे भीतर एक प्रश्न उठा—हम संसार को शांत करना चाहते हैं, पर क्या हमने कभी अपने मन की आवाज़ को सचमुच सुना है?

यहीं से मेरे लिए बुद्ध-दर्शन और विपासना का संबंध केवल ज्ञान का विषय नहीं रहा; वह जीवन को देखने का एक व्यावहारिक मार्ग बन गया।

बुद्ध का प्रश्न आज भी हमारा प्रश्न है

गौतम बुद्ध ने जिस प्रश्न से अपनी खोज आरंभ की थी, वह किसी एक युग या समाज का प्रश्न नहीं था। उन्होंने देखा कि जीवन में जन्म है, रोग है, वृद्धावस्था है, मृत्यु है, वियोग है और इच्छाओं की अपूर्णता है। उन्होंने यह भी देखा कि बाहरी सुख-सुविधाओं के बाद भी मनुष्य के भीतर असंतोष बना रहता है। क्या हम अपने मन से जुड़ पाते हैं? यह मनुष्य की सनातन चिंता और चिंतन का विषय रहा है।

आज हम कहते हैं—
"समय नहीं है।"
"मन बहुत अशांत है।"
"इतना काम है कि साँस लेने की फुर्सत नहीं।"
"रात को शरीर थक जाता है, पर मन बंद नहीं होता।"

बुद्ध का प्रश्न आज भी हमारे सामने है—इस अशांति का कारण केवल बाहर है, या हमारे भीतर प्रतिक्रिया करने की कोई गहरी आदत भी है? बुद्ध ने दुःख को नकारा नहीं। उन्होंने यह नहीं कहा कि सब अच्छा सोचो और जीवन अच्छा हो जाएगा। उन्होंने दुःख को बहुत ईमानदारी से देखा। उन्होंने कहा—दुःख है; उसका कारण है; उससे मुक्ति संभव है; और उस मुक्ति की ओर ले जाने वाला एक मार्ग भी है। उनके बताए चार आर्य सत्य किसी धार्मिक आदेश की तरह नहीं, बल्कि एक चिकित्सक की प्रक्रिया जैसे हैं। पहले रोग की पहचान, फिर उसका कारण, उसके उपचार की संभावना और अंत में उपचार का मार्ग। बुद्ध के अनुसार दुःख का एक मूल कारण है—तृष्णा। जो सुखद है, हम चाहते हैं कि वह बना रहे। जो दुःखद है, हम चाहते हैं कि वह तुरंत समाप्त हो जाए। हम अपने विचारों, संबंधों, शरीर, प्रतिष्ठा और परिस्थितियों को स्थायी मानकर उनसे चिपक जाते हैं। लेकिन जीवन का स्वभाव परिवर्तन है। यहीं बुद्ध का अनित्य का दर्शन सामने आता है—सब कुछ बदल रहा है। हम यह बात बौद्धिक रूप से जानते हैं। हमें मालूम है कि बचपन समाप्त होता है, शरीर वृद्ध होता है, संबंध बदलते हैं और जीवन की परिस्थितियाँ स्थायी नहीं हैं। फिर भी जब परिवर्तन हमारे अपने जीवन में आता है, तो हम टूट जाते हैं। इसका कारण यह है कि परिवर्तन को जानना और उसे प्रत्यक्ष अनुभव करना दो अलग बातें हैं। विपासना इसी अंतर को कम करने की साधना है।

विपासनादेखना पर प्रतिक्रिया न देना

'विपासना' का सामान्य अर्थ है—वस्तुओं को जैसा वे वास्तव में हैं, वैसा देखना। यह केवल आँखों से देखने की बात नहीं है। यह अपने शरीर, संवेदनाओं, विचारों और मानसिक प्रवृत्तियों को निष्पक्ष होकर देखने का अभ्यास है। सुनने में लगता है कि बैठकर साँस देखनी है।" लेकिन जैसे ही हम शांत बैठते हैं, मन अपना वास्तविक स्वभाव दिखाना शुरू कर देता है। कभी पाँच मिनट भी बहुत लंबे लगते हैं। शरीर में दर्द होने लगता है। मन कहता है—अब उठ जाओ। फिर कोई पुरानी स्मृति सामने आ जाती है। कोई अधूरा काम याद आता है। अचानक भोजन, परिवार, फोन, नौकरी, मित्र और पुरानी बातचीत सब कुछ ध्यान में आने लगता है। मेरे अनुभव में भी प्रारंभिक समय बहुत सहज नहीं था। शरीर बैठा हुआ था, पर मन कहीं और भाग रहा था। उस समय समझ में आया कि हम बाहर जितना बोलते हैं, उससे कहीं अधिक भीतर बोलते रहते हैं। ध्यान में बार-बार यही सीख दी जाती है—मन भटके तो उसे दोष मत दीजिए; केवल देखिए और वापस लौट आइए। लेकिन हम तो स्वयं के प्रति भी कितने कठोर होते हैं। मन भटका तो तुरंत विचार आता है—"मुझसे ध्यान नहीं हो रहा", "बाकी लोग मुझसे बेहतर कर रहे होंगे", "मैं इतनी अस्थिर क्यों हूँ?" धीरे-धीरे समझ में आता है कि विपासना अपने मन से युद्ध करने का नाम नहीं है। वह मन को नियंत्रित करने की हिंसक चेष्टा भी नहीं है। वह मन को पहचानने का अभ्यास है।

श्वासजीवन की सबसे निकट, पर सबसे उपेक्षित घटना

विपासना की अनेक पद्धतियों में साधना का आरंभ श्वास को देखने से होता है। हम हर क्षण साँस लेते हैं, पर सामान्यतः उसका अनुभव नहीं करते। साँस स्वाभाविक रूप से भीतर आती है और बाहर जाती है। उसे बदलना नहीं, केवल देखना होता है। कुछ क्षणों तक श्वास दिखाई देती है, फिर मन कहीं और चला जाता है। जब साधक को इसका भान होता है, वह फिर श्वास पर लौट आता है। यही लौटना अभ्यास है। एक बार नहीं, बार-बार।

यही बात जीवन पर भी लागू होती है। हम बार-बार क्रोध, चिंता, भय और स्मृतियों में खो जाते हैं। सजगता का अर्थ

यह नहीं कि हम कभी विचलित नहीं होंगे। उसका अर्थ है कि हमें अपने विचलन का पता पहले से अधिक जल्दी चलने लगेगा और हम स्वयं को वापस ला सकेंगे। गोयनका जी का कहना है कि अगर तुम अपने मन को 5 मिनट या 10 मिनट पहअले भी वापस ला सके तो यह अच्छा प्रारंभ है क्योंकि तुमने अपने मन को 10 मिनट उसी कीचड़ में लिपटे रहने से बचा लिया। लगभग आठ वर्ष पहले के अपने अनुभव को याद करती हूँ, तो मुझे सबसे अधिक आश्चर्य इसी बात पर हुआ था कि केवल श्वास को देखना भी कितना कठिन हो सकता है। मन हर क्षण कुछ नया चाहता है। उसे उत्तेजना चाहिए, कहानी चाहिए, बातचीत चाहिए। शांत वर्तमान क्षण उसे प्रारंभ में बहुत साधारण और नीरस लगता है, वह भी तब जब आपको 10 दिन एक जगह बिना बात करे या एक दूसरे को आँख उठा कर देखे बिना, 10 घंटे प्रतिदिन के ध्यान में रहना होता है। पर कुछ समय बाद यही साधारण श्वास एक दर्पण बन जाती है। मन शांत है तो श्वास अलग है; भयभीत है तो अलग; क्रोधित है तो अलग; बेचैन है तो अलग। तब एक मौन संवाद आरंभ होता है– "मन, तुम इतने बेचैन क्यों हो?" मन उत्तर नहीं देता, पर शरीर उत्तर देने लगता है–कहीं तनाव, कहीं भारीपन, कहीं गर्मी, कहीं कसाव।

शरीर और मन का गहरा संबंध

हम अक्सर कहते हैं–"मुझे गुस्सा आ रहा है", "मुझे डर लग रहा है", "मैं बहुत दुखी हूँ।" पर इन भावनाओं के समय शरीर में क्या होता है? क्रोध में चेहरा गर्म हो सकता है, हृदयगति बढ़ सकती है, मांसपेशियाँ तन सकती हैं। भय में पेट सिकुड़ सकता है, साँस उथली हो सकती है। चिंता में छाती भारी लग सकती है। दुख में शरीर सुस्त हो सकता है। विपासना शरीर में उठने वाली इन संवेदनाओं को देखने का अभ्यास कराती है। साधक समझता है कि मन की प्रत्येक प्रतिक्रिया का शरीर में कोई न कोई प्रभाव उत्पन्न होता है। यह प्रभाव भी स्थायी नहीं है। वह उठता है, बदलता है और समाप्त हो जाता है। यही अनुभव अनित्यता की प्रत्यक्ष शिक्षा बनता है। तब मन से एक संवाद संभव होता है– "तुम कह रहे थे यह हमेशा रहेगा?" मन चुप हो जाता है। वास्तविकता कहती है–"कुछ भी हमेशा नहीं रहता।"

अनित्य का ज्ञानसांत्वना भी, चुनौती भी

अनित्य का अर्थ है–सब कुछ परिवर्तनशील है। यह विचार हमें दुःख में सांत्वना देता है–बुरा समय भी बीत जाएगा। किंतु यही विचार सुख के विषय में चुनौती देता है–अच्छा समय भी स्थायी नहीं रहेगा। हम अनित्य को आधा स्वीकार करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि दुःख बदल जाए, पर सुख वैसा ही बना रहे। हम चाहते हैं कि शरीर की पीड़ा समाप्त हो, पर यौवन समाप्त न हो। कठिन संबंध बदल जाएँ, पर प्रिय संबंध कभी न बदलें। विपासना कहती है–जीवन को आधा नहीं, पूरा देखिए। आकर्षण और विकर्षण मन को बाँधते हैं। विपासना का अभ्यास हमें यह नहीं सिखाता कि सुख का आनंद न लें या पीड़ा से बचने का प्रयास न करें। वह यह सिखाता है कि किसी भी अनुभव को अपनी संपूर्ण पहचान न बना लें। समभाव इसी समझ से जन्म लेता है।

मेरे अनुभव में मौन का अर्थ जब हम सामान्य जीवन में मौन कहते हैं, तो उसका अर्थ अक्सर केवल बोलना बंद कर देना होता है। पर विपासना में मौन धीरे-धीरे भीतर की आवाज़ों को सुनने की स्थिति बन जाता है। प्रारंभ में बाहरी मौन असहज लग सकता है। हम दूसरों से आँख मिलाकर मुस्कराना चाहते हैं, कोई अनुभव बाँटना चाहते हैं, पूछना चाहते हैं कि "तुम्हें भी इतना दर्द हो रहा है क्या?" लेकिन जब संवाद सीमित होता है, तो व्यक्ति अपने अनुभव की जिम्मेदारी स्वयं लेने लगता है। मेरे लिए इस मौन का सबसे बड़ा पाठ था कि हम कितनी बार अपने मन की स्थिति को दूसरों पर डाल देते हैं। हमें बेचौनी है, तो हम किसी से बात करना चाहते हैं। हमें बुरा लग रहा है, तो चाहते हैं कि कोई हमें समझाए। हमें क्रोध है, तो किसी को दोष देना चाहते हैं। मौन में यह रास्ता कुछ समय के लिए बंद हो जाता है। तब अपने मन से सीधा सामना होता है। मन पूछता है–"अब किसे दोष दोगी?" और साधक के पास उत्तर नहीं होता। धीरे-धीरे दिखाई देता है कि बाहरी घटना अपनी जगह है, पर उसके चारों ओर हमने कितनी बड़ी मानसिक कहानी बना ली है। किसी व्यक्ति ने एक वाक्य कहा

था, पर हम उसे सौ बार भीतर दोहरा चुके हैं। घटना कुछ मिनट की थी, लेकिन उसकी प्रतिक्रिया कई दिनों तक चलती रही। यही वह स्थान है जहाँ विपासना केवल ध्यान नहीं रहती; वह आत्म-जिम्मेदारी की शिक्षा बन जाती है। यह बात प्रतिदिन शाम को दिखाये जाने वाले गोयनका जी के प्रवचन से स्पष्ट की जाती है।

शील, समाधि और प्रज्ञाकेवल ध्यान नही, जीवन का अनुशासन

विपासना की साधना तीन आधारों पर टिकी है—शील, समाधि और प्रज्ञा। शील का अर्थ नैतिक आचरण है। हम हिंसा, चोरी, असत्य, अनुचित व्यवहार और नशीले पदार्थों से दूर रहने का प्रयास करते हैं। इसका उद्देश्य किसी धार्मिक भय में बाँधना नहीं है। इसका सीधा संबंध मन की शांति से है। समाधि मन की एकाग्रता है। श्वास और वर्तमान अनुभव पर लौटते-लौटते मन थोड़ा स्थिर होता है। प्रज्ञा वह समझ है जो अपने अनुभव से उत्पन्न होती है। मैं केवल यह नहीं सुनती कि सब कुछ अनित्य है; मैं शरीर में संवेदना को बदलते हुए देखती हूँ। मैं केवल यह नहीं पढ़ती कि क्रोध हानिकारक है; मैं क्रोध के समय अपने शरीर की जलन और बेचैनी अनुभव करती हूँ। तब समझ उधार की नहीं रहती, एक कहानी भी नहीं होती। वह अपनी हो जाती है।

क्या विपासना दुःख को समाप्त कर देती है?

यह प्रश्न कई लोग पूछते हैं। मेरा अनुभव कहता है—विपासना जीवन की कठिनाइयों को मिटा नहीं देती। बीमारी आ सकती है, प्रिय व्यक्ति से वियोग हो सकता है, संबंधों में संघर्ष हो सकता है और योजनाएँ विफल हो सकती हैं। अंतर यह हो सकता है कि हम कठिनाई के ऊपर मानसिक पीड़ा की कितनी अतिरिक्त परतें बनाते हैं। यदि किसी ने हमारी आलोचना की, तो पहली चोट उसके शब्दों से लगी। फिर हम सोचते हैं—

"उसने ऐसा क्यों कहा?"

"सब लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे?"

"मुझे उसी समय जवाब देना चाहिए था।" मूल घटना समाप्त हो गई, पर हमने मन में उसका नाटक जारी रखा। यह सबके साथ होता है। विपासना हमें यह देखने में सहायता करती है कि अब घटना बाहर नहीं, भीतर चल रही है। हम उसे रोकने का आदेश नहीं देते, पर उसकी प्रकृति पहचानते हैं। धीरे-धीरे कहानी की पकड़ ढीली हो सकती है।यह पीड़ा के साथ हमारे संबंध को बदलने का अभ्यास है।

करुणा और स्व-करुणा की ओर यात्रा

जब व्यक्ति अपने भीतर का भय, असुरक्षा, क्रोध और अकेलापन देखता है, तो वह दूसरों के व्यवहार को भी थोड़ा अलग ढंग से देख सकता है। वह दूसरों के प्रति करुणा का भाव रखना प्रारंभ करता है और हर समय अपने भागते, परेशान होते, आलोचना से छिदे-बिंधे मन के प्रति भी करुणा का भाव रखना प्रारंभ करता है। दूसरों के व्यवहार को बिना आलोचना के स्वीकार करते हुए अपने प्रति भी आलोचना को कम करना आवश्यक है ताकि अपने को जीवन को अनुभव करने का स्थान दे सकें। इसका अर्थ यह नहीं कि हम हर गलत व्यवहार को स्वीकार कर लें। सीमाएँ आवश्यक हैं, अन्याय का विरोध भी आवश्यक है। लेकिन हम दूसरे को केवल उसके एक व्यवहार तक सीमित न करें। अगर साधना से हमारा अपने आपसे और दूसरों के प्रति अपने कथ्य का स्वभाव कुछ बदलता है तो साधना विकास अके पथ पर होती है। वास्तविक साधना की परीक्षा ध्यान-कक्ष में नहीं, दैनिक संबंधों में होती है।

आज विपासना इतनी लोकप्रिय क्यों हो रही है?

आज विश्व में विपासना, ध्यान और माइंडफुलनेस के प्रति आकर्षण बढ़ा है। इसका एक स्पष्ट कारण है—मनुष्य थक

गया है। वह सूचना से, प्रदर्शन से, तुलना से थका है और निरंतर उपलब्ध रहने की अपेक्षा लोग कुछ समय के लिए ऐसी जगह चाहते हैं जहाँ उन्हें कुछ बनकर दिखाना न पड़े। जहाँ वे केवल अपने अनुभव को देख सकें। विपासना की लोकप्रियता का एक कारण उसका अनुभव-आधारित स्वरूप भी है। यहाँ व्यक्ति से केवल यह नहीं कहा जाता कि वह किसी सिद्धांत में विश्वास करे। उससे कहा जाता है—अभ्यास कीजिए और स्वयं देखिए। एक कारण इसका अपेक्षाकृत गैर-सांप्रदायिक स्वरूप है। मेरी कक्षा में ईसाई और मुस्लिम धर्म के लोग भी थे। क्योंकि यह धार्मिक क्रिया नहीं अपितु एक आंतरिक सफ़ाई की प्रक्रिया है जिसमें धर्म कोई भूमिका प्रत्यक्ष रूप से नहीं निबाहता। तीसरा कारण दान-आधारित पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है, जिसके कारण यह अनेक व्यावसायिक वेलनेस कार्यक्रमों से अलग दिखाई देती है। चौथा कारण आधुनिक मनोविज्ञान और माइंडफुलनेस की लोकप्रियता है। तनाव, चिंता और भावनात्मक नियंत्रण पर बढ़ती चर्चा ने ध्यान की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। लेकिन लोकप्रियता के साथ सावधानी भी आवश्यक है। हर ध्यान-पद्धति समान नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए गहन साधना हर समय उपयुक्त नहीं होती। गंभीर मानसिक स्वास्थ्य संबंधी स्थिति में योग्य विशेषज्ञ की सलाह आवश्यक है। विपासना चिकित्सा का विकल्प नहीं, बल्कि उपयुक्त परिस्थितियों में आत्मनिरीक्षण की एक साधना है। यह आत्मनिरीक्षण हमारे शरीर और मन की चिकित्सा है जो मन को और शरीर को शांत करता है और आज इसी शांति की अपेक्षा सर्वथा अधिक है। एशिया, यूरोप, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और अफ्रीका में विभिन्न परंपराओं के विपासना केंद्र सक्रिय हैं। अलग-अलग भाषाओं में निर्देश उपलब्ध हैं और विविध धार्मिक पृष्ठभूमियों के लोग इसमें भाग लेते हैं। प्रवासी समुदायों ने इसके प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत और एशिया से बाहर रहने वाले लोगों ने अपनी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपराओं को नए समाजों से परिचित कराया। धीरे-धीरे स्थानीय लोग भी ध्यान से जुड़े। डिजिटल माध्यम ने सूचना की पहुँच बढ़ा दी है। लोग पाठ्यक्रम खोज सकते हैं, आवेदन कर सकते हैं और प्रारंभिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

क्या संसार की समस्याओं का समाधान ध्यान है?

नहीं, केवल ध्यान से युद्ध समाप्त नहीं होंगे, आर्थिक असमानता दूर नहीं होगी और सामाजिक अन्याय स्वतः समाप्त नहीं होगा। परंतु यह भी सच है कि युद्ध, हिंसा, शोषण और घृणा के पीछे मनुष्य का लोभ, भय, क्रोध और अहंकार सक्रिय रहते हैं। बाहरी संरचनाओं को बदलना आवश्यक है, लेकिन भीतर की प्रवृत्तियों को समझे बिना परिवर्तन अधूरा रह सकता है। विपासना हमें यह देखने की क्षमता दे सकती है कि हम स्वयं किस प्रकार उन प्रवृत्तियों को बढ़ाते हैं जिनकी संसार में आलोचना करते हैं। हम शांति चाहते हैं, पर घर में कठोर भाषा बोलते हैं। हम न्याय चाहते हैं, पर अपनी सुविधा के लिए दूसरों की उपेक्षा करते हैं। हम सहिष्णुता चाहते हैं, पर असहमति सुनते ही क्रोधित हो जाते हैं। ध्यान हमें दोषी ठहराने नहीं, अपने अंदर के सच को देख कर ईमानदार बनाने का कार्य कर सकता है। बुद्ध का दर्शन हमें संसार छोड़ने के लिए नहीं, संसार को अधिक स्पष्टता से देखने के लिए प्रेरित करता है। वह बताता है कि जीवन अनित्य है, इसलिए उससे उदासीन न हों; बल्कि हर क्षण को अधिक सजगता से जिएँ। संबंध बदलते हैं, इसलिए उन्हें हल्के में न लें। शरीर नश्वर है, इसलिए उसके प्रति करुणा रखें। मन चंचल है, इसलिए उसे शत्रु न बनाएँ; उसे समझें। अंत में, यही कहा जा सकता है—

विपासना हमें कोई नया सत्य नहीं देती; वह हमें उस सत्य को देखने का अभ्यास कराती है जो प्रत्येक क्षण हमारे शरीर, मन और जीवन में घट रहा है।

वरिष्ठ साहित्यकार, कनाडा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

श्री लंका की महिलाओं के जीवन पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का विश्लेषण

डॉ. सरसि रणसिंह

शोध सार- बौद्ध धर्म और भारत का संबंध ऐतिहासिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत गहरा और अविच्छिन्न है। बौद्ध धर्म का जन्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भारत में हुआ और यहीं से इसका प्रसार श्री लंका जैसे एशिया के अनेक देशों तक पहुंचा। श्री लंका का सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास बौद्ध धर्म से गहराई से जुड़ा हुआ है। ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में बौद्ध धर्म के आगमन के प्श्चात बौद्ध धर्म ने न केवल धार्मिक चेतना को प्रभावित किया, बल्कि सामाजिक संरचना, नैतिक मूल्यों और लैंगिक दृष्टिकोण को भी आकार दिया। विशेष रूप से नारी जीवन पर बोद्ध धर्म का प्रभाव बहुआयामी रहा है, जिसमें आध्यात्मिक समानता, नैतिक आदर्श और सामाजिक भूमिका का पुनर्निर्माण सम्मिलित है। प्रस्तुत शोध सार में श्री लंका की महिलाओं के जीवन पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। बौद्ध धर्म कर्म, करुणा, समता और निर्वाण की अवधारणाओं पर आधारित है। इस शोध की मुख्य समस्या यह है कि क्या बौद्ध धर्म के अधीन श्री लंका की नारी स्वतंत्र जीवन बिता रही है कि नहीं, इसका मुख्य उद्देश्य श्री लंका की नारी की स्थिति में धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता को पहचानना और श्री लंका की नारी की पहचान के निर्माण मे बौद्ध धर्म की भूमिका का अध्ययन करना है। प्रस्तुत अध्ययन में श्री लंका के नारी जीवन पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का विश्लेषण करने के हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयिक दोनों प्रकार के आंकड़ो का संकलन किया गया है। संग्रहित आंकड़े गुणात्मक प्रकृति के हैं। इनका विश्लेषण व्याख्यात्मक और तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से किया गया है, जिससे यह स्पष्ट किया जा सके कि बौद्ध धर्म ने श्री लंका के नारी जीवन को किस प्रकार नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक स्तर पर प्रभावित किया है।

प्रमुख पद- नारी जीवन, बौद्ध धर्म, भारत स्वतंत्रता, श्री लंका।

विश्लेषण- श्रीलंका एक प्राचीन बौद्ध परंपरा वाला देश है, जहाँ बौद्ध धर्म केवल धार्मिक आस्था नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक जीवन का आधार रहा है। श्रीलंका का सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास बौद्ध धर्म से गहराई से जुड़ा हुआ है। ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में बौद्ध धर्म के आगमन के पश्चात् इसने न केवल धार्मिक चेतना को प्रभावित किया, बल्कि सामाजिक संरचना, नैतिक मूल्यों और लैंगिक दृष्टिकोण को भी आकार दिया। विशेष रूप से नारी जीवन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव बहुआयामी रहा है, जिसमें आध्यात्मिक समानता, नैतिक आदर्श और सामाजिक भूमिका का पुनर्निर्माण सम्मिलित है। प्रस्तुत शोध में श्रीलंका की महिलाओं के जीवन पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

यह शोध-पत्र श्रीलंका के नारी जीवन पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषण प्रस्तुत करता है। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में सम्राट अशोक के पुत्र महिंद और पुत्री संघमित्रा के माध्यम से बौद्ध धर्म का श्रीलंका में आगमन हुआ, जिसने वहाँ की सामाजिक संरचना और नैतिक मूल्यों को गहराई से प्रभावित किया। बौद्ध दर्शन में नारी को आध्यात्मिक मुक्ति की समान पात्र माना गया, जिससे श्रीलंकाई समाज में महिलाओं को धार्मिक और नैतिक गरिमा प्राप्त हुई। यद्यपि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों से पितृसत्तात्मक संरचनाएँ भी विद्यमान रहीं, फिर भी बौद्ध धर्म ने शिक्षा,

सामाजिक भागीदारी और नैतिक नेतृत्व में महिलाओं की भूमिका को सशक्त किया। यह अध्ययन ऐतिहासिक स्रोतों, सामाजिक विश्लेषण और आधुनिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर यह प्रतिपादित करता है कि बौद्ध धर्म ने श्रीलंका की नारी पहचान के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाई है।

श्रीलंका दक्षिण एशिया का एक प्रमुख बौद्ध देश है, जहाँ लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या बौद्ध धर्म का पालन करती है। यहाँ बौद्ध धर्म केवल एक धार्मिक परंपरा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक जीवन की आधारशिला है। जब महिंद थेर ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया, तब से यह धर्म वहाँ की सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग बन गया। विशेष रूप से महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण स्रोत बौद्ध विचारधारा रही है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि बौद्ध धर्म ने श्रीलंका की महिलाओं के जीवन—उनकी सामाजिक स्थिति, शिक्षा, पारिवारिक भूमिका, धार्मिक सहभागिता और आधुनिक सशक्तिकरण—को किस प्रकार प्रभावित किया। बौद्ध धर्म का प्रभाव श्रीलंकाई समाज के हर वर्ग पर पड़ा है, विशेष रूप से नारी जीवन पर। बौद्ध धर्म ने महिलाओं की स्थिति, अधिकार, कर्तव्य और सम्मान को एक नई दिशा प्रदान की है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- श्रीलंका में बौद्ध धर्म का आगमन तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ। ऐतिहासिक ग्रंथ दीपवंश और महावंश के अनुसार, सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा ने श्रीलंका में भिक्षुणी परंपरा की स्थापना की। यह घटना उस समय के लिए अत्यंत क्रांतिकारी थी, क्योंकि भारतीय उपमहाद्वीप में महिलाओं को धार्मिक नेतृत्व की सीमित ही स्वीकृति प्राप्त थी। अनुराधापुरा काल में भिक्षुणी संघ सक्रिय रहा और महिलाओं ने धार्मिक शिक्षा तथा सामाजिक सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुरातन सिंहली नारी की चर्चा करते हुए प्रॉ. इंद्राणी मुणसिंह ने लिखा है कि श्री लांकिक की सामाजिक संरचना बौद्ध दर्शन के आधार पर हुई है। जिस प्रकार गौतम बुद्ध ने नारी को स्वतंत्रता दी थी, उसी प्रकार श्री लांकिक समाज में भी नारी को स्वतंत्रता मिली थी। गौतम बुदध ने उनके बुद्ध शासन को भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका के रूप में चार भागों में विभक्त किया है।

बुद्ध के द्वारा दो भाग पुरुष पक्ष को और दो भाग स्त्री पक्ष को देने से ही यह बात साबित होती है कि उन्होंने स्त्री और पुरुष को बराबरी अधिकार दे दिया है।....श्री लांकिक ऐतिहासिक स्रोतों से यह स्पष्ट होता है कि श्री लंका की सामाजिक संरचना बौद्धवादी सोच पर आधारित चली आने के कारण श्री लांकिक समाज में नारी को गौरवपूर्वक स्थान मिला था। और उन्होंने आगे ऐसा भी लिखा है कि पुरातन और मध्य कालीन युगों में सिंहली संस्कृति पर हिंदू संस्कृति का प्रभाव अत्यंत अधिक पड़ा था। फिर भी श्री लंका का मुख्य धर्म, बौद्ध धर्म होने के कारण उसका कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इन तथ्यों से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि समीपतम देश होते हुए भी भारतीय नारी से ज्यादा सिंहली स्त्री को समाज में आदरपूर्वक स्थान मिलने के लिए बौद्ध धर्म का प्रभाव मूलभूत कारण बन गया है।

श्री लंका भूमि पर सर्वप्रथम बौद्ध धर्म को 'संघमित्रा' भिक्षुणी के द्वारा लाया गया था। और श्री लंका भूमि में सर्व प्रथम 'अनुला देवी' ने बौद्ध धर्म के अनुकूल प्रवज्या ग्रहण करके उच्चतम मार्ग-फल प्राप्त किया। 'अनुला देवी' श्री लंका की पहली भिक्षुणी थी। गौतम बुद्ध के धर्म को पहली बार भारत से श्री लंका तक एक नारी के द्वारा ही लाया गया था, तो इससे स्पष्ट होता है कि बुद्ध धर्म ने नारी को कितना महत्वपूर्ण स्थान दे दिया था और दूसरी विशेष बात यह है कि श्री लंका में भी पहली बार नारी के द्वारा ही बुद्ध धर्म का अग्रफल प्राप्त किया गया था। तो इससे स्पष्ट होता है कि श्री लंका में पुरुषों से भी ज्यादा नारियों ने धार्मिक कर्तव्यों में प्रमुख स्थान ले लिया था। श्री लांकिक भिक्षुणी शासन की व्याप्ति के लिए अनेक तथ्यों का प्रभाव पड़ा है, वे थे, समाज के विविध स्तरों की नारियों की बुद्ध शासन के अधीन प्रवज्या ग्रहण करना, भिक्षुणी शासन के लिए राजा का अनुग्रह मिलना और भिक्षुणियों को वासस्थान आदि पूजा करना। भिक्षुणी शासन में राज कन्याओं से लेकर दासियों तक सभी वर्ग की नारियों ने प्रवज्या ग्रहण कर ली थी।

'दीपवंशय' की एक गाथा में ऐसा लिखा है कि 'समुद्द नावा' एवं 'सीवली' नामक भिक्षुणियाँ राज कन्याएँ थीं। यह भी उल्लेख होता है कि 'समन्ता' औररूमहिला' नामक दोनों भिक्षुणियाँ राजा कावन्तिस्स की पुत्रियाँ थीं। और यह भी उल्लेख

है कि राज कन्या को प्रवज्या ग्रहण करने के लिए पिता की अनुमति मिलना आवश्यक था। उदाहरण स्वरूप 'सीहलवत्थुव' में लिखा गया है कि राजा सदधातिस्स की पुत्री पिता की अनुमति मिलने तक प्रवज्या ग्रहण करने के लिए नहीं गयी थी। राज कन्याएँ ही नहीं रानियाँ और राज माताएँ भी भिक्षुणियों के रूप में हमें मिलती है। इंद्राणी मुणसिंह जी ने लिखा है कि राजा देवानमपियतिस्स के भाई की पत्नी 'अनुला देवी' श्री लंका की सर्वप्रथम भिक्षुणी होती है और राजा दुट्ठगामिणी की माता 'विहारमहादेवी' भी भिक्षुणी बन गयी थी। इन रानियों के अतिरिक्त 'सीहलवत्थुव', 'सहस्सवत्थुव' और 'रसवाहिनिय' आदि में उल्लेख होता है कि अनेक ग्रामीण युवमियों ने भी प्रवज्या ग्रहण की थी। ऐतिहासिक स्रोतों में ऐसा भी उल्लेख हुआ है कि ये भिक्षुणियाँ बौद्ध धर्म को सिखायी हुईं अच्छी अध्यापिकाएँ भी थीं। प्रॉ.जी. पी. मललसेकर ने लिखा है कि ह्यू नेविल की नामावली के अनुसार इस प्रकार धर्म को सिखानेवाली सत्तर भिक्षुणियों में से आठ भिक्षुणियाँ इतिहास को भी जानती थीं। और 'दीपवंशय' श्री लंका में अबतक उपलब्ध एक ही पालि वंश कथा है। माना जाता है कि इसकी रचना भिक्षुणियों के द्वारा की गयी है। श्री लांकिक भिक्षुणियों के जीवन पर इसमें इतना विचार किया गया है, उतना तो अन्य किसीभी स्रोत में उल्लेख नहीं होता। इन बातों से ज्ञात होता है कि भिक्षुणियाँ अत्यंत शिक्षित थीं और वे शिक्षा दे भी सकती थीं।

इतना ही नहीं साधारण नारियाँ भी धार्मिक कृत्यों में भाग लेती थीं। इसका प्रमाण हमें मंदिरों के चित्रों से और अनेक ऐतिहासिक स्रोतों से मिलता है। 'धातुवंशय' में यह उल्लेख होता है कि राजा कावन्तिस्स के समय में (ई. पू. 2 में) 'सोमा देवी' और पाँच सौ राज कन्याओं ने तेल, फूल आदि ले जाकर भंतों को पूजा की थी। और 'महावंशय' में लिखा है कि राजा कावन्तिस्स की पत्नी ने भी नित्य तिस्समहाराम मंदिर में जाकर धार्मिक कृत्य किये थे। 'नन्ददेव विजेसेकर' ने कहा है कि सीगिरि चित्रों के नारी रूपों से यह विद्यामान होता है कि वे पिदुरंगल मंदिर को पूजने के लिए आयी हुई स्त्रियाँ हैं। सिर्फ़ पूजा विधि ही नहीं, नारियों ने भंतों को मंदिर भी बनवाकर पूजा की थी। नारियों के द्वारा मंदिर बनवाना, दुट्ठगामिणी अभय के (ई.पू. 161-137) राज्य समय तक पुराना कर्तव्य है। उदाहरण स्वरूप राजा 'दुट्ठगामिणी' की कतिय देवी द्वारा एक मंदिर बनवाया गया था। इतना ही नहीं राजाओं ने भी अपनी माताओं एवं रानियों के नाम पर मंदिर बनवाकर पूजा की थी। एक उदाहरण है कि राजा सद्धातिस्स ने अपनी माता 'विहारमहादेवी' के लिए मातु विहारय नामक मंदिर की स्थापना की है। और सेललिहिणि संदेश काव्य (102वीं कविता में) में आता है कि छठे राजा पराक्रमबाहु की पुत्री 'लोकनाथा' या 'उलकुडय देवी' ने दशविध पुण्य कर्मों को अतिशय श्रद्धापूर्वक मन से निभाया है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि धार्मिक कर्तव्यों में भाग लेने को पुरुषों ने उसे कितनी स्वतंत्रता दी थी और उनका कितना मान-सम्मान किया था।

बौद्ध दर्शन और नारी समानता- गौतम बुद्ध ने यह प्रतिपादित किया कि सभी प्राणी दुःख से मुक्ति पाने में सक्षम हैं। बौद्ध दर्शन में आत्मा की स्थायी सत्ता का निषेध (अनात्मवाद) और कर्म सिद्धांत यह स्पष्ट करते हैं कि मोक्ष या निर्वाण लिंग-आधारित नहीं है। भिक्षुणी संघ की स्थापना इस बात का प्रमाण है कि बौद्ध धर्म में स्त्री को आध्यात्मिक अधिकार प्राप्त है। थेरीगाथा जैसे ग्रंथों में प्राचीन भिक्षुणियों के अनुभव और ज्ञान का वर्णन मिलता है, जो नारी बौद्धिकता और आध्यात्मिकता का सशक्त उदाहरण है। बौद्ध धर्म में नारी को पुरुष के समान आध्यात्मिक उन्नति का अधिकार प्राप्त है। भगवान बुद्ध ने महिलाओं को भिक्षुणी संघ में प्रवेश की अनुमति दी, जो उस समय एक क्रांतिकारी कदम था। इससे यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म में नारी को बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप से सक्षम माना गया।

बौद्ध दर्शन में नारी की अवधारणा- बौद्ध दर्शन कर्म, करुणा, समता और निर्वाण की अवधारणाओं पर आधारित है। इसमें आत्मा या लिंग-आधारित श्रेष्ठता की धारणा को अस्वीकार किया गया है। बुद्ध ने यह स्पष्ट किया कि स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से बोधि (ज्ञान) प्राप्त करने में सक्षम हैं। भिक्षुणी संघ की स्थापना इस तथ्य का प्रमाण है कि बौद्ध धर्म ने स्त्रियों को धार्मिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्रदान की, जो उस काल के पितृसत्तात्मक समाज में असाधारण थी।

शिक्षा और सामाजिक विकास- बौद्ध धर्म ने शिक्षा को नैतिक विकास से जोड़ा। बौद्ध विहारों के माध्यम से महिलाओं में साक्षरता, नैतिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित हुई। श्रीलंका में महिलाओं की अपेक्षाकृत उच्च शैक्षिक उपलब्धियों के पीछे बौद्ध मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जा सकती है। नारी को केवल गृहस्थ

जीवन तक सीमित न रखकर, उसे बौद्धिक चेतना से जोड़ा गया। 'सीगिरि कॅटपत पवुर' में नारियों के द्वारा लिखी गयी अनेक कविताएँ मिलती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय में नारी की साक्षरता अत्यंत उच्च स्थान में थी। प्रो इंद्राणी मुणसिंह ने अपनी पुरातन लक्दिव कान्ताव नामक क्रति में लिखा है कि कि अन्य समकालीन देशों की नारियों से ज्यादा सिंहली नारी की साक्षरता उच्च स्तर पर थी।

पारिवारिक और सामाजिक जीवन में नारी- बौद्ध धर्म के पंचशील, करुणा और अहिंसा के सिद्धांतों ने पारिवारिक जीवन में नारी की भूमिका को नैतिक आधार प्रदान किया। पत्नी और माता के रूप में नारी को परिवार की स्थिरता और नैतिक संतुलन की वाहक माना गया। सामाजिक स्तर पर महिलाएँ दान, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक सेवा और सांस्कृतिक संरक्षण में सक्रिय रूप से सहभागी रहीं। बौद्ध धर्म ने शिक्षा को नैतिक अनुशासन से जोड़ा। विहार और मंदिर केवल पूजा-स्थल नहीं थे, बल्कि शिक्षण केंद्र भी थे। श्रीलंका में महिलाओं की उच्च साक्षरता दर का एक कारण यह धार्मिक-सांस्कृतिक विरासत है। बीसवीं शताब्दी में औपनिवेशिक प्रभाव और बौद्ध पुनर्जागरण आंदोलन ने महिलाओं की शिक्षा को और बल दिया। आज श्रीलंका में महिलाएँ विश्वविद्यालयों, प्रशासन और चिकित्सा क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दे रही हैं।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रभाव से महिलाओं को शिक्षा का महत्व समझाया गया। बौद्ध विहार (मठ) केवल धार्मिक केंद्र नहीं थे, बल्कि शिक्षा के केंद्र भी थे। इससे महिलाओं में नैतिक शिक्षा, आत्मअनुशासन और ज्ञान का विकास हुआ। आज भी श्रीलंका में महिलाओं की साक्षरता दर अधिक है, जिसमें बौद्ध परंपरा का योगदान महत्वपूर्ण है।

पारिवारिक जीवन और नैतिक मूल्यों पर प्रभाव- बौद्ध धर्म के पंचशील, करुणा (करुणा), मैत्री (मेत्ता) और अहिंसा जैसे सिद्धांतों ने पारिवारिक जीवन में महिला की भूमिका को नैतिक आधार प्रदान किया। पत्नी और माता के रूप में महिला को परिवार की नैतिक धुरी माना गया। कहते थे कि माँ घर के बुद्ध हैं। हालाँकि यह भूमिका कभी-कभी पारंपरिक अपेक्षाओं तक सीमित रही, परंतु बौद्ध नैतिकता ने उसे सम्मानजनक स्थान प्रदान किया। इतना ही नहीं साधारण नारियाँ भी धार्मिक कृत्यों में भाग लेती थीं। इसका प्रमाण हमें मंदिरों के चित्रों से और अनेक ऐतिहासिक स्रोतों से मिलता है। 'धातुवंशय' में यह उल्लेख होता है कि राजा कावन्तिस्स के समय में (ई. पू. 2 में) 'सोमा देवी' और पाँच सौ राज कन्याओं ने तेल, फूल आदि ले जाकर भंतों को पूजा की थी। और 'महावंशय' में लिखा है कि राजा कावन्तिस्स की पत्नी ने भी नित्य तिस्समहाराम मंदिर में जाकर धार्मिक कृत्य किये थे। 'नन्ददेव विजेसेकर' ने कहा है कि सीगिरि चित्रों के नारी रूपों से यह विद्यामान होता है कि वे पिदुरंगल मंदिर को पूजने के लिए आयी हुई स्त्रियाँ हैं। सिर्फ़ पूजा विधि ही नहीं, नारियों ने भंतों को मंदिर भी बनवाकर पूजा की थी। नारियों के द्वारा मंदिर बनवाना, दुट्ठगामिणी अभय के (ई.पू. 161-137) राज्य समय तक पुराना कर्तव्य है। उदाहरण स्वरूप राजा 'दुट्ठगामिणी' की कतिय देवी द्वारा एक मंदिर बनवाया गया था। इतना ही नहीं राजाओं ने भी अपनी माताओं एवं रानियों के नाम पर मंदिर बनवाकर पूजा की थी। एक उदाहरण है कि राजा सद्धातिस्स ने अपनी माता 'विहारमहादेवी' के लिए मातु विहारय नामक मंदिर की स्थापना की है। और सेललिहिणि संदेश काव्य (102वीं कविता में) में आता है कि छठे राजा पराक्रमबाहु की पुत्री 'लोकनाथा' या 'उलकुडय देवी' ने दशविध पुण्य कर्मों को अतिशय श्रद्धापूर्वक मन से निभाया है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि धार्मिक कर्तव्यों में भाग लेने को पुरुषों ने उसे कितनी स्वतंत्रता दी थी और उनका कितना मान-सम्मान किया था।

बौद्ध धर्म करुणा, मैत्री, सहनशीलता और अहिंसा पर बल देता है। इन मूल्यों ने श्रीलंकाई नारी को परिवार में शांति, त्याग और संतुलन बनाए रखने की भूमिका दी। पत्नी और माता के रूप में नारी को सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ। परिवार में नारी को नैतिक आधार स्तंभ माना गया।

भिक्षुणी परंपरा और नारी सशक्तिकरण- श्रीलंका में भिक्षुणी परंपरा ने महिलाओं को धार्मिक नेतृत्व और बौद्धिक आत्मनिर्भरता का अवसर दिया। भिक्षुणियाँ केवल धार्मिक अनुशासन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि शिक्षा, उपदेश और सामाजिक सेवा में भी सक्रिय थीं। यद्यपि ऐतिहासिक काल में यह परंपरा कुछ समय के लिए लुप्त हो गई, आधुनिक पुनरुत्थान ने नारी सशक्तिकरण को पुनः बल प्रदान किया है।

पुरातन सिंहली नारी की चर्चा करते हुए प्रॉ. इंद्राणी मुणसिंह ने लिखा है कि श्री लांकिक की सामाजिक संरचना बौद्ध दर्शन के आधार पर हुई है। जिस प्रकार गौतम बुद्ध ने नारी को स्वतंत्रता दी थी, उसी प्रकार श्री लांकिक समाज में भी नारी को स्वतंत्रता मिली थी। गौतम बुदध ने उनके बुद्ध शासन को भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका के रूप में चार भागों में विभक्त किया है।

बुद्ध के द्वारा दो भाग पुरुष पक्ष को और दो भाग स्त्री पक्ष को देने से ही यह बात साबित होती है कि उन्होंने स्त्री और पुरुष को बराबरी अधिकार दे दिया है।....श्रीलांकिक ऐतिहासिक स्रोतों से यह स्पष्ट होता है कि श्री लंका की सामाजिक संरचना बौद्धवादी सोच पर आधारित चली आने के कारण श्री लांकिक समाज में नारी को गौरपूर्वक स्थान मिला था। और उन्होंने आगे ऐसा भी लिखा है कि पुरातन और मध्य कालीन युगों में सिंहली संस्कृति पर हिंदू संस्कृति का प्रभाव अत्यंत अधिक पड़ा था। फिर भी श्री लंका का मुख्य धर्म, बौद्ध धर्म होने के कारण उसका कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इन तथ्यों से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि समीपतम देश होते हुए भी भारतीय नारी से ज्यादा सिंहली स्त्री को समाज में आदरपूर्वक स्थान मिलने के लिए बौद्ध धर्म का प्रभाव मूलभूत कारण बन गया है।

श्री लंका भूमि पर सर्वप्रथम बौद्ध धर्म को 'संघमित्रा' भिक्षुणी के द्वारा लाया गया था। और श्री लंका भूमि में सर्व प्रथम 'अनुला देवी' ने बौद्ध धर्म के अनुकूल प्रवज्या ग्रहण करके उच्चतम मार्ग-फल प्राप्त किया। 'अनुला देवी' श्री लंका की पहली भिक्षुणी थी। गौतम बुद्ध के धर्म को पहली बार भारत से श्री लंका तक एक नारी के द्वारा ही लाया गया था, तो इससे स्पष्ट होता है कि बुद्ध धर्म ने नारी को कितना महत्वपूर्ण स्थान दे दिया था और दूसरी विशेष बात यह है कि श्री लंका में भी पहली बार नारी के द्वारा ही बुद्ध धर्म का अग्रफल प्राप्त किया गया था। तो इससे स्पष्ट होता है कि श्री लंका में पुरुषों से भी ज्यादा नारियों ने धार्मिक कर्तव्यों में प्रमुख स्थान ले लिया था। श्री लांकिक भिक्षुणी शासन की व्याप्ति के लिए अनेक तथ्यों का प्रभाव पड़ा है, वे थे, समाज के विविध स्तरों की नारियों की बुद्ध शासन के अधीन प्रवज्या ग्रहण करना, भिक्षुणी शासन के लिए राजा का अनुग्रह मिलना और भिक्षुणियों को वासस्थान आदि पूजा करना। भिक्षुणी शासन में राज कन्याओं से लेकर दासियों तक सभी वर्ग की नारियों ने प्रवज्या ग्रहण कर ली थी।

'दीपवंशय' की एक गाथा में ऐसा लिखा है कि 'समुद्द नावा' एवं 'सीवली' नामक भिक्षुणियाँ राज कन्याएँ थीं। यह भी उल्लेख होता है कि 'समन्ता' औररूमहिला' नामक दोनों भिक्षुणियाँ राजा कावन्तिस्स की पुत्रियाँ थीं। और यह भी उल्लेख है कि राज कन्या को प्रवज्या ग्रहण करने के लिए पिता की अनुमति मिलना आवश्यक था। उदाहरण स्वरूप 'सीहलवत्थुव' में लिखा गया है कि राजा सदधातिस्स की पुत्री पिता की अनुमति मिलने तक प्रवज्या ग्रहण करने के लिए नहीं गयी थी। राज कन्याएँ ही नहीं रानियाँ और राज माताएँ भी भिक्षुणियों के रूप में हमें मिलती है। इंद्राणी मुणसिंह जी ने लिखा है कि राजा देवानमपियतिस्स के भाई की पत्नी 'अनुला देवी' श्री लंका की सर्वप्रथम भिक्षुणी होती है और राजा दुट्ठगामिणी की माता 'विहारमहादेवी' भी भिक्षुणी बन गयी थी। इन रानियों के अतिरिक्त 'सीहलवत्थुव', 'सहस्सवत्थुव' और 'रसवाहिनिय' आदि में उल्लेख होता है कि अनेक ग्रामीण युवमियों ने भी प्रवज्या ग्रहण की थी। ऐतिहासिक स्रोतों में ऐसा भी उल्लेख हुआ है कि ये भिक्षुणियाँ बौद्ध धर्म को सिखायी हुईं अच्छी अध्यापिकाएँ भी थीं। प्रॉ.जी. पी. मललसेकर ने लिखा है कि ह्यू नेविल की नामावली के अनुसार इस प्रकार धर्म को सिखानेवाली सत्तर भिक्षुणियों में से आठ भिक्षुणियाँ इतिहास को भी जानती थीं। और 'दीपवंशय' श्री लंका में अबतक उपलब्ध एक ही पालि वंश कथा है। माना जाता है कि इसकी रचना भिक्षुणियों के द्वारा की गयी है। श्री लांकिक भिक्षुणियों के जीवन पर इसमें इतना विचार किया गया है, उतना तो अन्य किसीभी स्रोत में उल्लेख नहीं होता। इन बातों से ज्ञात होता है कि भिक्षुणियाँ अत्यंत शिक्षित थीं और वे शिक्षा दे भी सकती थीं।

सामाजिक सम्मान और नैतिकता- बौद्ध धर्म ने नारी को केवल सौंदर्य या सेवा तक सीमित नहीं किया, बल्कि उसे नैतिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। दान, शील और ध्यान जैसे गुणों के माध्यम से महिलाओं ने समाज में आदर्श भूमिका निभाई। धार्मिक उत्सवों, दान कार्यों और सामाजिक सेवाओं में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी देखी जाती है।

निष्कर्ष- कुल मिलाकर, बौद्ध धर्म ने श्रीलंका के नारी जीवन को नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से सशक्त

बनाया है। इसने महिलाओं को सम्मान, शिक्षा और आत्मविकास का मार्ग दिखाया। आज की श्रीलंकाई नारी परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाते हुए आगे बढ़ रही है, जिसमें बौद्ध धर्म की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। विश्लेषण से स्पष्ट है कि श्रीलंका के नारी जीवन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव बहुआयामी रहा है। इसने महिलाओं को आध्यात्मिक समानता, नैतिक सम्मान और शिक्षा का आधार प्रदान किया। यद्यपि सामाजिक संरचनाओं के कारण कुछ सीमाएँ बनी रहीं, फिर भी बौद्ध धर्म ने श्रीलंका में नारी सशक्तिकरण की आधारभूमि तैयार की। आधुनिक युग में आवश्यकता है कि बौद्ध सिद्धांतों की समानतावादी भावना को व्यावहारिक रूप में लागू किया जाए, जिससे श्रीलंका की महिलाएँ सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में पूर्ण सहभागिता प्राप्त कर सकें।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म ने श्रीलंका के नारी जीवन को नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से गहराई से प्रभावित किया है। इसने स्त्रियों को सम्मान, शिक्षा और आत्मविकास की वैचारिक भूमि प्रदान की, यद्यपि सामाजिक संरचनाओं के कारण इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति सदैव संभव नहीं हो सकी। फिर भी, श्रीलंका की नारी पहचान के निर्माण में बौद्ध धर्म की भूमिका केंद्रीय और स्थायी रही है।

संदर्भ सूची

Bartholomeusz, T. (1994). Women under the Bo tree: Buddhist nuns in Sri Lanka. Cambridge University Press.

De Silva, K. M. (2005). A history of Sri Lanka. Penguin Books.

Gross, R. (1993). Buddhism after patriarchy: A feminist history, analysis, and reconstruction of Buddhism. State University of New York Press.

Gombrich, R. (2006). Theravada Buddhism: A social history from ancient Benares to modern Colombo.

Wijayaratna, M. (1990). Buddhist monastic life according to the texts of the Theravada tradition. Cambridge University Press.

De Silva, K. M. (1981). A history of Sri Lanka. University of California Press.

Obeyesekere, G. (2002). Imagining karma: Ethical transformation in Amerindian and Buddhist thought. University of Chicago Press.

Munasinghe, Indrani (1998) Parani Lakdiva Kanthawa, keheli Pubilications.

Dharmveer, (2005) Theirgatha Ki Sthriyan aur Dr Ambedkar, New Delhi. Wani Publications.

बौद्ध और पालि विश्वविद्यालय, श्री लंका

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

सिंहली जातक कथा संग्रह में राम कथा

Dr. Amila Damayanthi

सिंहली भाषा और साहित्य पाली से और संस्कृत से प्रभावित किया गया है, पाली एक भाषा है जिसमें बौद्ध कैननिकल लेखन संरक्षित किए गए थे। पाली की उत्पत्ती उज्जैन के इलाके की बोली पर विचार करते हुए कुछ विद्वानों का राय है, लेकिन मागधी से संबंधित अन्य भारतीय-आर्य भाषाओं की तरह, जो बुद्ध अपने धर्म प्रचार में इस्तेमाल करते थे। बुद्ध धर्म की पढ़ाई पाली में थी, राजा अशोक के पुत्र महेन्द्र के साथ पाली की बौद्ध शिक्षा लंका में आ गई। तत् पश्चात् पाली के साहित्य भी लंका में विकसित हो गये। इस पाली साहित्य का वस्तु विषय भगवान बुद्ध और उनकी गहराई मोक्ष प्राप्ति माग्र की थी।

सिंहली साहित्य का मूलारम्भ के लिए पाली साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है। पाली साहित्य जैसे सिंहली साहित्य ग्रन्थों की रचनाएँ भी बौद्ध धर्म के वस्तु पर रचना हुई थीं। साधारण जन पाली साहित्य के ज्यादातर सिंहली साहित्य की रचनाओं को अपना लिया है। अनुराधापुर राजधानी (ई. 1017-1236) से लेकर उडरट राजधानी (ई. 1505-1707) तक बहुत बौद्ध पुस्तकें सिंहली में लिख चुकी थी (उस सिंहली वर्तमान सिंहली से थोड़ा बहुत पृथक है)। विशेषतः ये पुस्तकें केवल बौद्ध के वस्तु विषयों तक सीमित थीं।

अनुराधापुर राजधानी का समय (ई.पू. 3 शतवर्ष) सिंहली साहित्य का प्रथम युग माना गया है। इसका प्रारम्भ काल 'मिहिदु' समय से अभिहित किया जाता है। मिहिंदु मतलब महेन्द्र है। अर्थात् सम्राट अशोक के पुत्र 'महेन्द्र' का समय है। उस समय सिंहली 'हेला' नाम से कहा जाता है। सिंहली लेखन और साहित्य की उन्नति भिक्षु के लंका आगमन के साथ प्राप्त होने के कारण सिंहली साहित्य का प्रारम्भ समय मिहिंदु (Mihindu) समय के नाम से माना गया है। उसी समय महेन्द्र के अधीन में बहुत सिंहली धर्म ग्रन्थ लिखी जा चुकी थीं। वे शास्त्रज्ञ विद्वान के रूप से माने गये हैं। उसी ज्ञान के साथ पाली के धर्म ज्ञान सिंहली में लिखी गयी है।

'समन्तपासादिका' ग्रन्थ के अनुसार भिक्षु महेन्द्र के श्री लंका के आगमन से पहले वे भारत में रहते समय अट्ठकथा सहित अभिधर्म, विनय तथा सूत्र आदि त्रिपिटक की जानकारी थी एवं उन्होंने हजार भिक्षुक लोगों के अध्यापक के रूप में काम भी किया था। उसी अट्ठकथाओं के शेष पत्रों के अनुसार महेन्द्र अर्थ कथाओं की (अट्ठकथाओं) श्री लंका ले के आ गए हैं। इसके संबंध में लघु रूपी दिक्सगि, मेदुम् सगि, संयुक्त सगि, अंगुत्तरा सगि आदि अटुवा ग्रन्थों की गाथाओं में उल्लेख हैं। ई. 5 में लिखित महा अट्ठकथा, उत्तर अट्ठकथा, महा पच्चरी अट्ठकथा, अन्धट्ठकथा, संखेमट्ठ कथा, पौराणट्ठ कथा, विनयट्ठ कथा, अभिधम्मट्ठ कथा, सुत्तन्नट्ठ कथा, और जातकट्ठ कथा आदि सिंहली में थी। परंतु आजकल ये सब देखने को नहीं मिलते। परंतु इससे स्पष्ट होता है कि, ई. 5 में जातकट्ठ कथा का सिंहली रूप अर्थात् सिंहली की जातक कथाएँ थीं। इसमें दशरथ जातक भी था। सिंहली साहित्य की जातक कथाओं का मूल रूप उसी जातकट्ठ कथा मानी गयी है।

फादर कामिल बुल्के अपनी पुस्तक 'राम-कथा' में इसके सम्बन्ध में इस प्रकार का मत प्रस्तुत किया है कि, पाली जातकट्ठवण्णना पाँचवी शताब्दी की एक सिंहली पुस्तक का अनुवाद है। मूल सिंहली पुस्तक जिसमें केवल गाथाओं को पाली में दी गई थी। आजकल अप्राण्य है। इसके अज्ञात लेखक का कहना है कि मैंने अनुराधापुर की परंपरा के आधार पर अपनी रचना की है।

वास्तव में अनुराधापुर युग में रचित (ऊपर लिखित) मिहिदु समय की रचनाएँ आजकल देखने को नहीं मिलती तो उसका पाली अनुवाद मिलता है। महेन्द्र प्रमुख भिक्षु से सिंहली (हेला) में रचित अट्ठकथाएँ फिर भक्त बुद्ध घोष ने अपने शिष्य भिक्षु के साथ पाली में अनुवाद किये थे। इसका दीर्घ परिचय महावंश के अन्तर्गत है। महावंश के अनुसार अट्ठकथा का अनुवाद सिंहली से मागधी भाषा में हुआ है। वर्तमान में देखी गयी पाली जातक कथाएँ उसी समय मागध से रचित जातक कथा हो सकता है नहीं तो इसका मूल रूप भी हो सकता है।

ई.पू. 1 वी तक उसी त्रिपिटकार की ज्ञान सूत्र भाणक् अभिधर्म भाणक् विनय भाणक् तथा मज्झमा भाणक् एक एक धर्म की हिस्साएँ कंठस्थ के रूप से लेकर आ गई है। इसके कंठस्थ रूप पाली या सिंहली में हो सकती है। फिर ई.पू. 1 में मातले अलुविहारे नामक बौद्ध मंदिर में इन सबकी कंठस्थ रूपी अट्ठकथाएँ सिंहली में लिखित रूप में अनुवादित हुई थी। इसका परिचय दीपवंश नामक पाली वंश कथा ग्रन्थ में उल्लेख है। ई. पू. प्रथम की कंठस्थ रूपी अट्ठकथाएँ सिंहली में लिखी गई फिर भी जातक कथा का परिचय कहीं भी नहीं मिलता है।

सिंहली में लिखित जातक कथा की पुस्तक 'पन्सिय पनस् जातका कथा पोत' नाम से अभिहित किया जाता है। 'पन्सिय पनस' की सिंहली अर्थ पाँच सौ पचास होता है। अर्थात् इसके अन्तर्गत इस ग्रन्थ में पाँच सौ पचास जातक कथाएँ आ जाती है। सचमुच आजकल इसमें पाँच सौ पचास की कथाओं की संख्याएँ उपलब्ध होती, पर परम्परा के रूप से उसी नाम से अभिहित किया गया है। वर्तमान 'पन्सिय पनस् जातक पोत' में पाँच सौ चालिस जातक कथाएँ है। जातक कथाएँ अट्ठकथाकार द्वारा पाली से संबंधित हो गई है। इसका सिंहली रूप भिक्षु लोग और साधारण जन में कंठस्थ रूप में थी। यही जातक कथाएँ 13 शताब्दी में कुरुणगल नामक एक राजधानी (ई.1302-1326) में राजा, VI वीं पराक्रम्बाहू के शासन में मंत्री बौद्ध धर्म के विशेषज्ञ, शास्त्रज्ञ विद्वान वीरसिंह प्रतिराजा के द्वारा सिंहली में लिखा गया है। वे जातक कथाएँ इस प्रकार लेखने तक कंठस्थ के रूप से सुरक्षित रह गई। इसके साथ-साथ इसके संबंध में एक ओर मत है कि, वीरसिंह प्रतिराज ने पाली जातकट्ठकथाओं को सिंहली में अनुवाद लिया था। विद्वान इन दोनों मतों पर अपना विश्वास रखते हैं। 'पन्सिय पनस् जातक कथा पोत' का प्रथम मुद्रण (छपाई) ई.1888 वीं में मिगेट्टु वत्ते गुणानन्द नामक एक गुणवान भिक्षु द्वारा हो गयी है। इसकी लम्बाई के कारण 'पन्सिय पनस् जातक कथा पोत' को 21 खंडों से निकाले गये हैं।

सिंहली समाज में 'पन्सिय पानस् जातक पोत' को एक महत्वपूर्ण रचना माना गया है। इसका प्रयोग अत्यन्त गौरव तथा विनम्रता से किया जाता है। 'पन्सिय पानस् जातक पोत' पूजनीय है। गौतम बुद्ध के दस प्रकार पारनी धर्म पूर्ति की जीवन यात्राओं के अमूल्य अनुभवों का परिचय जातक कथा के रूप में हमें मिले हैं।

बुद्ध को अपने बुद्ध तत्व प्राप्त करने से पहले, बुद्ध प्राप्त के इच्छुक बोधिसत्त को अनेक जन्मों में अनेक जाति कुल विभिन्न जन्मों को मानते हुए असंख्य लाखों जन्मों से गुज़रना पड़ा। गौतम बुद्ध ने धर्म का अभ्यास किया; उन्होंने सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की, अपने प्रतिद्वंदी पर विजय प्राप्त की, और आखिर पूरी तरह से प्रबुद्ध व्यक्ति की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त की। वेस्सन्तर जातक, राजकुमार सिद्धार्थ के जन्म से पहले बोधिसत्ता की आखिरी और सबसे लंबी जन्म कहानी है। उस जीअन में, उन्होंने उदारता की पूर्णता दान परमिता का अभ्यास किया। त्यागशीलता, संक्रमण, बुद्ध की प्राप्ति के लिए आवश्यक कारक, जो कि वह कई ज़िंदगी के लिए अभ्यास कर रहा था, केवल इस वेस्सन्तर जीवन में ही उनको फाल मिल गया। इसके अन्तर्गत दस रूपों जातक कथाएँ हैं, दस सबसे लोकप्रिय जातक, जिनमें से प्रत्येक में बोधिसत्ता परंपरागत रूप से दस में प्रत्येक संक्रमण के अभ्यास करने के लिए किया जाता है। इन जातकों के पहले जन्म में प्रकट होता है जो सिंहासन को बुलाता है और गूंगा होने का नाटक करता है। दूसरा जीवन, जनक-जातक, वह एक छोटे भाई के खिलाफ युद्ध में मारे गए राजा के पुत्र हैं, और निर्वासन में पैदा हुए हैं। तीसरे जातक में, सुवब्बा जातक में, वह अंधे माता-पिता से पैदा हुआ है, जो एक तपस्वी जीवन का नेतृत्व करता है। चौथा जातक, नीमी-जातक, शिक्षक नेमिराजा के रूप में अपने जीवन से संबंधित है। पाँचवा जातक, महासाँध-जातक, एक बुद्धिमान सलाहकार और न्यायाधीश के रूप में अपन? जन्म से संबंधित है। छठे जातक में, भूरिदात्त जातक में, वह एक नाग राजा है जो पृथ्वी पर, सिला का अभ्यास करने के लिए आता है। सातवें जातक

में चंद्रकुरा के रूप में पैदा हुआ है। आठवें जन्म में धर्मसोड जातक, बोधिसत्व एक राजा है, जो अपना सबकुछ को दान में देता है और फिर सिंहासन छोड़कर जंगल में जाता है। जहाँ वह लोकप्रिय और बुद्धिमान है और राजा के शिक्षक और सलाहकार के रूप में कार्य करता है। दसवें जातक में, वेस्सन्तर जातक, वेस्सन्तर के रूप में पैदा किया जा रहा है, राजा वेस्सन्तर बोधिसत्व है। वह अपने पत्नी और पुत्र, पुत्री के साथ सिंहासन छोड़ कर जंगल जा के योगी बन जाते है। शक्र ने वेस्सन्तर बोधिसत्व का त्यागी जीवन का परीक्षा लेने के लिए एक ब्राह्मण का वेश धारण करके वहाँ आकर उसकी संतान माँग रहा है, तब वेस्सन्तर अपना संतान दे देता है।

ऊपर लिखित मूल जातक कथाओं से स्पष्ट होता है कि जातक कहानियाँ मानव और पशु दोनों रूपों में गौतम बुद्ध के पिछले जन्मों से संबंधित भारत के मूल समाज के एक विशाल शरीर हैं। भविष्य में भी भगवान बुद्ध एक राजा, एक बहिष्कार, एक देवता, एक हाथी, एक नाग, एक पक्षी, एक नौकर आदि विभिन्न चरित्र के रूप में या मानव या पशु के रूप में प्रकट हो सकता है, लेकिन किसी भी रूप में, अनेक प्रकार के गुण दिखाता है इस प्रकार की कहानियाँ उत्पन्न होती है। अक्सर, जातक कथाओं में वर्णित पात्रों की एक विस्तृत भूमिका शामिल होती है, जो बातचित करती हैं और विभिन्न प्रकार की परेशानी में आ जाएँ जहाँ बुद्ध चरित्र सभी समस्याओं को हल करने और एक खुशी समाप्त करने के लिए हस्तक्षेप करता है।

रामकथाओं को वैदिक साहित्य में वाल्मीकि कृत रामायण में महाभारत में जैन साहित्य में, संस्कृत ललित साहित्य में आदि विभिन्न साहित्य कृतियों में एक एक प्रकार से अपलब्ध हो जाते हैं। इनमें से बौद्ध साहित्य की रामकथा समाज में अत्यन्त प्रचलित है तथा विवादजनक भी है। कारण यह है कि, इसमें राम कथा का मूल रूप सुरक्षित है और अन्य साहित्य कृतियों में उपलब्ध राम कथा से इसके रूप का अन्तर दिखाया जाता है। मूल रूप से शुरुआती बौद्ध साहित्य में जातककथा है। यह राजा अशोक के समय से संबंधित थेरवाद जातकों से बद्ध हो गया। इसका पालि अटुवा की जातक कथाओं से ज्यादा सिंहली जातक कथाएँ को लंका समाज में प्रचलित हो गया। बह्गवान बुद्ध के प्रवचन के अन्तर्गत आठ प्रकार के धर्म की पढ़ाई जातक कथाओं के माध्यम से दी है। आठ प्रकार के इस धर्म में अर्थात् लाभ, अलाभ, यश, अयश, निन्दा प्रशंसा, सुख और दुख के सामने बिना चंचल चित्त रहने की 3 पढ़ाई जातक कथाओं में हैं। श्री लंकीय समाज में बोधिसत्व के गुण उत्कृष्टता से वर्णित कर रहे हैं। बोधिसत्व के अवश्यंभावी स्थिर गुण का पाठ जातक कथाओं से अपनाये थे। हर वर्ष में एक महीने में पूर्णिमा दिवस में बौद्ध लोग बौद्ध मंडिर में जाते हैं और भुक्षु लोगों से धर्मानुशासन सुनाये जाते हैं। भिक्षु लोगों के उन भाषणों को सिंहली में 'बण' कहते है। उस 'बण' में अनिवार्य रूप से जातक कथाएँ सम्मिलित होती है। जातक कथा बुद्ध भगवान के गहरे धर्माध्यापन में सरल हिस्सा है। यहाँ के बौद्ध जन अत्यन्त इच्छा से जातक कथाओं को सुनाते है एवं पढाते हैं। उस वातावरण में दशरथ जातक कथा सिंहली बौद्ध जन को नयी कहानी नहीं मिलती। वे राजा राम अपने गुरु भगवान बुद्ध का बोधिसत्व जन्म अवस्था के रूप से ग्रहण किये हैं। श्री लंका में बहुत जन बौद्ध धर्म पर अभ्यास कर रहें हैं। उन पर तमिल के हिन्दू धर्म का प्रभाव बहुत प्राचीन से हो गया है। वर्तमान में विष्णु के एक अवतार के रूप में और भगवान बुद्ध के बोधिसत्व के रूप में राम जी माने गये हैं। इसके लिए जातक कथाओं की परिस्थिति का प्रभाव महत्वपूर्ण था।

सिंहली जातक कथा संग्रहय में राम कथा

सिंहली जातक कथाएँ पाली का अटुवा का अनुवाद माना जाता है। परंतु फादर कामिल बुल्के के अनुसार यह जातक जातकट्ठवण्णना में पाये जानेवाले तथा पाँचवीं शताब्दी की एक सिंहली पुस्तक के पाली अनुवाद के रूप से दिखाया जाता है। उसके अनुसार सिंहली जातक कथा की पुस्तकों में को कथाएँ पाई जाती है वे प्राचीन पाली गाथाओं की टिका के रूप में लिखी गई हैं।

आजकल भी सिंहली समाज में प्रयोग करनेवाली प्रत्येक जातक कथाओं में पहले 'वर्तमान कथा' दी जाती है जिसमें यह बतलाया जाता है कि किस अवसर पर महात्मा बुद्ध ने इस जातक कथा को कहा है। यह जातक कथा की आकृति है। यह इसका पहला-खण्ड होता है। दूसरा खण्ड इससे संबंधित अतीत कथा होती है। जिसे वास्तविक जातक मानना चाहिए।

अंतिम खण्ड है, जिसमें महात्मा बुद्ध जातक का सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं। जिसमें वह वर्तमान कथा और अतीत कथा के पात्रों की अभिन्नता प्रकट करते है। जातक कथा के शरीर में ये तीन खण्ड इस प्रकार से दिखाया गया है।

पच्चुप्पन्न वस्थु (प्रथम खण्ड)
अतीतवस्थु (द्वितीय खण्ड)
समोधन (तृतीय खण्ड)

जातक कथा की घटनाएँ अतीत में होती हुई भी इसकी सम्बन्धता वर्तमान तक आ जाती है। इसलिए जातक कथा से अतीत वर्तमान के वातावरण विद्यामान है। इनके लिए एक टीका जोड़ी गई है जिसमें गाथा के प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है।

सिंहली के 'पन्सिय पनस् जातक कथा पोत' में अन्तर्गत 449 वीं जातक का नाम दशरथ जातक था। इसके अन्तर्गत राम की पौराणिक कथा है। मैंने भी मेरे गाँव के बुद्ध मंडिर के प्रवचन शाला में बैठ के भन्ते जी के भाषण से दशरथ जातक को सुनी थी। लंका में वैशाख्य दिनों में बौद्ध लोग विभिन्न जातक कथाओं की सिद्धि माला चित्र के माध्यम से प्रदर्शन की जाती है। इसे 'तोरण' कहते है। उसी प्रदर्शन में दशरथ जातक भी चित्रों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

दशरथ जातक कथा की मुखिया बोधिसत्व राम है। इसमें राम के चरित्र द्वारा कई अभिलाषाएँ पूर्ति की गई है–

1. प्रिय के वियोग दुख में चंचल होने की असफलता बताना
2. संयोग के बोध से लाभ उठाने का मार्ग कहना
3. शोक की निश्फलता दिखाना
4. स्थिर गुण समझाना
5. त्याग का सुख कहना

'पन्सिय पनस् जातक पोत' पवित्र बौद्ध साहित्य का एक बड़ा सिद्धान्त है जिसमें कुल पाँच सौ पचास उपाख्यानों और तथ्यों के इस संग्रह में सिद्धार्थ गौतम के पहले आत्म की दशाएँ चित्रित हैं। गौतम के पारम्परिक जन्म और मृत्यु तिथि 563-483 ईसा पूर्व है। जातक कथाएँ 300 ईसा पूर्व और 400 इसवी के बीच दिनांकित हैं।

दशरथ जातक सिंहली 'पन्सिय पनस् जातक पोत' में सुन्दर ढंग से रचित है। इसमें वर्तमान और अतीत कथा दोनों उपलब्ध है। सबसे अन्त में समोधन दिया जाता है।

सिंहली 'पन्सिय पनस् जातक पोत' के दशरथ जातक की राम-कथा का संक्षेप इस प्रकार है :

वर्तमान कथा

वह कहानी भगवान बुद्ध ने जेतवन आश्रम में एक मकान मालिक को बताया। जिसके पिता मर गए थे। वह आदमी अपने पिता की मौत पर पछताता था। अपने सभी कर्तव्यों को पूर्ववत नहीं किया। भगवान बुद्ध की एक आदत थी कि दिन की शुरुआत भोर में किसी पुण्यवान मानव को अपनी सहायता देने के लिए ढूँढना। अपने मन रूपी नेत्र युग्म से पृथ्वी पर ध्यान से देखते समय उसी मकान मालिक को देख लिया। उसके पुण्यवान गुण के काराण उस आदमी के घर गये और उसे अभिवादन दिया, और वहाँ बैठकर उसे संबोधित किया। इतना सुन्दर मिठास के शब्दों में बुद्ध ने ऐसे प्रश्न पूछ लिया 'तुम दुख में हो? कारण क्या है? बताओ3 उन्होंने कहा,

'हाँ महोदय, मैं मेरे पिता के काराण दुख से पीड़ित हूँ। फिर आपस में भगवान ने बोल दिया 'हे, भाई बुद्धिमान पुरूष! जो इस दुनिया की आठ स्थितियों को वास्तव में जानते थे, पिता की मृत्यु में कोई दुःख नहीं, थोड़ा सा भी नहीं।" फिर उसके अनुरोध पर उन्होंने अतीत की कहानी सुनाई।

अतीत कथा

एक बार, बनारस में, महान राजा दशरथ ने बुराई के मार्गो को त्याग दिया, और धर्म में शासन किया। अपनी सोलह

हजार पत्नियों में से, सबसे बड़ी और रानी-पत्नी ने उन्हें दो बेटे और बेटी पैदा की।

बड़े पुत्र का नाम राम-पंडित या राम का भाई लकूखन या लखी था। उसकी बहन सीता थी। समय के साथ राजा दशरथ की रानी पत्नी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर राजा लंबे समय तक दुःख से व्यथित हो गये थे, लेकिन अपने दरबारियों के आग्रह पर और रानी-पत्नी के रूप में अपने स्थान पर एक ओर बैठा लिया। वह रानी राजा के सबसे प्रिय थी। समय के साथ वह रानी भी गर्भवती हुई उसने एक बेटे को जन्म दिया, और उन्होंने उसे भरत नाम दिया। पुत्र लाभ से संतुष्ट होकर राजा ने उसी अवसर पर उसको एक वर माँगने की अनुमती दी। रानी ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। लेकिन उस समय कुछ भी नहीं माँगा जब बच्चा वर्ष का था, तो उसने राजा के पास जाकर उससे कहा, 'हे मेरे प्रभु' 'मेरे बेटे को राज्य दें'। 'राजा ने अपनी रानी को झापड़ मारा और कहा 'जा यहाँ से जा दुष्ट स्त्री जाउ! उसने गुस्से में कहा, 'मेरे तो अन्य बेटे है। क्या आप उन्हें मार देंगे। और अपने बेटे के लिए राज्य से माँगेगी?' 'वह अपने शानदार कक्षा में डरकर भाग गई, और दूसरे दिन वह रानी राजा से बार बार पूछा। राजा उसे यह उपहार नहीं दिया। उसने मन में सोचा 'महिलाएँ कृतज्ञ और विश्वासघाती हैं। यह महिला मेरे बेटों को मारने के लिए जालीडार पत्र या विश्वासघाती रिश्वत का उपयोग अक्र सकती है।' इसलिए राजा ने अपने बेटों को बुलाकर, उन सभी को इस प्रकार कहा 'मेरे बेटे, यदि आप यहाँ रहते हैं तो कुछ अनिष्ट (विनाश) हो सकता है। कुछ पड़ोसी राज्य या जंगल की भूमि पर जाएँ, और जब मेरा शरीर जला दिया जाए, तो वापस आएँ और इस राज्य को वापस आएँ और इस राज्य को वापस प्राप्त करें जो आपके परिवार से संबंधित हैं।' यहाँ रहने से तुम्हारे अनर्थ होने की संभावना है। तब राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर उनसे पानी मृत्यु की अवधी पूछी। उन्होंने कहा आज से बारह वर्ष में राजा का देहान्त हो जाए। वह बात सुनकर राजा ने अपने बच्चे को बुलाकर कहा कि, दोनो पुत्र, बारह वर्ष के बाद आकर राज्य पर शासन करने.." दोनो बच्चे पिता की बंदना करके चले जाने वाले ही थे कि सीता देवी भी पिता से विदा लेकर उनके साथ चल पड़ी। सब लोग हिमालय के बीच चले गए। वहाँ एक जगह अच्छी तरह से पानी के, रहने के, फल के लिए सुविधाजनक और सुन्दर था, उन्होंने एक आश्रम बनाया और वहाँ की जंगली फलों का भोजन किया।

समयानुसार लक्ष्मण और सीता ने राम-लक्ष्मण से कहा, 'तुम हमारे पिता के स्थान पर हो, झोपड़ी में रहो और हम जंगली फल लाएँगे और तुम्हें खिलाएँगे। वह राम, बात सुनके, लक्ष्मण की बात पर सहमत हुए, तन से राम पंडित वहाँ रहते थे। अन्य लोग जंगली फल लाए और उसका भोजन किया।

इस प्रकार वे जंगली फल का भोजन करते हुए वहाँ रहते थे। परंतु राजा दशरथ नौ वर्ष के बाद, दशरथ पुत्र शोक के कारण मर जाते हैं। रानी भरत को राजा बनाने में असफल होती है। क्योंकि अमात्य और भरत भी इसका विरोध करते हैं। तब भरत चतुरंगिणी सेना लेकर राम को ले आने के उद्देश्य से वन को चले जाते हैं। बरत ने हिमालय के राम लक्ष्मण आश्रम तक पहुँच कर अपनी सेना एक स्थान पर छोड़कर राम जी पास आये। उस वक्त आश्रम में लक्ष्मण और सीता नहीं थे। भरत ने अपने भाई के पाँव छूकर के रो रो कर अपने पिता जी की मृत्यु की सूचना दी। उस वक्त राम रोये। उस वक्त राम जी ऐसा सोचने लगे कि शाम को अपने भाई और बहन आएँगे इस सूचना को सुनकर वे दोनों के हृदय दुःखी हो जाएँगे। इसलिए राम ने सोचा कि इस सूचना को उन दोनों को एक तालाब में उतार के जल में रहते समय कहूँगा और धैर्य देने के लिए अनित्यता का धर्मोपदेश सुनाऊँगा।

संध्या समय तक लक्ष्मण और सीता देवी कुटी में लौटते हैं। राम ने कहा आप दोनों बहुत देर से आए हैं इसलिए एक दंड दूँगा, सीता और लक्ष्मण को तालाब में उतार के पिता के देहान्त की सूचना दी। उस वक्त दोनों अत्यन्त शोक से तालाब के जल पर मूर्छित होकर गिर गए। बार बार गिरते समय राम पंडित वे दोनों को अपने हाथ की शक्ती से उठा लेते हैं और शोक कम हो जाने के बाद उनका मन शांत कराते हैं। उसका आश्चर्य देखने से भरत ने अपने भाई राम से ऐसे पूछा कि, हे पुण्यवान! पिता की मृत्यु सुनके हम बहुत शोक कर रहे थे। लेकिन आप सब दुःख सहन कर लेते हैं। इसका कारण क्या है?

राम पंडित अपने भाई को ऐसा उत्तर दिया 'हे भरत! राम पंडित कभी भी शोक नहीं करता। विज्ञान बहुत शक्तिशाली

है। दो आँखों से नहीं मन से देखो, देखकर यथा-स्थिति ग्रहण कर लो। हम पृथ्वी पर जन्म लेते हैं फिर कालानुसार मृत्यु होती है। हमारी आयु, सुख, बल, प्रज्ञा शरीर की क्षीणता के साथ-साथ क्षय हो जा रहे हैं। हमारे धन, आश्वर्य, सम्पत्ती एक दिन छोड़कर जाना ही है उस वक्त हृदय में दुःख आता है। उसी पीड़ा से विचलित न हो के स्थिर भाव से रहना 'अष्ठलोकधर्म' पर अकम्पित होना ही है। संसार के नियमानुसार मृत्यु साधारण सी बात है। मृत्यु ऐसा तत्व है, यह गरीब, अमीर, राजा, रानी, चक्रवर्ती, कुलवान, धनवान, बलवान, प्रज्ञाधारी या बुद्ध के लिए साधारण है। मृत्यु के सामने भय, असफल है, मृत्यु से बचना एक माया है। हम अनित्यता देखने पर मोह से जीवन में तल्लीन रहते हैं। संसार का स्वभाव अबोध व्यक्ति मृत्यु के सामने अत्यन्त शोक करते है। हे3 भरत! मैं अष्ठलोकधर्म देखता हूँ, इसलिए मैं कभी मेरी मृत्यु या दूसरे की मृत्यु में शोक नहीं करूँगा। यह राम पंडित की धर्म ज्ञान है।

मेरे प्रिय भरत! इसी तरह सुबह की सुन्दरता देखनेवाले बहुत जन शाम नहीं देखते हैं। शाम देखनेवाले बहुत जन रात्रि नहीं देखते हैं। उसी तरह इस सृष्टि के जन अपनी मृत्यु की जानकारी के बिना प्रीती घोषणाएँ करते हैं। यदि दूसरे की मृत्यु को देखकर जीवन भर आँखों से आँसू बहा रहे हैं। उसी रोने पर मरने वाले फिर उठते ही नहीं। अपने से किसी कर्तव्य किया नहीं जायेगा। कितने बार अनित्यता के बारे में समझा लेते तो वे शोक की अग्नी पर जल रहे हैं। ऐसे ही आदमी अकेले जन्म लेकर अकेले ही मरता है। सदा शोक करनेवाले, लाभ, अलाभ, यश, अयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख, तथा दुःख नामक 'अष्ठलोकधर्म' का नियम कभी पहचान नहीं करते। यदि शोक निष्फल है। ज्ञानी लोग अंधे की तरह शोक नहीं करते। हे मेरे भाई लक्ष्मण! मैं भविष्य में मेरे पिता के सिंहासन में बैठकर धनहीन याचकों को दान देकर, राज्य का यश और कीर्ती आगे बढ़ाकर राज्य समृद्ध करूँगा। उनका एश्वर्य युक्ति से पुनरू प्राप्त करूँगा। जनता की प्राण सुरक्षित करूँगा। धार्मिक शासन की आज़ादी प्रजा को प्राप्त होगी। मेरे प्रजा भी श्रमण ब्राह्मण की रक्षा करेगी। राम पंडित की उस बात को सुनकर भरत ने अपने भाई को नमस्कार करके वाराणासी राज्य पालन करने के लिए वचन माँगा। यदि राम कहते हैं कि, मैं नहीं तुम अपने लक्ष्मण और सीता लेके राज्य का पालन कर लो। मैं बारह वर्ष पूर्ण होने तक नहीं आऊँगा। उस वक्त भरत ने कहा कि आपका आगमन तक मैं नहीं शासन करूँगा। तब, राम पंडित अपनी चरण की पादुकाएँ देकर कहते हैं 'मेरे आने तक ये शासन करेंगी।

तत्पश्चात् भरत, लक्ष्मण और सीता अन्य लोगों के साथ वाराणासी लौटते हैं। अमात्य इन पादुकाओं के सामने राजकार्य करते हैं। अन्याय होते ही पादुकाएँ दूसरे पर आघात करती हैं तथा ठीक निर्णय होने पर वह शांत रहती है।

तीन वर्ष के अंत में राम पंडित वाराणासी आकर राज्य उद्यान में बैठते हैं। राम का आगमन सुनके भरत जी वहाँ जाके अपनी बहन सीता देवी का राम पंडित से विवाह करके दोनों अत्यन्त गौरव सम्प्रयुक्त नगर के चारों तरफ प्रदक्षिणा कर के सुवन्दा नामक अपने प्रासाद में ऊपरी भाग में जाके उसी स्थान से राज्य कर रहे हैं। उसी दिन से आगे चलकर बारह वर्ष धार्मिक राज्य करता था।

इस जातक कथा के अन्त में ऐसा वाक्य है कि, कनक डामरू के तरह ग्रीवा से युक्त और विशाल भुजंग युग्म के सहित वह राजा राम पंडित के धार्मिक पालन का विस्तार (चतमंक) बारह हजार का समय तक रह गया। ऐसे राम पंडित का गुण कथन करके भगवान बुद्ध ने अपने भाषण को समाप्त किया है।

सम्बोधन

इसी धर्म का श्रवण करने के बाद इतने शोक में पीडित मकान मालिक ने प्रथम ध्यान का फल प्राप्त किया था। वह सदा शोक से मुक्त हुए हैं। इसके बाद महात्मा बुद्ध जातक को सामंजस्ययों को दिखाते हैं - इस समय महाराज सुद्धोदन, महाराज दशरथ थे। महमाया राम की माता, यशोधरा (राहुल की माता) सीता, आनन्द भरत, लक्ष्मण भिक्षु शारिपुत्र और राज्य का अमात्यादी बुद्धश्रावक जन थे, तथा राम पंडित, बुद्ध प्राप्ति गौतम में था, आदि को सम्बोधन करके समाप्त किया।

Hindi Books

1. बुल्के लाल, राम कथा, 1962, पृ. सं. 72

Sinhala Books :

1. Senavirathna Anuradha, Sinhala Lekanaye ha Sahitye Awadiya', Ape Sanskritika Urumaya Part II, 1998, P. 42
2. Samanthapasadika Part IV, ed.Rev. Welivitiya Saratha, 1929, P. 20-30
3. Ed. Ghanawimala, Papanchasudani, Majjama Nikayatta Katha, 1937, P.4
4. Ed. Rev Medagoda Wemalakirti, Dhampiya Atuwa Gatapadhaya, 1974, P. 6
5. Ed. Werasingha Patiraja and Rev. Watuwatte Pemananda, Pansitapanas Jathakaya, 1999, P. iii
6. Senadeera Gunapala, ^Jataka Padya', Sinhala Sahitya lataa, 1966, P. 230
7. Ed. Alahapperuma M.A. Situwamsahita Pansiyapanas Jathaka Pot Whanse, VI Part, 2016, P.V.
8. Dikwela Piyananda, Jataka Katawala Prabawaya ha diunuwa, 1995, P. 40
9. Jyantha P.W. ^Nurti Sangetaya', Jhane de Silva lipi Saraniya, 2001, P. 51
10. Ariyararhna Sunil, Jhone de Silva Nurthi Natya Ekatuwa, Part 1, 2008, P. 7

Senior Lecturer
University of Visual - Performing Arts
Colombo 07

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

करुणा, अहिंसा और मानवीय संवेदना की अनुगूँज : दो कथाओं के माध्यम से बौद्ध नैतिक दृष्टि का प्रतिबिंब

Leshani Weerasinghe
(Sri Lanka)

बौद्ध साहित्य की जातक कथाएँ और धम्मपद तथा भारतीय लोक परंपरा की श्रवण कुमार की लोक कथा, मानव जीवन के लिए आदर्श नैतिक मूल्यों को प्रस्तुत करने वाली महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। विशेष रूप से माता-पिता का सम्मान, करुणा, धैर्य, अहिंसा, सत्यवादिता, कर्म विश्वास तथा अच्छा आचरण जैसे गुण इन कथाओं में प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं।

धम्मपद की गाथाओं में बताए गए बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत इन दोनों कथाओं के पात्रों और घटनाओं के माध्यम से व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

धम्मपद का परिचय- बौद्ध धर्म के नवांग सत्थु शासन में सम्मिलित महत्वपूर्ण ग्रंथ "धम्मपद" है। यह उन गाथाओं का संग्रह है, जिन्हें भगवान बुद्ध ने विभिन्न अवसरों पर विभिन्न व्यक्तियों के संदर्भ में उपदेश के रूप में कहा था।

धम्मपद में चित्त वग्ग, यमक वग्ग आदि कुल 26 वग्ग हैं और इसमें 423 गाथाएँ भी हैं। यह बौद्ध अनुयायियों के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है, जिसे अपने पास रखना और नियमित रूप से पढ़ने लायक पुस्तक के तौर पर अभिहित किया जा सकता है।

इन गाथाओं में मन, कर्म और कर्मफल, साहस तथा प्रयास आदि अनेक विषयों का वर्णन मिलता है। मन को नियंत्रित करना, सरल और अल्पेच्छापूर्ण जीवन जीना तथा अच्छा जीवन किस प्रकार बिताया जाए, उनके बारे में भी धम्मपद में महत्वपूर्ण शिक्षाएँ दी गई हैं। धम्मपद को बौद्धों की "हाथ की पुस्तक" अर्थात् मार्गदर्शक पुस्तक के रूप में भी माना जाता है। 1817 - 1818 के वेल्लस्स विद्रोह का नेतृत्व करने वाले वीर कैप्पेटिपोल निलमे के बारे में भी प्रसिद्ध है कि मृत्यु के समय उन्होंने अपने पास रखी हुई धम्मपद की पुस्तक निकाली, साथ ही उसमें से एक गाथा का पाठ किया और फिर साहसपूर्वक मृत्यु का सामना किया। भिक्षु अक्सर धर्मोपदेश देने से पहले धम्मपद की कोई गाथा प्रस्तुत करते हैं और उस गाथा के आधार पर धर्म की व्याख्या करते हैं। इसलिए धम्मपद बौद्धों के लिए अत्यंत मूल्यवान धर्म ग्रंथ है, जिसे नियमित रूप से पढ़कर अपने जीवन को सही दिशा दी जा सकती है।

बौद्ध साहित्य में वर्णित जातक कथाएँ वे कथाएँ हैं, जिनमें गौतम बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्त करने से पहले, बोधिसत्व के रूप में विभिन्न जन्मों में किए गए पुण्य कर्मों तथा प्राप्त अनुभवों का वर्णन मिलता है। कुरुनेगल युग मे, अर्थात् ईस्वी सन् की 14वीं शताब्दी में, इन कथाओं को संकलित करके "पंसिय पनस जातक कथा" के रूप में प्रस्तुत किया गया। जातक कथाएँ बोधिसत्व द्वारा मनुष्य, पशु या दिव्य प्राणी के रूप में अपने भिन्न जन्मों में किए गए पुण्य कर्मों को दर्शाती हैं। एक-एक जातक कथा के माध्यम से समाज को मूल्यवान नैतिक गुण और सिद्धांत सिखाती है। साम जातक बोधिसत्व के पूर्व जन्म की कथा है। इसमें बोधिसत्व ने "साम" नामक युवक के रूप में जन्म लिया था। वह अपने अंधे माता-पिता की अत्यंत श्रद्धा और प्रेम से सेवा करता था। वह अपने माता-पिता के साथ जंगल में रहता था और अपने माता-पिता के लिए पानी लाना,

भोजन ढूँढ़ना तथा उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करना अपना जीवन-कर्तव्य समझता था।

साम जातक कथा का संक्षिप्त परिचय- हमारे महान बोधिसत्व ने बुद्धत्व प्राप्त करने के उद्देश्य से पारमिताएँ पूरी करते समय एक जन्म में वन में रहने वाले एक तपस्वी परिवार के इकलौते पुत्र के रूप में जन्म लिया। इस छोटे कुमार का शरीर बहुत कोमल और सुंदर था तथा उसका रंग सोने के समान चमकीला था। इसी कारण उसका नाम "साम" रखा गया। साम कुमार बहुत करुणामय था। वह चाहता था कि सभी प्राणी सुखी रहें और सभी का कल्याण हो। जब साम कुमार बहुत छोटा था, तभी उसके माता-पिता की आँखों की रोशनी चली गयी। उस समय से उनके पालन-पोषण और देखभाल की ज़िम्मेदारी छोटे साम कुमार ने संभाली। हालाँकि वह बहुत छोटा था, फिर भी वह माता-पिता की सेवा को एक महान पुण्य अवसर मानता था। इसलिए वह अत्यंत प्रसन्नता और लगन से उनकी सेवा करता था। यह निर्दोष बालक किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देता था। वह किसी को डराता या भयभीत नहीं करता था। वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा और मैत्री रखता था। एक दिन साम एक हिरण की पीठ पर बैठकर अपने माता-पिता को पानी लाने के लिए तालाब की ओर गया। उसी समय बनारसी का राजा हिरण का शिकार करने के लिए जंगल में आ गया था। राजा ने साम को हिरणों के साथ पानी में उतरते हुए देखा। यह जानने की तीव्र इच्छा से कि जंगल में इस प्रकार कौन रह रहा है? राजा ने एक तीर चला दिया।

तीर साम के शरीर में जा लगा। वह अत्यंत पीड़ा से ज़मीन पर गिर पड़ा। उसके आसपास के हिरण डरकर भाग गये। दर्द से पीड़ित साम कुमार सोचने लगे — "मैंने कभी किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। फिर मुझे इस प्रकार तीर किसने मारा? अब मैं अपने अंधे माता-पिता की सेवा कैसे करुँगा? उनकी देख-भाल कौन करेगा?" यह सोचकर वह रोने लगा। साम की करुण पुकार सुनकर राजा को बहुत दुख हुआ। राजा पानी का बर्तन लेकर साम के माता-पिता के पास गया और उन्हें पूरी घटना बतायी। अंधे माता-पिता को बहुत दुख हुआ। राजा की सहायता से वे साम के पास पहुँच गये। तीर के कारण हुई पीड़ा से साम बेहोश होकर पढ़ा हुआ था। माता-पिता उसके पास बैठकर उसके गुणों का वर्णन करने लगे। उन्होंने साम की अहिंसा, मैत्री, करुणा और मुदिता आदि गुणों को याद करते हुए सत्यक्रिया की। उन्होंने कहा कि यदि उनका पुत्र वास्तव में इन महान गुणों से युक्त है, तो उस सत्य की शक्ति से वह स्वस्थ हो जाए। उसी समय सत्यक्रिया की शक्ति से साम कुमार स्वस्थ हो गये। उसके माता-पिता की आँखों की रोशनी भी वापस आ गयी। बोधिसत्व ने सभी प्राणियों के दुख को दूर करने और भविष्य में बुद्धत्व प्राप्त करने के उद्देश्य से अनेक जन्मों तक पारमिताएँ पुरी कीं।

भारत में एक खास और मशहूर लोक कथा है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक चली आ रही है। उसका नाम है कि श्रवण कुमार की लोक कथा। श्रवण कुमार की लोक कथा को एक ऐसी लोक कथा के रूप में अभिहित किया जा सकता है, जो बौद्ध साहित्य में मिलने वाली 'साम जातक कथा' की कहानी के समान है। लेकिन इसकी उत्पत्ति भारतीय लोक साहित्यिक परंपरा से हुई है। बौद्ध साहित्य में मिलने वाली 'साम जातक कथा' और भारतीय लोग परंपरा से आने वाली 'श्रवण कुमार की लोक कथा' दोनों पर ही 'धम्मपद की गाथा' प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाला है।

धम्मपद की गाथाओं का दोनों कथाओं पर प्रभाव

1. माता-पिता का सम्मान- धम्मपद में माता-पिता का सम्मान करना और उनकी सेवा करना अत्यंत महत्वपूर्ण पुण्य कर्म माना गया है। माता-पिता की सेवा करना मनुष्य का महान कर्तव्य है। एसे माता-पिता के सम्मान के संबंध में धम्मपद के 'ब्राह्मण वग्ग' में एक महत्वपूर्ण गाथा है।

"ब्रह्माति मातापितरो पुब्बचरियाति उच्चरे,
आहुनेय्या च पुत्तानं, पजाय अनुकम्पका"

इसका अर्थ यह है कि माता और पिता बच्चों के लिए ब्रह्मा के समान है। वे बच्चों के प्रथम शिक्षक हैं। क्योंकि वे अपने बच्चों के प्रति अत्यंत करुणामय होते हैं। इसलिए उनका सम्मान और सत्कार करना चाहिए। इससे यह स्पष्ट होता है कि माता-पिता का सम्मान करना, उनकी सेवा करना और उनके द्वारा किये गये उपकारों को समझना बच्चों का महान

कर्तव्य है। साम जातक में, साम अपने अंधे माता-पिता के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित करता है। वह बिना किसी शिकायत के उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करता है। श्रवण कुमार की लोक कथा में, श्रवण कुमार अपने माता-पिता को कंधे पर बैठाकर लंबी तीर्थ यात्रा पर ले जाता है। यह पुत्र भक्ति का अत्यंत उच्च आदर्श है। इसका विश्लेषण किया जाये तो धम्मपद में दिखायी गयी माता-पिता के प्रति कृतज्ञता की भावना इन दोनों कथाओं की मुख्य विषय वस्तु बन जाती है।

2. करुणा और मैत्री- धम्मपद सभी प्राणियों के प्रति मैत्री और करुणा रखने की शिक्षा देता है। जिसके बारे में विस्तृत विवरण देने वाली गाथा धम्मपद में 'दण्ड वग्ग' में आती है। वह इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

"सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये"

इसका अर्थ यह है कि सभी जीव सज़ा से डरते हैं। सभी अपना जीवन से प्यार करते हैं। इसलिए, दूसरों को अपने समान समझकर न किसी जीव की हत्या करें और ना ही दूसरों से भी हत्या करवाएँ। साम जातक में, साम कुमार किसी भी प्राणी को नुकसान नहीं पहुँचाता। वह सभी जानवरों के प्रति करुणा और मैत्री रखता है। इसी कारण जंगल के जानवर भी उसके मित्र बन जाते हैं। श्रवण कुमार की कथा में भी श्रवण कुमार अपने माता-पिता के दुख को अपना दुख समझ कर उनकी सेवा करता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि दोनों कथाएँ यह दिखाती हैं कि करुणा मनुष्य के जीवन का एक महान गुण है।

3. अहिंसा

धम्मपद में कहा गया है,

"नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं,
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो"

अर्थ - "वैर से कभी वैर समाप्त नहीं होता। केवल अवैर अर्थात् प्रेम और मैत्री से ही वैर समाप्त होता है।" यह साम जातक में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि साम को तीर से घायल किया गया, फिर भी वह राजा के प्रति घृणा या वैर नहीं रखता। श्रवण कुमार की कथा में भी वही प्रस्तुत किया जा सकता है कि मृत्यु के समय भी श्रवण कुमार राजा दशरथ को दोष देने के बजाय अपने माता-पिता के बारे में सोचता है। धम्मपद में प्रस्तुत की गई अहिंसा और क्षमा की शिक्षा इन दोनों कथाओं में व्यावहारिक रूप से दिखाई देती है।

4. कर्म विश्वास- धम्मपद में बताया गया है कि अच्छे कर्मों का अच्छा परिणाम और बुरे कर्मों का बुरा परिणाम मिलता है। कर्म और उसके परिणाम से संबंधित महत्वपूर्ण गाथा धम्मपद के 'पाप वग्ग' में इस प्रकार बताया गया है।

"पापं चे पुरिसो कयिरा, न तं कयिरा पुनप्पुनं,
न तं पापे रती होति, दुक्खो पापस्स उच्चयो"

सरल अर्थ के रूप से बौद्ध धर्म के अनुसार अच्छे कर्मों से अच्छे परिणाम और बुरे कर्मों से बुरे परिणाम उत्पन्न होते हैं। इसलिए मनुष्य को अपने प्रत्येक कर्म के बारे में सोच कर कार्य करना चाहिए और अच्छे कर्मों को बढ़ाते हुए बुरे कर्मों से बचना चाहिए। साम जातक में, कर्म विश्वास के संबंध में इस प्रकार दिखाया गया है कि साम के पुण्य और सत्य की शक्ति के कारण अंत में साम कुमार तथा उसके माता-पिता का कल्याण होता है। अर्थात् साम कुमार एक बहुत ही पुण्यवान युवक है, जो किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता, और उसके प्यारे माता-पिता अंधे हैं। अंत में साम कुमार के अच्छे कर्मों की शक्ति से उसके माता-पिता की आँखों की रोशनी वापस आ जाती है।

श्रवण कुमार की कथा में भी कर्म विश्वास के बारे में अंतर्गत आता है। राजा दशरथ की भूल के बाद उन्हें भी अत्यंत दुख और पुत्र वियोग का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार कर्म और उसके परिणाम का सिद्धांत दोनों कथाओं की घटनाओं और उनके परिणामों में दिखाई देता है।

5. सत्य की शक्ति- धम्मपद में सत्य को एक महान धर्म माना गया है। सत्य की महत्ता को स्पष्ट करने वाली एक

प्रसिद्ध गाथा है, जो धम्मपद के 'लोक वग्ग' में आता है।

"एकं धम्मं अतीतस्स, मुसावादिस्स जन्तुनो,
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं"

इसका अर्थ यह है कि जो व्यक्ति सत्य को छोड़कर झूठ बोलता है और परलोक की चिंता नहीं करता, उसके लिए ऐसा कोई पाप नहीं, जिसे वह करने में संकोच करें। इससे यह स्पष्ट होता है कि सत्य बोलना मनुष्य का महान गुण है। झूठ बोलने से अनेक बुरे कर्मों का मार्ग खुलता है। इसलिए मनुष्य को सत्य, ईमानदारी और अच्छे वचन का पालन करना चाहिए। साम जातक में, साम के गुणों के आधार पर की गई सत्यक्रिया की शक्ति से उसका जीवन और उसके माता-पिता की दृष्टि वापस प्राप्त होती है। श्रवण कुमार की लोक कथा में, श्रवण कुमार अंत तक ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के साथ अपने माता-पिता की सेवा करता है। इसलिए यह हमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित है कि विश्व धर्म में सत्य की शक्ति कितनी प्रबल होती है।

6. धैर्य और सहनशीलता- धम्मपद में क्षांति अर्थात् सहनशीलता को महान तप कहा गया है। इस गुण के संबंध गाथा धम्मपद के 'बुद्ध वग्ग' में आता है।

"खन्ति परमं तपो तितिक्खा, निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा,
न हि पब्बजितो परूपघाती, समणो होति परं विहेठयन्तो"

इसका अर्थ है – "सहनशीलता सबसे महान तप है। बुद्धजन निर्वाण को परम अवस्था कहते हैं। जो दूसरों को नुकसान पहुँचाता है, वह सच्चा साधु नहीं है। जो दूसरों को कष्ट देता है, वह वास्तविक श्रमण नहीं है।"

अर्थात् क्रोध, दुख, अपमान या कठिन परिस्थितियों में धैर्य और संयम से व्यवहार करना एक महान गुण है। दूसरों को नुकसान न पहुँचा कर सहनशीलता और करुणा के साथ जीवन जीना बौद्ध धर्म में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। साम जातक में कठिन परिस्थितियों में जीवन बिताने के बावजूद साम कुमार कभी निराश नहीं होता। श्रवण कुमार कथा में माता-पिता की सेवा करना कठिन होने के बावजूद श्रवण कुमार खुशी और समर्पण के साथ अपना कर्तव्य निभाता है।

7. आत्म-त्याग और समर्पण- धम्मपद के अनुसार अच्छा जीवन वह है, जिसमें मनुष्य दूसरों के कल्याण के लिए समर्पित होकर जीवन जीता है। इसका विवरण देने वाला एक महत्वपूर्ण गाथा धम्मपद के 'अत्त वग्ग' द्वारा इस प्रकार कहा गया है।

"अत्तानं चे पियं जञ्ञा, रक्खेय्य नं सुरक्खितं,
तिण्णं अञ्ञतरं यामं, पटिजग्गेय्य पण्डितो"

इसका अर्थ यह है कि यदि कोई व्यक्ति स्वयं को प्रिय मानता है, तो उसे स्वयं की अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक समय में स्वयं को उचित रूप से संभालता है। साम जातक में, साम अपना पूरा जीवन अपने अंधे माता-पिता की सेवा के लिए समर्पित करता है और श्रवण कुमार की लोक कथा में, श्रवण कुमार भी अपने माता-पिता के सुख और कल्याण के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर देता है।

साम जातक और श्रवण कुमार की कथा में समानताएँ- साम जातक और श्रवण कुमार की कथा दोनों ही माता-पिता के प्रति प्रेम, सेवा और कर्तव्य की भावना को प्रमुखता देती हैं। दोनों कथाओं में अंधे माता-पिता की सेवा करने वाले आदर्श पुत्र का चित्रण किया गया है। इन कथाओं के माध्यम से पुत्र-भक्ति, करुणा, धैर्य और त्याग जैसे महान गुणों का महत्व स्पष्ट होता है। साथ ही, धर्मानुकूल एवं सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा भी मिलती है। दोनों कथाएँ यह संदेश देती हैं कि सत्य और अच्छे कर्मों का जीवन में बहुत महत्व है। विशेष रूप से, माता-पिता के प्रति प्रेम, सम्मान और अपने कर्तव्य को पूरी निष्ठा से निभाना प्रत्येक संतान का महत्वपूर्ण धर्म है। इस प्रकार साम जातक और श्रवण कुमार की कथा हमें आदर्श जीवन जीने तथा माता-पिता की सेवा और सम्मान करने की प्रेरणा देती हैं।

साम जातक और श्रवण कुमार की कथा में अंतर- साम जातक और श्रवण कुमार की कथा दोनों ही माता-पिता के प्रति प्रेम और सेवा का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। लेकिन इन दोनों कथाओं में कई महत्वपूर्ण अंतर भी दिखाई देते हैं। साम

जातक एक बौद्ध जातक कथा है, जिसमें बोधिसत्व साम का चरित्र प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया गया है। जबकि श्रवण कुमार की कथा एक भारतीय लोक कथा है, जिसमें एक सामान्य मानव पुत्र के आदर्श चरित्र को दिखाया गया है। साम जातक में साम अपने अंधे माता-पिता की सेवा करने के साथ-साथ सभी प्राणियों के प्रति मैत्री और करुणा रखता है। दूसरी ओर, श्रवण कुमार का मुख्य गुण अपने माता-पिता के प्रति पूर्ण समर्पण और भक्ति है। साम जातक में सत्यक्रिया और पुण्य के प्रभाव से सुखद अंत होता है, जबकि श्रवण कुमार की कथा का अंत दुखद और शोकपूर्ण होता है। इसके अलावा साम जातक में बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ, जैसे- मैत्री, करुणा, पुण्य और सत्य का महत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वहीं श्रवण कुमार की कथा में मुख्य रूप से पुत्र-भक्ति, माता-पिता के प्रति कर्तव्य और पारिवारिक मूल्यों पर अधिक जोर दिया गया है। इस प्रकार दोनों कथाओं का उद्देश्य आदर्श जीवन और माता-पिता की सेवा का महत्व बताना है। लेकिन उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि, मुख्य पात्रों, घटनाओं और कथाओं के अंत में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि साम जातक और श्रवण कुमार की कथा भारतीय साहित्य और संस्कृति में निहित करुणा, सेवा, त्याग, मातृ-पितृ भक्ति तथा मानवीय संवेदनाओं की दो अत्यंत प्रभावशाली अभिव्यक्तियाँ हैं। दोनों कथाएँ अलग-अलग धार्मिक एवं साहित्यिक परंपराओं से संबद्ध होते हुए भी अपने मूल नैतिक संदेश में एक-दूसरे के अत्यंत निकट दिखाई देती हैं।

साम जातक में साम का चरित्र त्याग, करुणा, मैत्री और माता-पिता के प्रति अनन्य सेवा-भाव का आदर्श प्रस्तुत करता है। वह अपने व्यक्तिगत सुख और जीवन की चिंता से ऊपर उठकर अपने अंधे माता-पिता की सेवा को जीवन का सर्वोच्च कर्तव्य मानता है। यही वह बिंदु है, जहाँ साम जातक का संबंध धम्मपद की उन शिक्षाओं से स्थापित होता है, जिनमें मन की शुद्धता, अहिंसा, संयम, करुणा और सदाचार को मनुष्य के वास्तविक कल्याण का आधार माना गया है।

इसी प्रकार श्रवण कुमार भारतीय लोक स्मृति में मातृ-पितृ भक्ति, कर्तव्यनिष्ठा और त्याग के अप्रतिम आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित है। अपने वृद्ध और असहाय माता-पिता को तीर्थयात्रा कराने के लिए कंधे पर उठाकर ले जाना केवल पुत्र-धर्म का निर्वाह नहीं, बल्कि प्रेम, समर्पण और सेवा की चरम अभिव्यक्ति है।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि धर्म का वास्तविक स्वरूप बाहरी आडंबर में नहीं, बल्कि आचरण की शुद्धता में है। साम और श्रवण कुमार दोनों अपने कर्मों के माध्यम से धर्म का पालन करते हैं। उनके लिए सेवा ही साधन है, त्याग ही तपस्या है और करुणा ही सच्चा धर्म है। यही दृष्टिकोण धम्मपद की नैतिक चेतना को भी सार्थक करता है। मनुष्य यदि अपने विचारों, वाणी और कर्मों को शुद्ध रखें तथा दूसरों के प्रति दया, मैत्री और सम्मान का व्यवहार करें, तो उनका जीवन स्वयं एक नैतिक संदेश बन जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

ञानानन्द थेरो, किरिबत्गोड, (2008), धम्म पदय,

- https://pitaka.lk/dhammapada/
- https://mahamevnawa.org/dhammapada/
- https://si.wikipedia.org/wiki
- https://mahamevnawa.lk/dhammapadaya/
- https://aaryasathya.com/dhamma-padaya-2/
- https://www.scribd.com/document/47235526/33-Sammodamana-Jathakaya
- https://en.wikipedia.org/wiki/Shravana-Kumara
- https://www.apnisanskriti.com/blog/story-of-shravan-kumar-6566

Department of Languages, Cultural - Performing Arts
University of Sri Jayewardenepura
Mob- +94 751564367

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्धकालीन समाज और नारी

डॉ. सिन्धु सुमन

आज के साहित्यक एवं सांस्कृतिक विमर्शों में स्त्री विमर्श का विशिष्ट स्थान है। संपूर्ण विश्व में आज स्त्री-विमर्श नये ओज से जारी है। प्राचीन काल से लेकर आज तक विश्व के कतिपय विचारकों, दार्शनिकों, रचनाकारों और समाजशस्त्रियों ने न केवल संसार में व्याप्त आर्थिक वैषम्य, पराधीनता, अन्याय, अशान्ति, उत्पीड़न और शोषण को समाप्त कर एक मानवीय और सुखी संसार के निर्माण के लिए अपने चिन्तन को रूपायित किया है बल्कि आधी दुनिया (स्त्री) की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों का आकलन कर उनकी मुक्ति के संदर्भ में उन्होंने अपनी चिंता एवं विचारों की प्रखरता के जरिए लैंगिक समानता पर जोर दिया है। औरतों के प्रति बौद्ध धर्म के नजरिए को खँघालने के पूर्व हम ऋग्वैदिक समय में स्त्रियों की स्थिति पर अति संक्षिप्त रूप में नजर डालते हैं। ऋग्वेद में उपस्थित अनेक साक्ष्य यह प्रमाणित करते हैं कि इस समय उनकी स्थिति बहुत ही अच्छी थी और समाज में उन्हें गौरवशाली स्थान प्राप्त था। किंतु औरतों द्वारा रचित ऋग्वैदिक सूक्तों की संख्या बहुत कम है। औरतों ने हालाँकि ज्ञान की चरम सीमा प्राप्त की और सभी धार्मिक उत्सवों में बराबर की साझेदारी भी की। घरेलू जीवन में भी उन्हें सम्मानीय स्थान प्राप्त था और कहीं भी बाल-विवाह या औरतों को समाज से अलग-थलग कर देने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। लेकिन बाद में जब ब्राह्मणवादी व्यवस्था का वर्चस्व बढ़ा तो धार्मिक कर्मकांडों की बहुलता हुई और धीरे-धीरे लगातार औरतों की स्थिति में गिरावट आने लगी। ब्राह्मणवादी परंपरा के अंतर्गत सबसे ज्यादा स्त्रियों के विरोध में मनु द्वारा रची गई ''मनुस्मृति'' है।

इस पृष्ठभूमि के विरूद्ध ई॰पू॰ 5वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा। यह नहीं कहा गया की बुद्ध ने भारतीय स्त्रीत्व की मुक्ति के लिए कोई आंदोलन चलाया। लेकिन वो ब्राह्मणीय हठधर्मिता और छद्म के विरूद्ध छोटी सी हलचल पैदा करने में सफल रहे। ब्राह्मणों की वर्चस्ववादी संरचना में जहाँ अत्यधिक धार्मिकता थी, उसकी निन्दा की। उन्होंने देवत्व के अस्तित्व को अस्वीकार किया और व्यक्तिगत कोशिशों के जरिए मुक्ति पर जोर दिया। बौद्ध धर्म का श्रेष्ठ सिद्धांत है कि सभी स्त्री और पुरूष आध्यात्मिक क्षेत्र में समान रूप से अपनी धारणाओं और प्रयासों से मुक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं। यह पुरूष की सर्वशक्तिशालिता को न्यूनीकृत करता है। इसकी आवश्यकता है साहसिक रूप से वैचारिक व्यक्ति, जो विद्रोह कर सके और एक ऐसी जिन्दगी की वकालत कर सके जहाँ औरतें पुरूषों के बराबर हां। बौद्ध काल एक नव प्रवर्तन का युग था। इस युग में बुद्ध ने लिंगीय विकृति से परे सद्गुण व आध्यात्मिक संभावना की पहचान कर स्त्रियों को पुरूषों के बराबर का स्थान दिलाकर एक नई क्रान्ति को जन्म दिया। अन्य धर्मों की तरह बुद्ध ने स्त्री को माँ, बहन, बेटी के रूप में ही नहीं बल्कि पुरूषों के समान उनके व्यक्तिगत अस्तित्व को पहचान दिलाने में सहयोग प्रदान किया। बड़ी संख्या में महिलाओं ने इस अवसर का लाभ उठाया। सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर उन्होंने शैक्षिक एवं आध्यात्मिक विमुक्ति का अनुभव किया।

शायद यह बहुत कम लोगों को मालूम हो कि भगवान बुद्ध महिला सशक्तिकरण के बहुत बड़े समर्थक एवं पोषक थे। भगवान बुद्ध का जन्म ही जनतांत्रिक व्यवस्था में हुआ था। इनके पिता शाक्य गणराज्य के मुखिया थे। माँ कोलिय गणराज्य की राजकुमारी थी। इन्होंने बचपन से ही जनतांत्रिक व्यवस्था देखी थी। अतः उनके संस्कारों में गणतांत्रिक व्यवस्था की जड़े

जम चुकी थी। गणतांत्रिक व्यवस्था की दो विशेषताएँ प्रमुख होती हैं। पहला, सभी धर्मों का आदर करना यानी शांतिपूर्ण सहअस्तित्व। दूसरी विशेषता होती है, महिलाओं का आदर-सम्मान करना एवं महिलाओं के अधिकारों की रक्षा तथा लिंग (ळमदकमत) के आधार पर महिला और पुरूष में कोई भेदभाव नहीं करना।

गौतम बुद्ध के समय लगभग पूरे उत्तरी बिहार में गणतांत्रिक व्यवस्था थी। गौतम बुद्ध के जीवन का अधिकांश भाग वैशाली में बीता। वैशाली उन्हें बहुत पसंद थी क्योंकि वहाँ उपर्युक्त दोनों विशेषताएँ विद्यामान थीं। वैशाली में लिच्छवि या वाज्जि गणतंत्र का शासन था। यहाँ के संविधान में सात अपरिहार्य नियम बनाये गये थे। जिनमें एक था महिलाओं एवं स्त्रियों का आदर करना। भगवान बुद्ध ने कहा भी था - जब तक लिच्छवि इन सात अपरिहार्य नियमों का पालन करते रहेंगे उन्हें कोई नहीं जीत सकता, वे अजेय रहेंगे।

बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में न केवल पारिवारिक जीवन में स्त्रियों को पुरूषों के समान धर्मपालन का अधिकार था बल्कि वे पुरूषों की भाँति गृहावास त्यागकर बुद्ध के द्वारा स्थापित भिक्षुणी संघ में प्रवेश भी लेती थी। संघ में पुरूष एवं नारी क्रमशः भिक्षु-भिक्षुणी के रूप में रहकर दुःखों के विनाश के लिए साधना करते थे। बुद्ध द्वारा भिक्षुणी संघ की स्थापना का नारियों ने हार्दिक स्वागत किया तथा उसमें प्रविष्ट होने के लिए अभूतपूर्व उत्साह दिखाया था। किंतु भिक्षु संघ में भिक्षुणी संघ की स्थापना का इतिहास सर्वथा भिन्न है।

दरअसल भगवान बुद्ध भिक्षुणयों का संघ में प्रवेश नहीं चाहते थे। अगर अंतिम रूप में उन्हें अनिच्छा से ही सही स्वीकृति मिली भी तो उसका पूरा श्रेय आनंद को जाता है जिन्होंने बुद्ध के समय स्वीकार किया कि औरतें भी मुक्ति प्राप्ति के लिए उतनी ही योग्य हैं जितने पुरूष।[1] वस्तुतः पूरे प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में केवल आनंद ही इस सिद्धान्त में पूर्ण रूप में विश्वास करते थे कि औरत और मर्द के बीच बराबरी या समानता होनी चाहिए और उन्होंने व्यवस्थित रूप में इस उद्देश्य का प्रचार भी किया।[2] एक अवसर पर उन्होंने बुद्ध से स्पष्टीकरण माँगा कि क्यों औरत न्यायालय में नहीं बैठ सकती और व्यवसाय नहीं चला सकती।[3] आनंद ने स्पष्टतः महसूस किया कि उनको भी सभी प्रकार की गतिविधियों में भाग लेना चाहिए। आनंद की सहभागिता के कारण एक बार तो वे अनिच्छा से ही सही संघ में स्वीकार ली गयी किंतु उन्हें भिक्षुओं के अधीनस्थ ही रखा गया। इसके बाद एक नियम रखा गया कि भिक्षुणियाँ चाहे कितनी ही बुजुर्ग क्यों न हों उन्हें भिक्षुओं के समक्ष उठकर खड़ा होना होगा और सलामी भी देनी होगी चाहे भिक्षु उम्र में उनसे कितने ही छोटे क्यूँ न हों। औरतों के भेदभाव के खिलाफ गौतमी ने आवाज उठायी और उत्कट प्रयास किया कि इस नियम को रद्द कर दिया जाए किंतु बुद्ध इसे इंकार करने के लिए दृढ़ थे। उसने बहस किया कि अन्ना तिथियास (anna titthiysa) औरतों को गौरवान्वित नहीं करता, लेकिन बुद्धानुयायी इस रियायतों को नहीं देना चाहते थे। गौतमी के काफी प्रयासों के बावजूद बुद्ध जिसे उसने अपने बेटे के रूप में पाला था, उसके न्यायोचित अधिकार के लिए मना कर दिया गया; काफी समय बाद इस दिशा में औरतों को सम्मान और हौसला मिला। गौतमी के बाद तो नारी समाज में बौद्ध भिक्षुणी होने की लहर सी उठ गई और भिक्षुणियों का एक बृहत संघठन ही हो गया।

जगह-जगह भिक्षुणी विहार भी बनाए गए जिसका एक उदाहरण श्रावस्ती में विशाखा के द्वारा भिक्षुणी विहार के लिए उन्तीस करोड़ मुद्राएँ व्यय है। बौद्ध कालीन नारियों ने बौद्ध धर्म के विकास में जितनी भी सहायता पहुँचायी वह कम नहीं है। संघ में भिक्षुणियों की आपस में कोई जात-पात का भेद नहीं था और न ही उनके जीवन से संबंधित पिछले वातावरण को भिक्षुणी जीवन ग्रहण करने में कोई परेशानी होती। बौद्ध धर्म ने नारी के जीवन स्तर को उपर उठाने का सफल प्रयास किया। नारी चारित्रिक एवं मानसिक रूप से धीरे-धीरे उन पुरानी परंपराओं से निकल कर बाहर आयी जिन रूढ़िवादी परंपराओं को निभाने में उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। भगवान बुद्ध ने ज्ञानपूर्ण वचनों से नारी को शोकमुक्ति दिलाकर शान्ति स्थित किया। बुद्ध ने नारियों को सामान्य जीवन से अलग नहीं किया। उनको समाज में स्वतंत्र रूप से मिला दिया जिससे पथभ्रष्ट एवं समाज द्वारा ठुकराई हुई नारी को नया जीवन मिला।

भगवान बुद्ध के द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर नारियों को हृदय में एक असीम शान्ति विद्यामान मिली। भगवान बुद्ध द्वारा नारियों के प्रति सकारात्मक पक्ष से उन्हें धार्मिक, सामाजिक शिक्षा की अधिकारी तथा पुरूष के समान मोक्ष की प्राप्ति

करने का मार्ग भी खोल दिया। भारतीय स्त्री के जीवन में यह प्रथम अवसर था, जब उनको गृह जीवन का परित्याग कर बौद्ध संघ में प्रव्रजित जीवन व्यतीत करने का सुअवसर मिला। गृहस्थ जीवन में भारतीय स्त्रियाँ गृह कार्यों के साथ-साथ मनोरंजन के प्रकारों को भी जोड़ लेती थीं। इससे उनका जीवन विपरीत परिस्थितियों में भी सरस एवं सुखमय हो उठता था। परंतु जब स्त्रियाँ गृह जीवन का परित्याग कर बौद्ध संघ में भिक्षुणी के रूप में आयीं तब उनके सम्मुख भी यह प्रश्न व्यापक सा रहा होगा कि वह अपने प्रव्रजित जीवन का पालन करने के साथ-साथ जीवन का आनंद एवं अपना मनोरंजन कैसे करें? अतः भगवान बुद्ध ने उनके प्रव्रजित जीवन एवं मनोदशा को समझते हुए कई प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान का विधान बनाया, ताकि भिक्षुणियों को साधना का जीवन व्यतीत करने में आसानी हो और उनके जीवन में सरसता एवं मनोरंजन की भी कमी न हो सके जिससे उनके जीवन में सर्वदा व्यस्तता एवं तत्परता बनी रहे। भगवान बुद्ध के समय के बौद्ध संघ में जो धार्मिक अनुष्ठान में भिक्षुणियों की सहभागिता थी उसकी विस्तृत जानकारी हमें पाली साहित्य से मिलती है। बौद्ध संघ के माध्यम से अपना प्रव्रजित जीवन व्यतीत तो करती ही थी साथ ही इन पर्वों के अवसर पर वे अपना मनोरंजन भी कर लेती थीं, जिससे उनके जीवन में सरसता आती थी। अंततः भगवान बुद्ध द्वारा संघ के लिए बनाए गए धार्मिक पर्व भिक्षुणियों के चारित्रिक परिशुद्धि के साथ-साथ मनोरंजन का माध्यम भी था।

हिंदू धर्म में जहाँ उत्तर वैदिक काल से स्त्रियों का जन्म अच्छा नहीं माना गया वहीं बौद्ध धर्म में खुशियों का निर्धारण अंतिम संस्कार पर निर्भर नहीं करता बल्कि दिवंगत आत्मा के किए गए कार्यों पर निर्भर करता है। बौद्ध धर्म में अंतिम संस्कार की विधि बड़ी ही सरल है, जिसे विधवा या कोई बेटी या अन्य कोई भी जो वहाँ मौजूद हैं कर सकता है, इसके लिए पुत्र की उपस्थिति अनिवार्य नहीं। इसलिए पुत्र प्राप्ति के लिए किसी विशेष समारोह या यज्ञ की आवश्यकता यहाँ नहीं और न बेटी के जन्म पर कोई दुःख की जरूरत है। यह सर्वज्ञात है कि राजा पासेन्दी अपनी रानी मल्लिका द्वारा पुत्री के जन्म पर कहता है -

''एक स्त्री का वंश में आना, एक पुरूष के आने से ज्यादा पवित्रतम है।''[4]

यह अपने समय का क्रांतिकारी वक्तव्य था। बौद्ध धर्म में अंतिम संस्कार के लिए या आनंद प्राप्ति के लिए पुत्र की अनिवार्यता खत्म कर दी गयी यही कारण है कि हिंदुओं में पुत्र की अनिवार्यता ने जड़ जमा लिया जबकि बौद्धों के यहाँ स्त्री-पुरूष की स्थिति समान बनी रही।

किंतु हम इस बात से भी इंकार नहीं कर सकते कि एक औरत के अस्तित्व की व्याख्या पुरूष के इर्द-गिर्द केंद्रित रही। औरतों से आदर्श के तौर पर यह अपेक्षा की जाती है कि वो अपने पति की आज्ञाकारिणी और दासी बनी रहे। वे विभिन्न लोगों के अधीनस्थ ही थी। जैसे - राजा, संघ, सेनी (सहकारी समितियाँ) और पुगा (संस्था)। औरतें जो अपनी जिंदगी बेटी, पत्नी और माँ के तौर पर अपना जीवन गुजारती थीं वो स्पष्टतः मर्दों के अधीन थीं और यह नजरिया जबरन स्त्रियों पर थोपी गयी थी न केवल समाज में बल्कि असामाजिक संघों में भी। बुद्ध के अनुसार यह उसके समझ से बाहर था कि औरत या तो तथागत हो सकती है या एक कक्कावती।[5] अन्य शब्दों में वे सामाजिक और असामाजिक संसार की प्रमुख नहीं हो सकतीं। स्त्रियों के सामान्य भेदभाव को छोड़कर उन्होंने उल्लेखनीय संख्या में संस्था में प्रवेश किया। अधिकांश औरतें इसमें अन्य के साथ गणसंघ से आयीं, समानता के बंधन में बँध कर शामिल होने लेकिन बहुत सारी विपत्ति से पलायन के क्रम में आयीं। थेरिगाथा में अभिव्यक्त भावनाओं से यह बहुत ज्यादा स्पष्ट हुआ।

'थेरीगाथा' संभवतः भारतीय इतिहास में स्त्रियों द्वारा रचित काव्य-साहित्य है। पालि भाषा में रचित इस ग्रंथ में बुद्धकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति के बारे में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। चूँकि 'थेरीगाथा' में समाज के विभिन्न क्षेत्रों से आई भिक्षुणियों के उद्‌गार हैं इसलिए यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि यह स्त्रियों द्वारा रचित 'स्त्री-विमर्श' का एक प्रामाणिक ग्रंथ है। 'थेरीगाथा' खुद्दक निकाय के महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक है, जिसमें 522 श्लोकों (गाथाओं) में बौद्ध भिक्षुणियों के उद्‌गार सन्निहित हैं। इसमें बुद्धकालीन भिक्षुणिओं के पद्यबद्ध संस्मरण है। इसमें थेरीगाथा की अपेक्षा भिक्षुणियों की आत्मीयता और यथार्थवादिता अधिक है। भिक्षुणियों ने अपने जीवन के वास्तविक पक्ष को ही इसमें

उजागर करने का प्रयास किया है। इनके उद्‌गारों में करुणा पक्ष के अनुभव की अभिव्यक्ति है। इसमें आशा का अवलम्बन है। बुद्ध शासन का अवलम्ब पाकर ही इन सबों ने उस गंभीर और शांत सुख का स्पर्श किया है जो जीवन की विषमताओं और कटुताओं को धो डालता है। खुद्दक निकाय में थेरीगाथा की भूमिका प्रस्तुत करते हुए भिक्षु जगदीश कश्यप ने लिखा है - ''थेरीगाथा में भिक्षुणी संघ की अर्हत पद प्राप्त स्थविरियों की वाणी का संग्रह है जिससे तत्कालीन भारतवर्ष में स्त्रियों का सामाजिक जीवन कैसा था, उन पर बुद्ध के उपदेश का क्या प्रभाव पड़ा, आध्यात्मिक उन्नति के किस उच्च स्तर को उन्होंने प्राप्त कर लिया था, आदि महत्वपूर्ण बातों का अध्ययन करने के लिए यह एक अत्यंत मौलिक एवं प्रामाणिक ग्रंथ है।'' उनके अनुसार 'थेरीगाथा' में सन्निहित इनके उद्‌गार और प्रतिध्वनित इनकी पूर्व जीवन-चर्याओं से पाँचवीं-छठी शताबदी ई.पू0 के भारतीय समाज में नारी के स्थान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

किस उद्देश्य से, किन कारणों से, किस सामाजिक परिस्थिति में प्रत्येक भिक्षुणी ने बौद्ध धर्म और संघ की शरण ली थी, इसका विस्तृत विवरण थेरीगाथा की अट्ठकथा 'परमन्थदीपनी' में उपलब्ध है। नाना कारणों से भिक्षुणियों ने अपना संसार त्याग कर संघ में प्रवेश किया था। इनमें से कुछ जैसे मुक्ता और पूर्णा अपनी ज्ञान-संपत्ति की पूर्णता के लिए प्रव्रजित हुई, तो कुछ ने घर के काम-काजों से ऊबकर प्रवज्या ली। धम्मदिन्ना ने पति की विरक्ति के कारण प्रव्रज्या ली जबकि धम्मा, मैत्रिका, दंतिका, सुजाता, रोहिणी, अम्बपालि आदि ने शास्ता में श्रद्धा के कारण। ये भिक्षुणियाँ भगवान बुद्ध की शरण में जाकर परम शान्ति और संतोष का अनुभव करती हैं। 'थेरीगाथा' में जिन भिक्षुणियों के उद्‌गार सम्मिलत हैं प्रायः वे सभी बुद्धकालीन हैं और सभी बुद्ध की शिष्याएँ हैं। नारी जाति के प्रति बुद्ध की कितनी अनुकम्पा थी, यह इसी से समझा जा सकता है कि उनमें से अनेक अपने को 'बुद्ध के हृदय से उत्पन्न कन्या (ओरसा धीता बुद्धस्स) कहकर अभिनन्दित करती है। फलतः स्त्रियाँ भी निर्वाण प्राप्ति की हकदार थीं और उन्हें यह बुद्ध की कृपा से मिला भी। किन्तु इसके साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि भिक्षुणियों की प्रवृति अपने कष्टमय जीवन से निवृत्ति के लिए थी। थेरियों के जीवन से यह भी पता चलता है कि उस समय कर्ज के बदले महाजन कर्जखोरों की पुत्रियों को ही उठाकर ले जाया करते थे, पुरूषों द्वारा स्त्रियों के साथ व्यभिचार का भी प्रयास किया जाता है। शुभा नामक भिक्षुणी ने तो अपनी रक्षा के लिए उस युवक को अपनी आँख ही निकालकर दे दी थी, जिससे युवक स्तब्ध रह गया था और उससे क्षमा याचना की थी।

बावजूद इसके समाज में स्त्रियों का आदर था। उन्हें पुरूषों के समान निर्वाण प्राप्ति का अधिकार था। 'थेरीगाथा' के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचने में देर नहीं लगती कि बुद्ध की शरण में आने के पूर्व उनका जीवन कष्टमय था, किंतु प्रव्रज्या ग्रहण के पश्चात् उनके जीवन में काफी बदलाव हो जाता है। वे परम सुख, संतोष एवं शान्ति का अनुभव करती हैं। भिक्षुणी बनने के पूर्व का उनका जीवन बुद्धकालीन समाज में सामान्य नारियों के जीवन की झलक है, जबकि भिक्षुणियों का जीवन बौद्ध धर्म के अनुयायी स्त्रियों का एक प्रामाणिक दस्तावेज। जाहिर है, 'थेरीगाथा' बुद्धकालीन स्त्रियों के जीवन की एक जीवन्त तस्वीर है। स्त्री-विमर्श का ऐसा प्रामाणिक ग्रन्थ बौद्ध साहित्य में कोई दूसरा नहीं।[6]

वस्तुस्थिति यह थी कि एक औरत को उसकी पूरी जिंदगी में पुरूष का इंतजार करना था, कभी-कभी नाम मात्र की पहचान पाए बिना वो क्रोध की पात्र बन जाती थीं उनके लिए संघ एक स्वतंत्रता का मापक था, वो तनाव से मुक्ति के लिए वहाँ आयीं थी। वस्तुतः बौद्ध धर्म का मूल सिद्धांत था - संसार अस्थायी है और दुःखों से भरा है। किस्सा गौतमी या अम्बापाली की कहानी में यह बहुत ही सुंदर रूप में प्रकाशित हुआ है। इन सबके बावजूद औरत के लिए सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत रह गया था जिसमें वह एक कर्त्तव्यपरायण पत्नी और माँ थी, कुलमाता जो अपने परिवार पर राज करती थी जिसमें अनेक बच्चे और नाती-पोते थे जैसे - विशाखा मिगारामाता ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। यह महत्वपूर्ण है कि विशाखा अपनी माँ की छवि के साथ-साथ संघ को बाहर से समर्थन करती रहीं और एक अस्तित्व के पर्दे के साथ आगे बढ़ती रही, वो एक बेहद महत्वपूर्ण औरत थी पाली साहित्य में और महाप्रजापती गोमती नहीं जिसने मुक्ति की तलाश में यह संसार छोड़ा।

यह शायद बहस का मुद्दा हो सकता है कि प्रारंभिक बौद्ध धर्म औरतों के लिए सहानुभूति चाहता है और यह कोई अप्रतिम घटना नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व के मठवासी संवेदना में यह एक प्रारूप या नमूने के तौर पर जाना जाता था। कुल

मिलाकर यह कह सकते हैं कि बौद्धकालीन समाज में नारियों की स्थिति सकारात्मकता की ओर उन्मुख दिखायी पड़ती है। वह मुक्ति पथ पर अग्रसर नजर आती हैं।

संदर्भ सूची

1. Cullavagga, Page - 374
2. I.B. Horner, Women Under Primitive Buddhism Delhi, 1975, Page - 295
3. Anguttara Nikaya, ed. Bikkhu J. Kashyap, Nalanda Devagiri Pali Series, Bihar Government, 1959, Vol.II, Page - 87
4. Gautam Buddha Cited in Horner, Women in Early Buddhist Literature, Colombo, 1961 No. 30, Page – 8-9
5. Anguttara Nikaya, Vol.I, Page – 29
6. आलोचना (पत्रिका) अप्रैल-जून, 2009 राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, हरेकृष्ण तिवारी (लेखक) 'थेरीगाथा' पृ0 40-42 से उद्धृत।
7. A.K. Komaraswamy, Buddha and the Gospel of Buddhism, Harper Torch Books, Page – 154

Prof- Sindhu Suman
NC-126, Om Niwas, 1st Floor,
SBI Colony, Near Gayatri Mandir,
Kankarbagh, Lohianagar, Patna,
Bihar, Pin Code& 800020
Mobile No- 6283832652

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म के मूल तत्त्व

डॉ. राजवाला

बौद्ध धर्म नाना संप्रदाय में विभक्त रहा है, प्राचीन और अर्वाचीन। प्रत्येक संप्रदाय अपने को बुद्ध भगवान की आध्यात्मिक विरासत का सच्चा उत्तराधिकारी मानता है, किंतु प्रत्येक की निष्ठा औरों से भेद रखती है और प्रतिविशिष्ट है। ऐसी स्थिति में यह मीमांस्य से हो जाता है कि भगवान बुद्ध ने यथार्थ में क्या उपदेश किया, और इस प्रश्न की सूक्ष्मता और जटिलता के कारण उसकी मीमांसा सावधानी से करनी होगी।

एक बहुदा स्वीकृत विकल्प यह है कि इन संप्रदायों में जो व्यापक और समान तत्व है उनको बुद्ध का मूल उपदेश मानना चाहिए। इस दृष्टि से अनात्मवाद को सद्धर्म का प्राण समझ गया है। रोजेनवर्ग ने इसका विस्तार से प्रतिपादन करना चाहा है कि एक ही मूल और अखंडित तत्व का नाना संप्रदाय में विकास हुआ है। 'धर्म' को ही वे यह तत्व मानते हैं।किंतु इस प्रसंग में पहले यह स्मरणीय है कि किसी एक तत्व का अनेक अथवा सारे संप्रदायों के द्वारा सामान अभ्युपगम उसकी मौलिकता ना सिद्ध कर केवल इतना ही दर्शाता है कि उस तत्व को संभवतः है 'निकाय – भेद' से प्राचीनतर अर्थात प्रथम बुद्ध शताब्दी का मानना होगा।दूसरे अनात्मवाद का भी पुद्गलवादी संप्रदाय में विरोध देखा जाता है। और फिर चिंतन के इतिहास में केवल शब्द पकड़ने से कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। नाना संप्रदायों के वस्तुतः अभीष्ट और प्रधान सिद्धांतों की परीक्षा से यदि उनमें व्यापक और मार्मिक साम्य प्रतीत हो तथा ऐसे मर्मभूत सिद्धांतों को मूल -सिद्धांत मानने से संप्रदाय- भेद समझने में आसानी हो तथा यह सिद्धांत प्राचीनतम उपलब्ध साक्ष्य से समर्थित, हो तो ऐसी परिस्थिति में इन परवर्ती अनुगत सिद्धांतों से मूल सिद्धांत के विषय में अनुमान उचित न होगा। यह भी स्मरणीय है कि कोई सिद्धांत जो की चिरकाल से अनुवर्तमान हो अपरिवर्तित नहीं रहता और इतिहास यदि परवर्ती सिद्धांतों से मूल सिद्धांत को अनुगति प्रतीत भी हो तो भी यह उसका मूल रूप न होकर उसकी एक विकसित और रूपांतरित अभिव्यक्ति होगी।सच तो यह है की परवर्ती सिद्धांतों के पर्यालोचन से उनका मूल रूप विश्वास्य तौर से नहीं जाना जा सकता है।केवल प्राचीन और मूल वाङ्मय से ही प्राचीन और मूल सिद्धांतों का प्रमाणिक परिचय संभव है, यद्यपि यह सत्य है कि इन प्राचीन सिद्धांतों के सम्यक बोध में इनके परिणत रूप और परवर्ती इतिहास का ज्ञान विशेष सहायता प्रदान कर सकता है। इसीलिए मूलसधर्म के ज्ञान के उत्तर कालीन व्याख्याएं तथा शास्त्र सीमित सहाय देते हुए भी, मूल ग्रंथों से असमर्थित होने पर प्रायोजक ही नहीं, भ्रामक भी हो सकते हैं।

बौद्धों की एक परंपरागत दृष्टि यह है कि समस्त त्रिपिटक बुद्धवचन है और उनमें मूल धर्म संरक्षित है। इसके विपरीत महायानियों की धारणा है कि महायान सूत्रों को प्रमाणिक मानना चाहिए और यह स्वीकार करना चाहिए कि बुद्ध ने विभिन्न अवसरों पर विभिन्न शिष्यों के आध्यात्मिक स्तर के अनुरूप विभिन्न उपदेश दिए। त्रिपिटक के स्कंध, धातु, आयतन आदि सिद्धांत हीन कोटि के शिष्यों के लिए थे, महायान ग्रन्थों की शून्यता उत्तम कोटि के शिष्यों के लिए। इस प्रकार शिष्यों के अधिकारभेद से मूल सद् धर्म भी अनेकविधि था। देशना -भेद की संभावना स्वीकार करते हुए भी महायानसूत्रों की प्रमाणिकता उनके ऐतिहासिक अर्वाचीनता से खंडित हो जाती है। हीनयानी साहित्य में प्राचीनतम पाली त्रिपिटक है, किंतु वह समस्त स्पष्ट ही बुद्ध- वचन न होकर अनेक शताब्दियों के विकास की उपज है। इसीलिए यदि समस्त त्रिपिटक को एक इकाई मानकर

धर्मनिरूपण किया जाएगा तो वह बुद्ध घोष के प्रतिपादक के सदृश होगा और मूल-धर्म से बहुत दूर। त्रिपिटक प्राचीन और उत्तरकालीन परम्पराओं की राशि है जिसमें ऐतिहासिक आलोचना को 'विमज्यवादी' बन कर न केवल स्पष्टतःरू परवर्ती संदर्भों में भी उत्तरकालीन संस्करण तथा परिष्कार को दृष्टि में रखना होगा। इस प्रकार पालि त्रिपिटक की सम्यक ऐतिहासिक आलोचना से उनके संदर्भों और उनमें व्यक्त सिद्धांतो का पौवावयविनिर्णय और उसके द्वारा मूल देशना का आविष्कार करना होगा।

ऐतिहासिक दृष्टि रखने वाले जिज्ञासुओ को गवेषणा का यह मार्ग अनायास ही स्वीकार्य होगा, तथापि इसका साविस्तार उल्लेख इसीलिए अपेक्षित है कि साधर्म के अनेक सुविदित आधुनिक निरूपण इसकी पूर्णता अथवा अंशतः अवहेलना करते हैं। श्रीमती राइस डेविडस ने सद् धर्म के निरूपण में ऐतिहासिक आलोचना के उपयोग का प्रबल समर्थन किया है और उत्तरकाल में प्रचलित पाली बौद्ध धर्म को मूल सद्धर्म से बहुत भिन्न तथा प्रमाणिक बताया है। इस दृष्टि से महायान आदि और भी अर्वाचीन होने से सुतराम अप्रामाणिक ठहरते हैं। श्रीमती राइस डेविडस के प्रयास की दिशा सही और बौद्ध धर्म संबंधी गवेषणा में युग प्रवर्तक होते हुए भी अनेक पूर्वाभिनिविदेशों में से कटंकित होने के कारण अन्य विद्वानों को यथेष्ट आकृष्ट ना कर सकी।इसको एक आगंतुक दुर्भाग्य ही माना जा सकता है।क्योंकि मूल ग्रंथों के ऐतिहासिक विश्लेषण की आवश्यकता निर्विवाद है।

त्रिपिटक का विकास- भगवान बुद्ध ने कोई ग्रंथ नहीं लिखा और ना अपने शिष्यों को अपने उपदेश किसी विशिष्ट प्रमाणभूत भाषा में स्मरण रखने के लिए कहा।उन्होंने प्रचलित मगधी भाषा में उपदेश दिया और भिक्षुओं को अनुमति दी कि वे अपनी - अपनी बोलियों में उनके उपदेशों को स्मरण करें। उनके उपदेशों का पहला संग्रह उनके परिनिर्वाण के अनंतर राजगृह की संगति में हुआ। किंतु उसके बाद के संदर्भ बुद्ध- वचन में जोड़े जाते रहे और पालि त्रिपिटक सिंहल में राजा वटटगामणि के शासनकाल में परिनिर्वाण से चार शताब्दी पीछे अपने वर्तमान रूप में लिखा गया। इस प्रकार पालि त्रिपिटक का रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक स्थिर होता है। तीन त्रिपिटकों में अभिधम्म पिटक स्पष्ट ही प्राचीन अथवा बुद्ध- वचन नहीं है क्योंकि वह सांप्रदायिक संग्रह प्रतीत होता है। संभवतः प्राचीन मातृकाओं अथवा धर्म- सूचियों से सांप्रदायिक भेद के अनुसार इन विभिन्न अभिधर्मो का विकास हुआ, जिसे वैशाली की संगीति से उत्तरकालीन मानना चाहिए।

'मूल देशना'- बुद्ध कोरे पंडितवाद के पक्ष में नहीं थे और अपने समय की अनेक बहु - मीमांसित दार्शनिक समस्याओं पर तार्किक अभियान को अपार्थक मानते थे। लोक शाश्वत है कि अशाश्वत, अन्तवान है कि अनंत,जीव और शरीर एक है अथवा भिन्न, तथागत मृत्यु के पश्चात रहते हैं अथवा नहीं, इन प्रश्नों को बुद्ध ने 'अव्याकृत' स्थापित किया था। बुद्ध ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश करना चाहते थे जिसमें वासना का क्षय हो। केवल बौद्धिक विलास की ओर वे तटस्थ थे। अन्य उदात्त धर्मों के प्रवर्तक भी प्रायरू ऐसी ही दृष्टि रखते हैं। वे अपने उपदेशों में सार्वभौम आध्यात्मिक सत्य की समर्थ और प्रायरू काव्योचित अभिव्यक्ति करते रहे हैं, ना कि उनकी विकल्प और वितर्क से परिगत, सूक्ष्म एवं जटिल व्याख्याएं। वे द्रष्टा रहे हैं ना कि व्याख्याता। उन्होंने मार्ग और गंतव्य दोनों का निरूपण किया, किन्तु यथासंभव। वे ना शुष्क वादी थे कि परमार्थ को लक्षण -प्रमाणवली में परिछिन्न करने का प्रयास, करने का प्रयास करते, ना ज्ञान -रहित व्यवहारवादी कि सुपरिष्कृत समीचीन दृष्टि को समस्त साधना का मूल न मानते। वे जानते थे कि परमार्थ तर्क और अतएव वाणी का अगोचरहै। किन्तु इस अगोचरता का अर्थ 'विशेषतःअवधारणीयता', मानना चाहिए, न कि सर्वदा 'अविषयता'।

बुद्ध के मौन और उनकी देशना विधि का यह रहस्य परवर्ती माध्यमिक आचार्यो ने बहुत मार्मिकता से समझाया है।उनका कहना है कि बुद्ध ने दो शक्तियों का उपदेश किया —था संवृति सत्य और परमार्थ सत्य। परमार्थ सत्य अनभिलाषय और उपाय है समृद्धि सत्य उनकी देशना के लिए शहर और उपेय है, संवृति -सत्य उसकी देशना के लिए सहारा और उपाय है।

आर्य सत्य—-बुद्ध स्वयं संसार से विरक्त होकर शान्ति की खोज में घर से निकले थे और संबोधि के अनंतर शोकावतीर्ण जनता के अवलोकन से करुणाद होकर उन्होंने संबोधि में अधिगत धर्म की देशना का भार अपनाया था। संसार के तट से निर्वाण के तट तक ले जाने वाला उनका धर्म करुणा का सेतु था। जीवन के अपरिहार्य दुःख के दर्शन से उनके धर्म का प्रारंभ होता है। दुःख की प्रवृत्ति समझ कर उसकी निवृत्ति के लिए प्रयत्न ही धर्म- चर्या है, जो कि संबोधि चरमता को प्राप्त होती

है, और अनुत्तर शांति- पद की परमार्थ है। इस प्रकार दुःख, समुदाय, निरोध, और निरोध गामिनी प्रतिपद, इस चार विभागों में बुद्ध देशना का विचार अनायास हो सकता है। बौद्धों में यह सर्वसम्मत है कि इन चार आर्य सत्यों का उपदेश किया। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि चार आर्य-सत्यों का आर्यत्व अथवा सद्धर्म सम्बन्ध दुख आदि पद चतुष्टय के प्रयोग से नहीं, किंतु उनमें अभीष्ट अर्थविशेष की अवधारणा से सिद्ध होता है। आर्यसत्यों में से कौन से धर्म अन्तर्भूत है, इसपर परवर्ती काल में अभिधर्म के आचार्यों ने अनेक धारणाएं और व्याख्याएं प्रस्तुति की है।

दुःख सत्य—विनय और निकायों में पहले सत्य के अंदर दुख को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया गया है, दूसरे सत्य में प्रतीत्यसमुत्पाद अथवा निदानों का उल्लेख किया गया है, तीसरे सत्य में निर्वाण अथवा निरोध का और चौथे में नाना बोधिपाक्षिक धर्म का, विशेषता अष्टांगमार्ग का। ऐसा प्रतीत होता है की मूल देशना में आर्यसत्यों के अंदर धर्मों के चतुर्धा व्यवस्थापन की कोई सूक्ष्म परिभाषा अभिप्रेत न थी। कभी-कभी उपदेशसौकर्य के लिए इस विभाजन का सामान्यतः उपयोग किया जाता था। यह बात दूसरी है कि दुख आदि सत्य नाना स्थलों पर विविध रूप से अर्थतः अच्छिप्त है।दुख की सत्ता सर्वविदित है और उसका अपलाप नहीं किया जा सकता, किंतु लौकिक दृष्टि से दुख भी जीवन के अनेक तत्वों में से एक है। साधारण जीवन दुख को आगंतुक मानकर ही चलता है।नाना दृष्ट उपाय से हम दुख को परिहारणीय मानते हैं। रोग सामने आता है तो चिकित्सक खोजते हैं, इष्ट वस्तु से वियोग होता है तो मन को समझते हैं। यदि जरा मरण यदि रूप से घटते हैं तो तितिक्षा का सहारा लेते हैं और विस्मरण का यथाशकय प्रयास उचित मानते हैं। मृत्यु जीवन का अपरिहार्य अंत है और जरा स्वाभाविक और है और अनिवार्य उपसरण है।

दुख को जीवन व्यापी और अपरिहार्य मानकर मुक्ति और शांति की खोज प्रायरू सभी निवृत्तिपरकर आध्यात्मिक प्रस्थानों में रही है। सांख्य और योग, निर्ग्रन्थ और बौद्ध सभी इसमें एकमत है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में प्रतिकूल संवेदन रूप दुःख के मुख्य अर्थ के साथ दुःख बहुल संसार को भी दुख माना गया है, किंतु वहाँ दुःख के इस व्यापक महत्व स्वीकार के अनेक उदाहरण होते हुए भी उसका अधिक सूक्ष्म विवेचन तथा विस्तृत निरूपण प्राप्त नही होता। उत्तरकाल में दुख की परिभाषा पर प्रभूत विमर्श किया गया। पहले तो यह स्वीकार किया गया कि 'सर्व दुख 'उस उक्ति में दुख और दुख संवेदन में स्पष्ट भेद है क्योंकि संवेदन की द्विविध् दुखात्मक अथवा सुखखात्मक संवेदना को जोड़कर, त्रिविध मानना अनिवार्य है। सुख अस्थिर है और अंत मे असुख बन जाता है। इस कारण उसे भी दुख में गिनना चाहिए। समस्त वस्तुएं अनित्य और परिवर्तन शील है एवं एक प्रकार के निरंतर अव्युपशम में पड़ी हुई है। इसी कारण सभी कुछ दुख में गिना जाना चाहिए। इस व्यापक दृष्टि से समस्त अनित्य जगत् दुखात्मक है। यह कहा जा सकता है कि यह मत प्रत्यक्ष विरुद्ध है क्योंकि हम लोग निरंतर अनित्य अनुभव – प्रवाह में रहते हुए भी उसे निरंतर दुख प्रवाह नहीं देख पाते। इसका उत्तर अक्षिपात्र से दिया जाता है जिस प्रकार आँख में पड़ा हुआ सूक्ष्म से सूक्ष्म रज-कण भी विकलता उत्पन्न करता है, अन्यत्र देह में नही, वैसे ही सूक्ष्मवेदी आर्यो को समस्त अनुभव में दुःख बोध होता है, दुःख का सर्व विदित स्थूल रुप है प्रतिकल- संवेदन, पर उसका आर्य- विदित , सूक्ष्म और सर्व-गत रुप है अव्यूपशम।

प्रतीत्यसमुत्पाद- ईसा पूर्व छठी शताब्दी में संसार के दुःख से मुक्ति की खोज ने बहुतों को घर से बाहर खींच कर परिव्राजक बना दिया था और नाना परिव्राजक संप्रदायों में दुःखमय संसार की समस्या नाना प्रकार से सुलझाने का प्रयास किया गया था। बुद्ध-देशना में प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वारा दुख संप्रदाय के प्रश्न का समाधान हुआ है ,यह प्रायः सभी स्वीकार कर लेंगे, यद्यपि प्रतीत्यसमुत्पाद अनेकानेक व्याख्याएं की गई है। श्रीमती राज डेविडसन ने तो कार्य कारण सिद्धांत के मूल उपदेश का नाम भी खोज निकाला है। उनका कहना है कि तथागत नहीं, कप्पिन इसके आविष्कारक थे। पर यह निसंदेह है कि यदि नाम से नहीं, तो कम से कम बीजरूप में प्रतीत्यसमुत्पाद अवश्य ही मूल देशना का अंग था प्रतीत्यसमुत्पाद को संबोधि में अधिगम धर्म बताया गया है और यह कहा गया है कि जो "प्रतीत्यसमुत्पाद को देखता है वह धर्म को देखता है" सभी संप्रदाय इसकी प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं और इसे सर्वथा छोड़ देने पर सद्धर्म की रीढ़ ही टूट जाती है।यह आवश्यक है कि इसका प्राचीनतम निर्देश कदाचित "मध्यम धर्म" अथवा "माध्यम प्रतिपद" के नाम से हुआ था। यह निश्चित है की मूल - देशना

में इसका प्रतिपादन अपरिभाषिक और विविधत था।किंतु इन विविध उपदेशों की संग्रह, वर्गीकरण, और परिष्कार के द्वारा परिनिर्वाण की प्रथम शती में प्रतीत्यसमुत्पाद ने अपना विकसित और सुविदित रूप धारण कर लिया जिसमें संसार अविद्या से प्रारंभ होकर दुख में अंत होने वाली एक कार्य- कारण शृंखला है। इस शृंखला की बारह प्रधान कड़ियां हैं जिन्हें 'द्वादश निदान' कहा जाता है। अभिधर्म में प्रतीत्यसमुत्पाद इस रुप की के विस्तृत और सूक्ष्म व्याख्या की गई है। किंतु माध्यमिक दर्शन में फिर से प्रतीत्यसमुत्पाद के वास्तविक, गंभीर और व्यापक रूप का प्रतिपादन किया गया जो की मुख्य अभिप्राय में मूल- देशना के निकट होते हुए भी, परवर्ती काल के दार्शनिक परिष्कार से अलंकृत था।

प्रतीत्यसमुत्पाद और कार्य कारण-भाव- प्रतीत्यसमुत्पाद का मुख्य अभिप्राय दुख की उत्पत्ति समझना था, अथवा कार्यकारण नियम का सामान्यतः प्रतिपादन था, इस पर भी मतभेद है। यह अक्सर माना गया है कि चिंतन के इतिहास में प्रतीत्यसमुत्पाद कार्य कारण भाव का व्यापक रूप में सर्वप्रथम प्रतिपादन है और इसका महत्व इसी पर अवलंबित है। किन्तु यह मानना कठिन प्रतीत होता है कि कार्य कारण सम्बन्ध का बुद्ध के समय मे अथवा उससे पहले प्रतिपादित नही हुआ था। इसके अतिरिक्त यह सुबोध नहीं है कि कार्य कारण नियम का ज्ञान आध्यात्मिक जगत में किस प्रकार परम आविष्कार माना जा सकता है। यह सत्य है कि शारीरिक और मानसिक व्यापार कार्यकारण के नियम से जकड़े हुये है, किन्तु केवल इतने मात्र के अभ्युपगम से अध्यात्म विकास का कार्य संभव नही होता क्योंकि इतना स्वीकार तो आधुनिक जीव विज्ञान और मनोविज्ञान में भी किया जाता है। आध्यात्मिक सत्य होने के लिये कार्य- कारण नियम को किसी अन्य बृहतर सत्य की भूमिका मानना होगा।

कर्म- बुद्ध के समय में दुःख की उत्पत्ति का प्रधान कारण कर्म माना जाता था और यह निर्विवाद है कि संसार मीमांसा में कर्म की प्रमुखता सदैव सर्वसम्मत रही है। निकायों की बार- बार दोहरायी गयी एक पंक्ति में कहा गया है कि 'कर्म ही जीवों का अपना है, कर्म ही इनकी विरासत है, कर्म उनका प्रभव है, कर्म उनका बंधु और कर्म ही उनका सहारा है।' 3. कर्म ही जीवों को बांटता है, उन्हें हीन और उत्तम बनाता है।'इस प्रकार प्राचीन बौद्धों में भी कर्म ही संसार का आसन्न कारण स्पष्टतः स्वीकार किया गया था।

प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण— भगवान भगवान बुद्ध ने अनुत्तर-शांति-पद की खोज में घर- बार छोड़ा और उनकी खोज तब पुरी हुई जब उन्होंने संबोधि में गम्भीर, शांत, उत्तम और अतर्क विचार धर्म प्राप्त किया इस धर्म को द्विध वर्णित किया गया है— प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण। प्रतीत्यसमुत्पाद, इदम्प्रत्ययता अथवा मध्यमा प्रतिपद अनित्य संस्कारों के प्रवाहरूप संसार को परतंत्र और सापेक्ष सूचित करती है तथा परमार्थ को अंत- विवर्जित एवं अनिर्वचनीय। निर्वाण अर्थात 'बुझ जाने' से संसार का निरोध एवं सत्य की प्राप्ति सूचित होती है। प्रतीत्यसमुत्पाद 'धर्म 'को नियम और सीमा के रुप में संकेतित करता है , निर्वाण विमुक्ति और भूमा के रूप में। प्रतीत्यसमुत्पाद में संसार का गंभीरतम 'लक्षण' (और परमार्थ कि 'अलक्षणता') प्रकाशित होती है। निर्वाण अतर्क्य और नित्यसत्य -संबोधि के संदर्भ में निर्वाण को अतर्क्य धर्म कहा गया है और उसका वर्णन किया गया है—'सर्व संस्कार शमथ, सर्वोपधि — प्रतिनिसर्ग, तृष्णा- क्षय, विराग, निरोध।" संसार जात , समुत्पन्न, कृत, संस्कृत और अध्रुव है। "उसका निस्सरण है शांत, अतर्क-, ध्रुव , अजात, समुत्पन्न, अशोक विरज पद।"ये विशेषण उपनिषदों के आत्म वर्णन की प्रति ध्वनि सुनते है।

निर्वाण— परम सुख— निर्वाण में निशशेष संस्कारों का उपशमन हो जाता है और इस कारण उसे शान्त अथवा शांति-पद कहा गया है यही नहीं, इस उपशमन को सुख कहा गया है। निर्वाण को साक्षात् भी परम अथवा अचल सुख कहा गया है। विभाषा में सूत्र उद्धृत किया गया है कि — मार्ग- सुख से निर्वाण सुख प्राप्त होगा है। महायानी आचार्यो ने भी निर्वाण को सुख- रूप माना है। किंतु इस सुख को सुख- संवेदन नहीं समझना चाहिए। भगवान ने केवल सुख वेदना को ही सुखमय नही बताया, अपितु जहाँ- जहाँ सुख उपलब्ध होता है इसको भी सुखमय बताया है। इस विलक्षण सुख की चर्चा उपनिषदों में भी है।

निर्वाण मुक्ति— प्रज्ञा के द्वारा चेतोविमुक्ति का लाभ होता है। 'चित्र विमुक्त होता है, विमुक्त होने पर "विमुक्त हुआ"

यह बोध होता है,” जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, कर्तव्य कर लिया अब और संसार शेष नहीं है,” यह समझ लेता है” ज्ञान के द्वारा आश्रवो के क्षीण होने पर अकुप्पा, अनुत्तरा विमुक्ति प्राप्त होती है।यही अहर्तव का लाभ है। विमुक्ति की अवस्था राग, द्वेष और मोह के क्षय की है और इसे अमरत्व कहा गया है। विमुक्ति को विद्या का प्रतिभाग कहा गया है, और निर्वाण को विमुक्ति का प्रतिशरण। अन्यत्र विमुक्ति को स्मृति का प्रतिपाशरण कहा गया है और निर्वाण को विमुक्ति का। निर्वाण में आश्रव, एषणाए , राग- द्वेष- मोह संयोजन, तृष्णा, कर्म। भव, नाम — रूप, संस्कार, उपाधि आदि अशेष का निरोध हो जाता है। समासतः जन्म-मरण की परंपरा अविद्या, क्लेस और कर्म पर आश्रित है। विद्या से क्लेस क्षीण हो जाता है। इस प्रकार संसार — चक्र का निरोध हो जाता है। साधारणरू इसे ही निर्वाण कहा गया है।

आत्मा —निर्माण का विचार आत्मा पुरुष, अथवा पुद्गल के विचार के बिना पूरा नहीं हो सकता। अतः नाना पुरुष संसरण करते हुए दुख अनुभव कर रहे हैं एवं निर्वाण की खोज करते हैं इस संसारियों का स्वरूप क्या है, एवं कौन निर्माण को प्राप्त करता है और निर्माण की प्राप्ति के पश्चात उनका क्या होता है, इन प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है। अनेक विद्वानों ने यह कहा है कि भगवान बुद्ध ने अपने समय में प्रचलित आत्मवाद का खंडन किया एवं संसारी को संसरण प्रवाह में निमग्न कर दिया।इसके प्रतिकूल कुछ विद्वानों ने कहा है कि इस प्रकार नेरात्मयवाद परवर्ती भिक्षुओं को और आचार्य की बुद्धि की उपज है।तथागत ने केवल अनात्मभूत तत्वों में आत्मा के न देखने का अथवा उपदेश दिया था, आत्मा का सर्वथा तिरस्कार नहीं। नागार्जुन का कहना कि विशेष अभिप्राय से तथागत ने आत्मवाद अथवा अनात्मवाद दोनों का उपदेश किया। किन्तु उसका वास्तविक अभिप्रेत यह था कि आत्मवाद तात्विक है, न अनात्मवाद दोनों ही कोटियों के परे अनिर्वचनीय रूप से सत्य प्रतिष्ठित है।

अहिंसा — अहिंसा, मैत्री, करुणा, सहानुभूति एवं सहिष्णुता का बौद्ध शील में मूर्धन्य स्थान है। शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मण को सबका मित्र तथा अहिंसक कहा गया है दीक्षित को अक्रोध बताया गया है, एवं उत्तर- वैदिक- साहित्य में याज्ञिक हिंसा के प्रति कहीं-कहीं आपत्ति प्रकट होती है। इस प्रवृत्ति का बौद्ध साहित्य में प्रचुर विकास देखा जा सकता है। और इस विकास का कारण संसारवाद एवं कर्मवाद का प्रचार माना जाना चाहिए। यह मानने पर कि एक ही जीव- सत्ता कम-भेद में नाना योनियो में जन्म पाती है, समस्त ब्रह्माण्ड के प्रणियों का आध्यात्मिक सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। लोक- जीवन हिंसा के विकट जाल मे फंस जाता है। बिना उस जाल को काटे निवृत्ति- मार्ग में गति संभव नहीं है। योगभाष्यकार ने कहा है कि शेष सब नियम अहिंसा को विशुद्ध करने के लिए ही स्वीकार किए जाते हैं। सदधर्म में कर्म को मूलतः मानसिक माना है और अतएवं निग्रंथों से भेद है बौद्ध अहिंसा साहित्य न केवल पशु- हिंसा अथवा पर-पीड़न की वर्जना है, अपितु शांति मैत्री एवं सहानुभूति की भावना है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मुक्ति मार्ग में प्रवेश और प्रगति की अवस्थाओं का विवेचन क्रमशः सूक्ष्म और विस्तृत हुआ। पृथग्जन और आर्य का भेद प्राचीनता था उनमें भावना एवं विपश्यना के तारतम्य से अवानतरभेद भी स्वीकार किए गए। महायान में आध्यात्मिक विकास की अवस्थाओं का और भी सूक्ष्म और विस्तृत चिंतन हुआ।

संदर्भ

पाण्डेय, डॉ.गोविन्दचंद्र(1976) बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, घनश्याम भार्गव एक्सप्रिंट, लखनऊ।

कोसमबी, धर्मानंद (1956) , भगवान बुद्ध, राजकमल प्रकाशन बम्बई।

सराओ, के. टी. एस.(2004) प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्मरू उद्भव, स्वरूप एवं पतन , द कारपोरेट बोर्ड ऑफ द बुद्धा एजुकेशन फाउंडेशन, ताइवान

सहायक आचार्य, शिक्षक शिक्षा विभाग,

बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा -282001

Email id& rajvala1616@gmail.com

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धर्म और सामाजिक मूल्य (वरिष्ठ नागरिकों के विशेष संदर्भ में)

रमा निगम

मनुष्य को एक सभ्य प्राणी के रूप में देखा जाता है, सभ्यता का वास्तविक विकास केवल आर्थिक उन्नति या उसके द्वारा की गई वैज्ञानिक प्रगति से नहीं आंका और मापा जा सकता है, बल्कि उसे उसके द्वारा किये गये वास्तविक सामाजिक और नैतिक मूल्यों से भी आँका जाता है। किसी भी समाज को दीर्घकाल तक संतुलित एवं समृद्ध बनाए रखना हो तो उस समाज को करुणा, दया, अहिंसा, पारस्परिक सम्मान और सहिष्णुता जैसे जीवन मूल्यों को लगातार बनाए रखना होगा।

बौद्ध धर्म नें इन्हीं मानवीय मूल्यों को मनुष्य जीवन का आधार बनाया है। बौद्ध धर्म जीवन को संतुलित, करुणामय और नैतिक बनाने की जीवन पद्दति है। बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत जिनमें करुणा, अहिंसा, मैत्री और सद्भाव आज भी प्रासांगिक होकर समाज को दिशा देने वाले बहुमूल्य सामाजिक मूल्यों का स्रोत हैं। विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिकों के संदर्भ में सामाजिक एवं पारिवारिक सम्मान और संवेदनशीलता विकसित करने में बौद्ध धर्म के साथ ही बौद्ध दर्शन की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

भगवान बुद्ध ने प्राणी मात्र के प्रति प्रेम, करुणा एवं अहिंसा का संदेश दिया। उनका मानना था कि कोई भी समाज तभी सुखी और समृद्ध बन सकता है, जब उसमें किसी भी तरह की हिंसा, भेदभाव या उपेक्षा का भाव तथा अन्याय का भाव मौजूद न हो, सभी के प्रति समभाव हो। आज के व्यस्त, भागदौड़ भरे और भौतिकतावादी जीवन में अनेकों वरिष्ठ नागरिक अकेलेपन, सामाजिक एवं अन्य असुरक्षा और उपेक्षा का प्रतिपल अनुभव कर रहे हैं। ऐसे समय में बौद्ध धर्म वरिष्ठ नागरिकों के प्रति एक महत्वपूर्ण आधार बनकर सहानुभूति, प्रेम, करुणा और आत्मीयता पूर्वक व्यवहार की शिक्षा देता है।

जब वृद्ध लोगों के प्रति परिवार और समाज में आपसी प्रेम, स्नेह, सम्मान और सहयोग की भावना होती है, तब मौजूदा पीढ़ियों के मध्य प्रेम, विश्वास और अपनापन बढ़ता है। यदि परिवार के सदस्य परिवार में युवाओं सहित छोटे बच्चों को घर के बुजुर्गों के साथ समय बिताने और उनके अनुभवों को सम्मानपूर्वक स्वीकार करने और उनको यह महसूस कराने की दिशा में अपना योगदान दें तथा उन्हें यह महसूस करायें कि आप हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं, तो परिवार की नींव और अधिक मजबूत हो सकती है। साथ ही परिवार पहले से अधिक संस्कारवान बन सकता है। आज इस बात की बहुत अधिक आवश्यकता है कि हम भगवान बुद्ध के उपदेशों को केवल पुस्तकों, पुस्तकालयों एवं धर्मग्रंथ तक सीमित न रहने दें, बल्कि उन्हें अपने रोजाना के जीवन का एक जरूरी हिस्सा बनाएँ। हम वरिष्ठ नागरिकों के प्रति सम्मान, सेवा, प्रेम-स्नेह और संवेदनशीलता का व्यवहार करके अपने सामाजिक मूल्यों को मजबूत कर सकते हैं। तथा एक ऐसे समाज का निर्माण भी कर सकते हैं, जहां प्रत्येक बुजुर्ग व्यक्ति स्वयं को उपेक्षित, अकेला और अनुपयोगी न समझे,बल्कि वह स्वयं को पूर्णतया सुरक्षित, सम्मानित और उपयोगी महसूस करे। क्योंकि वर्तमान समय में परिवार नामक संस्था का विघटन हो रहा है और संयुक्त परिवार छोटी-छोटी इकाइयों में बंटते चले जा रहे हैं। लोगों के मध्य सामाजिक संबंध औपचारिक होते जा रहे हैं, तथा बहुत से परिवारों के वृद्ध सदस्य उपेक्षा और अकेलेपन का सामना सामाजिक एवं पारिवारिक अलगाव के रूप में कर रहे हैं।

परिवारों में मैत्रीपूर्ण वातावरण हो, तो पीढ़ियों के मध्य संवाद घटता नहीं बल्कि बढ़ता है, मतभेद कम होते हैं और वरिष्ठ

नागरिक स्वयं को परिवार से कटा हुआ नहीं समझते हैं, बल्कि वह अपने आप को परिवार का एक अभिन्न अंग हैं, ऐसा अनुभव करते हैं।

बुद्ध द्वारा प्रदत्त ज्ञान एवं शिक्षा समाज को यह संदेश देती है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझने लगे, तभी सच्चे रूप में मानवता का विकास संभव है। करुणा को सर्वोच्च मानवीय गुण और सामाजिक मूल्य समझे। करुणा का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि किसी व्यक्ति के प्रति सहानुभूति रखी जाये, बल्कि उसके कष्ट, उसके दुःखों को दूर करने का सक्रिय रूप से प्रयास भी करा जाये। वृद्ध व्यक्ति जीवन के उस पड़ाव पर पहुँच चुके होते हैं, जहां उन्हें आर्थिक मदद से ज्यादा भावनात्मक सहयोग, आत्मीय संवाद और सम्मान की जरूरत होती है। परिवार में आपसी सामंजस्य और सहयोग को बनाए रखते हुए परिवार के सदस्य बुद्ध के करुणा के सिद्धांत को अपने व्यवहार में उतारें तो वृद्धावस्था किसी भी बुजुर्ग व्यक्ति के लिए बोझ नहीं बन सकती है, बल्कि उनके जीवन में यह अवस्था सम्मान और संतोष का समय बन सकती है। करुणा का सिद्धांत यह संदेश देता है कि वृद्ध व्यक्ति केवल परिवार के सदस्य नहीं होते हैं, बल्कि वह अनुभव, संस्कृति और परंपरा के जीवंत स्रोत हैं। इसलिए वरिष्ठ नागरिकों का आदर और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखना घर -परिवार और समाज की नैतिक जिम्मेदारी है।

किसी के प्रति कठोर शब्दों का उपयोग करना या कठोर शब्द बोलना, उस व्यक्ति का अपमान करना, उसे मानसिक कष्ट देना, उसकी उपेक्षा करना तथा उसे अकेला छोड़ा देना भी एक तरह की हिंसा का ही रूप माना जायेगा। आज के समय में अनेकों वरिष्ठ नागरिक शारीरिक हिंसा से अधिक मानसिक उपेक्षा का सामना करने पर मजबूर हैं। इन सभी का कारण है परिवार के सदस्यों के मध्य संवाद की कमी का होना, समय का अभाव स्वस्थ जीवन शैली को न अपनाना। चल दूरभाष के साथ समय बिताना या अनावश्यक रूप से समय बर्बाद करना। लेकिन घर के बुजुर्ग व्यक्ति के साथ समयाभाव की बात कहना। उन्हें उनके हिस्से का समय नहीं देना भी सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों में गिरावट का स्पष्ट संकेत तथा भविष्य के लिए खतरे की घंटी है।

बुद्ध के जीवन दर्शन के अनुसार अहिंसा का अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को शारीरिक कष्ट न दिया जाये। और वृद्ध व्यक्ति की सेवा केवल नैतिक दायित्व तक सीमित नहीं रहे बल्कि, यह मानवता का सर्वोच्च रूप साबित हो। बोद्ध अहिंसा वृद्ध व्यक्तियों के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार का वास्तविक अहिंसक रूप है।

वर्तमान समय में वृद्धाश्रमों की बढ़ती हुई संख्या चिंता का विषय है। संयुक्त परिवारों का विघटन और एकल परिवारों का बढ़ता चलन तथा अकेलेपन की समस्या इस बात का संकेत है कि समाज को पुनः मानवीय मानवीय मूल्यों की वापसी की आवश्यकता है। बौद्ध धर्म का मुख्य आधार करुणा है,जो कि इस सामाजिक एवं पारिवारिक संकट का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है। विद्यालयों, परिवारों और समस्त सामाजिक संस्थाओं में दया,अहिंसा, मैत्री और सहयोग -सद्भाव जैसे नैतिक मूल्यों का विकास किया जाये तो वरिष्ठ नागरिकों के जीवन में अकेलापन और सामाजिक अलगाव का भाव उत्पन्न नहीं होगा। तथा इससे सम्पूर्ण मानव समाज संवेदनशील और संतुलित बनेगा। बुद्ध दर्शन मूलतः मानव केंद्रित दर्शन है। बौद्ध धर्म का उद्देश्य ष्बहुजन हिताय, बहुजन सुखायष को स्थापित करना है। बौद्ध धर्म का यह सिद्धांत आज भी सामाजिक व लोककल्याण की दृष्टि से उतना ही प्रासंगिक है, जितना की पहले हुआ करता था। इसलिए यह वरिष्ठ नागरिकों के संदर्भ में लोककल्याणकारी है।

अकेलापन, आर्थिक रूप से असुरक्षा, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, मानसिक उलझने व तनाव तथा सामाजिक व पारिवारिक उपेक्षा वृद्ध व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। आधुनिक वृद्ध कल्याण नीतियों का उद्देश्य केवल वृद्ध व्यक्तियों को आर्थिक सहायता प्रदान करना नहीं है, बल्कि वृद्धों को सम्मानपूर्ण, सुरक्षित, स्वस्थ और सक्रिय जीवन उपलब्ध कराना भी है। बौद्ध दृष्टिकोण का स्पष्ट मत है कि किसी भी समाज की वास्तविक उन्नति का मापदंड केवल आर्थिक आधार या आर्थिक विकास नहीं होना चाहिए। बल्कि उस सामाज के सबसे कमजोर, असहाय वृद्ध आश्रित वर्ग के प्रति संवेदनशीलता भी होना चाहिए। वृद्धजनों के प्रति सम्मान, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उनके जीवन के प्राप्त अनुभवों का उचित

उपयोग एक विकसित और सभ्य समाज की पहचान होती है। वृद्ध व्यक्तियों के लिए ऐसे विचार एक आधुनिक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के साथ तालमेल बिठाते हुए एक अच्छा सामंजस्य स्थापित करते हैं। जब तक समाज में करुणा, सहानुभूति, अपनापन, धैर्य और पारिवारिक उत्तरदायित्व जैसे व्यवहारिक और नैतिक मूल्यों का विकास नहीं होगा तब तक वरिष्ठ नागरिकों की समस्याओं का स्थायी समाधान संभव नहीं हो सकता है। इसलिए यहाँ बौद्ध धर्म का मानवीय दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

आज आवश्यकता है कि वृद्ध कल्याण की नीतियों को सीमित न रखा जाये,बल्कि उन्हें सामाजिक चेतना का भी हिस्सा बनाया जाये। वृद्धों के प्रति कल्याणकारी नीतियाँ मनुष्य को मनुष्य के दुःख के प्रति संवेदनशील बनाती हैं। बुद्ध के करुणा,मैत्री, अहिंसा और समता जैसे महत्वपूर्ण सिद्धांत आधुनिक वृद्ध कल्याण की समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को मानवीय गहराई प्रदान करते हैं और एक ऐसे समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जहां प्रत्येक वरिष्ठ व्यक्ति सम्मान, सुरक्षा और सामाजिक गरिमा के साथ शांतिपूर्ण रूप में जीवन व्यतीत कर सके। बुद्ध के सामाजिक मूल्य जितने की ढाई हजार वर्ष पूर्व प्रासंगिक थे उतने ही आज भी प्रासंगिक हैं। वरिष्ठ नागरिक हमारी जीवंत धरोहर हैं। उनका सम्मान करना प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक दायित्व ही नहीं बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करना भी है। प्रत्येक वरिष्ठ नागरिक स्वयं को सम्मानित, सुरक्षित और आत्मीय वातावरण में महसूस करे,

इसके लिए बुद्ध के मानवीय मूल्यों को व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक व्यवहार और सामाजिक व्यवस्था में आत्मसात किया जाना आवश्यक है। वरिष्ठ नागरिकों के प्रति सम्मान केवल सामाजिक या पारिवारिक कर्त्तव्य नहीं है, बल्कि यह एक अत्यंत आवश्यक सामाजिक उत्तरदायित्व भी है। तेजी से बदलती सामाजिक व्यवस्था और आधुनिक जीवनशैली के कारण बुजुर्गों के अनुभव और उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण का पर्याप्त लाभ आज की युवा पीढ़ी नहीं उठा पा रही है।

बुद्ध ज्ञान हमें यह प्रेरणा देता है कि वृद्धावस्था को बोझ नहीं, बल्कि अनुभव, ज्ञान और जीवन के संस्कारों की पूँजी के रूप में देखा जाना चाहिए।

आधुनिक वरिष्ठ नागरिक कल्याण नीतियाँ इस दिशा में पूर्व की भांति कार्य कर रही हैं। सरकार द्वारा पेंशन, स्वास्थ्य सेवाएं, वृद्ध देखभाल और सामाजिक सुरक्षा जैसी जरूरी व महत्वपूर्ण कल्याणकारी योजनाएं चलाई जा रही हैं। लेकिन वरिष्ठ नागरिकों के संदर्भ में यह योजनाएँ पर्याप्त नहीं हैं। सरकारी नीतियों का सही तरीके से पालन व प्रचलन नहीं होगा तो अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकेंगे।

बौद्ध धर्म के व्यवहारिक अनुप्रयोग के संदर्भ में कुछ चुनौतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। बौद्ध धर्म व्यक्तिगत आत्मानुशासन और नैतिक परिवर्तन पर अधिक जोर देता है, जबकि वर्तमान समय की जटिल सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए मजबूत संस्थागत व्यवस्थाएं और प्रभावी सरकारी हस्तक्षेप भी जरूरी है। इसके अतिरिक्त केवल आध्यात्मिक शिक्षा से आर्थिक असुरक्षा, स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं की कमी या वृद्ध व्यक्ति का उत्पीड़न जैसी महत्वपूर्ण समस्याओं का पूर्ण समाधान संभव नहीं है। इसके साथ ही आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में करुणा और त्याग जैसे मूल्यों को व्यवहार में उतारना पहले की तुलना में अधिक मुश्किलभरा हो गया है। इसीलिए बुद्ध के मूल्यों को समकालीन सामाजिक नीतियों, पारिवारिक उत्तरदायित्व और कानूनी संरक्षण के साथ जोड़कर देखे जाने की आवश्यक्ता है। यह सीमाएं बुद्ध की मूल शिक्षाओं की कमियां नहीं दर्शा रहीं हैं, बल्कि आधुनिक समाज में उन्हें व्यवहारिक रूप से लागू करने में चुनौतियों को भी दिखा रही हैं। वास्तविकता यह है कि बौद्ध दर्शन आज भी मानवता, सह-अस्तित्व और सामाजिक समरसता का एक सशक्त आधार है। वर्तमान समय में इस बात की आवश्यकता अत्यधिक है कि हम अपने वृद्ध नागरिकों को केवल सहायता पाने वाला पात्र न समझें, बल्कि उन्हें समाज की ज्ञान-संपदा और सांस्कृतिक विरासत के तौर पर उचित सम्मान दें। जिसके की वह पूर्णरूप से अधिकारी हैं। बौद्ध धर्म के करुणा, अहिंसा, मैत्री और सद्भाव जैसे मूल्य यदि समाज व परिवार का एक जरुरी हिस्सा बन जायें तो बुजुर्ग व्यक्तियों के जीवन में संतोष, सुरक्षा, सम्मान और आत्मीयता का एक सुखद व सुंदर वातावरण निर्मित हो सकता है। यही एक संवेदनशील, समदृष्टि संयुक्त मानवीय समाज की पहचान कहलायेगी। बौद्ध धर्म के व्यवहारिक अनुप्रयोगों को व्यहार में लागू

करना कठिन तथा चुनौतिपूर्ण हो सकता है। मात्र नैतिक शिक्षा दे देने से आर्थिक व स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं का समाधान नहीं निकलेगा। इसके लिए इन्हें व्यवहारिक रूप से लागू किया जाना जरूरी है। जहाँ लंबे समय से एकल परिवार चल रहे हैं वहां, करुणा और सामुदायिक जीवन के मूल्यों का पालन करना किसी बड़ी चुनौति से कम नहीं। सरकार और समाज की मिलीजुली नीतियां और सामाजिक सहभागिता के बिना केवल धार्मिक शिक्षाए पर्याप्त नहीं होती हैं। यह विषय वरिष्ठ नागरिकों से जुड़ा हुआ है, तथा अत्यंत गंभीर व महत्वपूर्ण है, इसलिए इस विषय को प्रत्येक स्तर पर मुख्य महत्वपूर्ण विषय के रूप में देखा जाना चाहिए।

शोधार्थी
सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी रायसेन
ग्राम - अग्रिया चौपड़ा रोड भोपाल (म. प्र.)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

माता सीता और भक्त शबरी की संवेदनशील भूमिकाएँ : भारतीय सांस्कृतिक चेतना, नारी-अस्मिता और वैश्विक मानवीय मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

अनीता चेची

सार- भारतीय सभ्यता का सांस्कृतिक इतिहास उन जीवन-मूल्यों का इतिहास है, जिन्होंने मानवता को करुणा, सह-अस्तित्व, मर्यादा और आध्यात्मिक चेतना का मार्ग प्रदान किया। रामायण इस सांस्कृतिक विरासत का ऐसा शाश्वत ग्रंथ है, जो केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन का आधारभूत दस्तावेज है। इसके विविध पात्रों में माता सीता और भक्त शबरी दो ऐसे स्त्री-चरित्र हैं, जिनके माध्यम से भारतीय संस्कृति ने नारी के आत्मबल, करुणा, नैतिक गरिमा, भक्ति और मानवीय समानता के सर्वोच्च आदर्शों को अभिव्यक्ति दी है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य माता सीता और भक्त शबरी के चरित्रों का केवल परंपरागत धार्मिक दृष्टि से अध्ययन करना नहीं, बल्कि उन्हें समकालीन नारी-विमर्श, सांस्कृतिक अध्ययन और वैश्विक मानवीय मूल्यों के आलोक में पुनर्पाठ करना है। वाल्मीकि रामायण और श्रीरामचरितमानस के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि सीता और शबरी भारतीय सांस्कृतिक स्मृति में निष्क्रिय अथवा केवल आदर्शीकृत स्त्रियाँ नहीं हैं, बल्कि नैतिक स्वायत्तता, आध्यात्मिक गरिमा और मानवीय करुणा की सक्रिय प्रतिनिधि हैं। इस अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि समकालीन हिन्दी कविता, विशेषतः मेरी काव्य-कृति काव्यांजलि, सीता के व्यक्तित्व को आधुनिक स्त्री-चेतना के संदर्भ में पुनर्परिभाषित करती है। इस प्रकार यह शोध-पत्र भारतीय परम्परा और आधुनिक विमर्श के मध्य एक सृजनात्मक सेतु स्थापित करने का प्रयास है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन इस निष्कर्ष तक पहुँचता है कि सीता और शबरी केवल भारतीय सांस्कृतिक विरासत की धरोहर नहीं हैं, बल्कि वे समस्त मानवता के लिए करुणा, समानता, आत्मसम्मान और आध्यात्मिक मानवतावाद की सार्वभौमिक प्रतीक हैं।

मुख्य शब्द—माता सीता, भक्त शबरी, वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस, नारी-अस्मिता, करुणा, भक्ति, भारतीय संस्कृति, मानवीय मूल्य, काव्यांजलि।

भूमिका—भारतीय साहित्य की महानता इस तथ्य में निहित है कि उसने मिथकों और आख्यानों के माध्यम से केवल अतीत का इतिहास नहीं लिखा, बल्कि मानव जीवन के शाश्वत नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण भी किया। इस परम्परा में रामायण का स्थान सर्वोपरि है। यह केवल भगवान राम की जीवन-कथा नहीं, बल्कि भारतीय समाज की नैतिक संरचना, सांस्कृतिक चेतना और मानवीय संबंधों का दार्शनिक आख्यान है। यही कारण है कि रामायण भारत की सीमाओं से बहुत आगे बढ़कर श्रीलंका, नेपाल, थाईलैंड, इंडोनेशिया, कंबोडिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों की सांस्कृतिक स्मृति का भी अभिन्न अंग बन चुकी है। रामकथा का वैश्विक प्रभाव केवल उसके नायक श्रीराम के कारण नहीं है, बल्कि उसके स्त्री-पात्रों की असाधारण मानवीय गहराई के कारण भी है। माता सीता और भक्त शबरी ऐसे दो चरित्र हैं, जिनकी उपस्थिति भारतीय सांस्कृतिक चेतना को करुणा, धैर्य, समानता और आध्यात्मिक गरिमा के आयाम प्रदान करती है। परंपरागत

व्याख्याओं में सीता को प्रायः त्याग और पतिव्रता धर्म की प्रतिमूर्ति तथा शबरी को केवल आदर्श भक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु समकालीन साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श इन दोनों पात्रों को कहीं अधिक व्यापक संदर्भ में देखने की अपेक्षा करता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन चरित्रों को उनके नैतिक निर्णयों, आंतरिक शक्ति, आत्मसम्मान और मानवीय दृष्टि के आधार पर पुनः समझा जाए।

माता सीता का जीवन यह प्रमाणित करता है कि धैर्य कभी भी निष्क्रियता का पर्याय नहीं होता। उनका मौन आत्मसमर्पण का नहीं, बल्कि नैतिक दृढ़ता का मौन है। वे परिस्थितियों के सामने झुकती नहीं, बल्कि अपने सत्य और मर्यादा पर अडिग रहती हैं। इसी प्रकार भक्त शबरी का चरित्र यह स्थापित करता है कि प्रेम और भक्ति सामाजिक विभाजनों से परे एक ऐसे मानवीय संसार की रचना करते हैं, जहाँ व्यक्ति का मूल्य उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके अंतःकरण की पवित्रता से निर्धारित होता है।

समकालीन हिन्दी साहित्य में इन दोनों चरित्रों का पुनर्पाठ नई संभावनाएँ खोलता है। मेरी काव्य-कृति काव्यांजलि में माता सीता केवल पौराणिक पात्र नहीं हैं; वे प्रत्येक युग की उस स्त्री का स्वर हैं, जो अन्याय के बीच भी अपनी गरिमा, आत्मविश्वास और मानवीय संवेदना को सुरक्षित रखती है। इस दृष्टि से सीता का चरित्र अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान का नैतिक प्रश्न बन जाता है। अतः यह शोध-पत्र इस मूल स्थापना को सामने रखता है कि माता सीता और भक्त शबरी भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में नारी के दो पूरक आयामों का प्रतिनिधित्व करती हैं—एक ओर आत्मसम्मान, नैतिक साहस और धैर्य की चेतना, तो दूसरी ओर प्रेम, समर्पण और समावेशी मानवतावाद की आध्यात्मिक चेतना। यही उनकी वैश्विक प्रासंगिकता है और यही इस अध्ययन का केंद्रीय प्रतिपाद्य भी है।

शोध के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य माता सीता और भक्त शबरी के चरित्रों का अध्ययन केवल धार्मिक अथवा पौराणिक दृष्टि से करना नहीं है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक दर्शन, नारी-अस्मिता और सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों के संदर्भ में उनका पुनर्पाठ प्रस्तुत करना है। इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. वाल्मीकि रामायण एवं श्रीरामचरितमानस के आधार पर माता सीता और भक्त शबरी के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

2. इन दोनों स्त्री-पात्रों में निहित करुणा, आत्मसम्मान, नैतिक साहस, भक्ति और मानवीय समानता के मूल्यों का विश्लेषण करना।

3. समकालीन नारी-विमर्श के संदर्भ में इन चरित्रों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करना।

4. काव्यांजलि में अभिव्यक्त सीता के काव्यात्मक स्वर और नारी चेतना का साहित्यिक अध्ययन करना।

5. भारत एवं श्रीलंका सहित वैश्विक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में रामकथा की प्रासंगिकता को रेखांकित करना।

शोध-पद्धति- यह शोध गुणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के प्रमुख आधार वाल्मीकि रामायण और श्रीरामचरितमानस के मूल प्रसंग हैं। इनके साथ आधुनिक साहित्यिक संदर्भ के रूप में काव्यांजलि में व्यक्त सीता संबंधी काव्य-संवेदना का भी विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में तुलनात्मक, सांस्कृतिक एवं पाठ-विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। इसका उद्देश्य किसी धार्मिक मत की स्थापना करना नहीं, बल्कि साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से माता सीता और भक्त शबरी के चरित्रों में निहित मानवीय मूल्यों, जीवन-दृष्टि और सामाजिक चेतना को समझना है।

माता सीता : भारतीय सांस्कृतिक चेतना की नैतिक आधारशिला- भारतीय साहित्य में यदि किसी स्त्री-पात्र ने समय, समाज और संस्कृति की सीमाओं को पार करते हुए सार्वकालिक सम्मान प्राप्त किया है, तो वह माता सीता हैं। वे केवल रामायण की नायिका नहीं, बल्कि भारतीय मानस में धैर्य, करुणा, आत्मसम्मान और नैतिक दृढ़ता की जीवंत प्रतीक हैं। उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जीवन के प्रत्येक निर्णय में नैतिक चेतना और कर्तव्य-बोध को सर्वोपरि रखती हैं।

वाल्मीकि रामायण में वनगमन का प्रसंग सीता के इसी व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। जब श्रीराम वन जाने का निर्णय

लेते हैं, तब सीता केवल पति का अनुसरण नहीं करतीं, बल्कि अपने स्वतंत्र विवेक से यह निर्णय लेती हैं कि जीवन का वास्तविक अर्थ केवल सुख-सुविधाओं में नहीं, बल्कि संघर्षों और उत्तरदायित्वों में समान भागीदारी निभाने में है। वाल्मीकि रामायण में सीता कहती हैं—

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ॥

अर्थात् यदि आप वन की ओर प्रस्थान करेंगे, तो मैं आपके आगे चलकर मार्ग के काँटों को अपने चरणों से हटाऊँगी। यह प्रसंग केवल दाम्पत्य निष्ठा का परिचायक नहीं है, बल्कि स्त्री की नैतिक सहभागिता और स्वतंत्र निर्णय-क्षमता का उद्घोष है। सीता यहाँ किसी आदेश का पालन नहीं कर रहीं, बल्कि जीवन के संघर्ष में अपनी समान भागीदारी की घोषणा कर रही हैं। आधुनिक नारी-विमर्श की दृष्टि से यह प्रसंग स्त्री की सक्रिय चेतना और नैतिक अधिकार का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

सीता : करुणा नहीं, नैतिक शक्ति का स्वरूप- भारतीय परंपरा में करुणा को कई बार दुर्बलता से जोड़ दिया जाता है, किंतु सीता का चरित्र इस धारणा का खंडन करता है। उनकी करुणा निष्क्रिय सहनशीलता नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति का स्वरूप है। अशोक वाटिका में वे भय, प्रलोभन और विपरीत परिस्थितियों के बीच भी अपने आत्मसम्मान और आस्था से विचलित नहीं होतीं। रावण के समक्ष उनका मौन भय का नहीं, बल्कि नैतिक प्रतिरोध का प्रतीक है। वे यह सिद्ध करती हैं कि अन्याय के विरुद्ध सबसे बड़ी शक्ति बाहरी सामर्थ्य नहीं, बल्कि आंतरिक सत्य और आत्मबल होता है। इसी संवेदना का आधुनिक काव्यात्मक स्वर काव्यांजलि में दिखाई देता है—

"हे राम! तुम्हारी सीता को, कोई रावण जब हर लाता है,
दुर्बुद्धि अपने जीवन में, विनाश स्वयं ही बुलाता है।"

इन पंक्तियों में रावण केवल लंका का राजा नहीं रह जाता, बल्कि वह प्रत्येक युग के अन्याय, अहंकार और स्त्री-अस्मिता पर होने वाले आघात का प्रतीक बन जाता है। वहीं सीता प्रत्येक युग की उस चेतना का स्वर हैं, जो अन्याय के समक्ष झुकने से इंकार करती है।

भूमिजा सीता : प्रकृति और नारी का सांस्कृतिक रूपक- सीता का भूमिजा स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकवाद का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। वे भूमि से उत्पन्न होती हैं, इसलिए उन्हें भूमिजा कहा जाता है। यह प्रसंग केवल पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की उस दृष्टि का परिचायक है, जिसमें पृथ्वी, प्रकृति और नारी—तीनों को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में सम्मान प्रदान किया गया है। सीता के भूमिजा स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए यह मौलिक काव्य-पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

"भूमि से उत्पन्न भूमिजा हुई,
राजा जनक की आत्मजा हुई।"

भक्त शबरी : भक्ति, समानता और मानवीय गरिमा की सांस्कृतिक प्रतिमा- यदि माता सीता भारतीय संस्कृति में नैतिक धैर्य और आत्मसम्मान की सर्वोच्च अभिव्यक्ति हैं, तो भक्त शबरी प्रेम, समर्पण और मानवीय समानता की सर्वोच्च प्रतीक हैं। रामकथा में शबरी का प्रसंग आकार में छोटा अवश्य है, परन्तु उसका सांस्कृतिक और दार्शनिक महत्व अत्यंत व्यापक है। वे यह सिद्ध करती हैं कि आध्यात्मिकता जन्म, जाति, वर्ग अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा की बंधक नहीं है; उसका वास्तविक आधार अंतःकरण की निर्मलता है। वाल्मीकि रामायण में शबरी मतंग ऋषि की शिष्या के रूप में चित्रित हैं। गुरु के निर्देशानुसार वे वर्षों तक श्रीराम की प्रतीक्षा करती हैं। यह प्रतीक्षा केवल किसी देवता के आगमन की प्रतीक्षा नहीं, बल्कि विश्वास, धैर्य और साधना का रूप है। प्रतीक्षा यहाँ निष्क्रिय नहीं है; वह जीवन की सक्रिय तपस्या है। शबरी अपने आश्रम की स्वच्छता बनाए रखती हैं, अतिथियों की सेवा करती हैं और प्रत्येक दिन यह विश्वास करती हैं कि प्रभु अवश्य आएँगे। इस प्रकार उनकी भक्ति कर्म, सेवा और आशा का समन्वय बन जाती है। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास इस प्रसंग को और अधिक भावपूर्ण बनाते हैं। शबरी द्वारा प्रेमपूर्वक अर्पित कंद-मूल और फल केवल भोजन नहीं हैं; वे उस प्रेम का प्रतीक हैं जिसमें अहंकार

का लेशमात्र भी स्थान नहीं है। तुलसीदास लिखते हैं—

"कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि॥"

शबरी : सामाजिक समता का सांस्कृतिक घोष- शबरी का चरित्र भारतीय समाज में समावेशी मानवता (Inclusive Humanity) का अत्यंत महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। उनका जीवन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि मनुष्य की गरिमा उसके सामाजिक परिचय से नहीं, बल्कि उसके चरित्र, प्रेम और नैतिकता से निर्धारित होती है। श्रीराम का शबरी के आश्रम में जाना और उनके प्रेम को स्वीकार करना केवल धार्मिक घटना नहीं है; यह सामाजिक समानता का सांस्कृतिक संदेश भी है। यह प्रसंग भारतीय परम्परा में उस आदर्श को स्थापित करता है जहाँ ईश्वर के समक्ष सभी मनुष्य समान हैं। इस दृष्टि से शबरी का चरित्र केवल भक्त का नहीं, बल्कि सामाजिक समावेशन और मानवीय गरिमा का भी प्रतिनिधि है। समकालीन समाज, जो जातीय, आर्थिक और सांस्कृतिक विभाजनों से जूझ रहा है, वहाँ शबरी की कथा हमें यह स्मरण कराती है कि सभ्यता की वास्तविक प्रगति तकनीकी विकास से नहीं, बल्कि मनुष्य के प्रति सम्मान और करुणा से होती है।

माता सीता और भक्त शबरी : नारी चेतना के दो पूरक प्रतिमान- माता सीता और भक्त शबरी का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय संस्कृति में नारी को किसी एक भूमिका में सीमित नहीं किया गया है। दोनों पात्र भिन्न परिस्थितियों में रहते हैं, किन्तु दोनों की आंतरिक शक्ति उन्हें कालजयी बनाती है। सीता राजमहल में जन्मी राजकुमारी हैं; शबरी वन में रहने वाली साधिका हैं। सीता का जीवन राजसत्ता और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के बीच विकसित होता है, जबकि शबरी का जीवन तप, सेवा और साधना के वातावरण में। फिर भी दोनों के जीवन का केन्द्र करुणा, सत्य और आत्मिक गरिमा है। सीता अन्याय के सामने अपने आत्मसम्मान की रक्षा करती हैं; शबरी सामाजिक उपेक्षा के बावजूद प्रेम और विश्वास को नहीं छोड़तीं। एक का संघर्ष बाह्य परिस्थितियों से है, दूसरी का संघर्ष सामाजिक संरचनाओं से। इस प्रकार दोनों स्त्री-पात्र भारतीय नारी-अस्मिता के दो पूरक आयामों को उद्घाटित करते हैं।

समकालीन नारी-विमर्श के संदर्भ में पुनर्पाठ- आधुनिक नारी-विमर्श का उद्देश्य केवल स्त्री के अधिकारों की चर्चा करना नहीं, बल्कि उसकी नैतिक स्वायत्तता, निर्णय-क्षमता और मानवीय गरिमा को समझना भी है। इस दृष्टि से सीता और शबरी दोनों का पुनर्पाठ आवश्यक है। सीता का वनगमन, अशोक वाटिका में उनका अडिग रहना तथा जीवन के अंतिम चरण में आत्मसम्मान के पक्ष में लिया गया उनका निर्णय इस बात की पुष्टि करता है कि वे स्वयं निर्णय लेने वाली चेतना हैं। दूसरी ओर, शबरी का चरित्र यह सिद्ध करता है कि आध्यात्मिक उपलब्धि किसी सामाजिक विशेषाधिकार की मोहताज नहीं होती। इस प्रकार दोनों चरित्र आधुनिक नारी-विमर्श को भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के भीतर से एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। वे यह संदेश देते हैं कि स्त्री की शक्ति केवल प्रतिरोध में नहीं, बल्कि करुणा, विवेक, आत्मसम्मान और नैतिक साहस में भी निहित है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता- आज का विश्व हिंसा, सांस्कृतिक असहिष्णुता, सामाजिक असमानता और मानसिक विखंडन जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। ऐसे समय में रामायण के ये दोनों स्त्री-पात्र वैश्विक नैतिक विमर्श के लिए अत्यंत प्रासंगिक हो जाते हैं। सीता हमें सिखाती हैं कि विपरीत परिस्थितियों में भी आत्मसम्मान और नैतिकता को नहीं छोड़ना चाहिए। शबरी हमें यह सिखाती हैं कि प्रेम और करुणा सामाजिक विभाजनों को समाप्त करने की सबसे बड़ी शक्ति हैं। इसलिए ये दोनों पात्र केवल भारतीय संस्कृति की धरोहर नहीं, बल्कि विश्व-मानवता के लिए भी प्रेरणा-स्रोत हैं।

समकालीन हिन्दी काव्य में माता सीता का पुनर्पाठ : काव्यांजलि के विशेष संदर्भ में

साहित्य की शाश्वत शक्ति इस तथ्य में निहित है कि वह अपने युग के प्रश्नों के साथ निरंतर संवाद करता है। इसी कारण प्रत्येक युग अपने सांस्कृतिक प्रतीकों और महाकाव्यीय चरित्रों को नए संदर्भों में पुनः पढ़ता और समझता है। भारतीय साहित्य में माता सीता ऐसा ही एक चरित्र हैं, जिनकी उपस्थिति समय की सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई प्रत्येक युग

में नए अर्थ ग्रहण करती है। यदि प्राचीन ग्रंथों में वे मर्यादा, धैर्य और सत्यनिष्ठा की प्रतीक हैं, तो समकालीन हिन्दी कविता में वे स्त्री-अस्मिता, आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा की सशक्त प्रतिनिधि के रूप में उभरती हैं। समकालीन काव्य का उद्देश्य केवल रामकथा का पुनर्कथन नहीं है, बल्कि उसके भीतर निहित मानवीय संवेदनाओं का पुनर्पाठ भी है। इस दृष्टि से काव्यांजलि में सीता का चरित्र केवल पौराणिक आदर्श के रूप में उपस्थित नहीं होता, बल्कि वह प्रत्येक युग की उस स्त्री की सांस्कृतिक स्मृति बनकर सामने आता है, जो जीवन के संघर्षों, सामाजिक अविश्वास और अन्याय के बीच भी अपने आत्मसम्मान को अक्षुण्ण बनाए रखती है। सीता के जन्म का प्रसंग भारतीय सांस्कृतिक चेतना में प्रकृति, मातृत्व और सृजन की एक गहन प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। काव्यांजलि में यह भाव अत्यंत सहज किन्तु प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त हुआ है–

''भूमि से उत्पन्न भूमिजा हुई,
राजा जनक की आत्मजा हुई।"

इन दो पंक्तियों में सीता के संपूर्ण व्यक्तित्व की सांस्कृतिक आधारभूमि निहित है। श्भूमिजाश केवल जन्म का संकेत नहीं है; वह पृथ्वी की सहनशीलता, धैर्य, करुणा और जीवनदायिनी शक्ति का प्रतीक है। वहीं 'आत्मजा' शब्द सीता को केवल राजा जनक की पुत्री नहीं, बल्कि ज्ञान, मर्यादा और नैतिक संस्कारों की उत्तराधिकारी के रूप में स्थापित करता है। इस प्रकार सीता का व्यक्तित्व प्रकृति और संस्कृति के अद्वितीय समन्वय का रूप ग्रहण करता है।

भक्त शबरी का चरित्र भारतीय संस्कृति में सामाजिक समानता और निष्कपट भक्ति का प्रतीक है। शबरी का जीवन यह प्रमाणित करता है कि ईश्वर के समक्ष बाहरी पहचान, सामाजिक स्थिति या जन्म का कोई महत्व नहीं होता, बल्कि व्यक्ति की श्रद्धा, प्रेम और पवित्र भावनाएँ ही उसकी वास्तविक पहचान होती हैं। भगवान राम द्वारा शबरी के प्रेम और भक्ति को स्वीकार करना भारतीय दर्शन के उस मूल विचार को स्थापित करता है, जिसमें मानवता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। सीता और शबरी दोनों के चरित्र भारतीय नारी चेतना के दो महत्वपूर्ण आयामों को प्रस्तुत करते हैं। सीता जहाँ आत्मसम्मान, धैर्य और मर्यादा की प्रतीक हैं, वहीं शबरी प्रेम, समर्पण और समानता की भावना की प्रतिनिधि हैं। दोनों पात्र यह सिद्ध करते हैं कि नारी केवल परिस्थितियों की पात्र नहीं, बल्कि अपने विचारों, मूल्यों और आंतरिक शक्ति से समाज को दिशा देने वाली सशक्त चेतना है। आधुनिक युग में भी इन दोनों चरित्रों की प्रासंगिकता बनी हुई है। वर्तमान समय में जब समाज महिला सम्मान, सामाजिक समानता और मानवीय संवेदनाओं के प्रश्नों से जूझ रहा है, तब सीता और शबरी जैसे चरित्र हमें यह प्रेरणा देते हैं कि किसी भी सभ्यता की महानता उसके नैतिक मूल्यों और मानवीय दृष्टिकोण से निर्धारित होती है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि माता सीता और भक्त शबरी भारतीय संस्कृति की ऐसी अमूल्य धरोहर हैं, जो युगों-युगों तक मानव समाज को प्रेम, करुणा, धैर्य, आत्मसम्मान और समानता का संदेश देती रहेंगी। रामकथा के ये दोनों स्त्री पात्र केवल अतीत के चरित्र नहीं हैं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए मानवीय मूल्यों के प्रेरणास्रोत हैं।

संदर्भ सूची

1. महर्षि वाल्मीकि – वाल्मीकि रामायण।
2. गोस्वामी तुलसीदास – रामचरितमानस।
3. कामिल बुल्के – रामकथा : उत्पत्ति और विकास।
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिंदी साहित्य की भूमिका।
5. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास।
6. अनीता चेची – काव्यांजलि (काव्य संग्रह), 2023

हिन्दी प्राध्यापिका, हरियाणा शिक्षा विभाग, भारत

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

गौतम बुद्ध का जीवन वृत्त : शिक्षाएं एवं बौद्ध धर्म के उद्भव का मानव जीवन पर प्रभाव

प्रो. (डॉ.) अनिता रानी

सारांश– भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ईसा पूर्व को ऐसे युग के रूप में जाना जाता है जिसमें धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में व्यापक रूप से परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस युग में वैदिक धर्म में बढ़ती कर्मकाण्ड प्रधानता, वर्ण व्यवस्था की कठोरता तथा सामाजिक असमानता ने जनसामान्य के मध्य धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं के उदभव के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में महात्मां बुद्ध ने एक ऐसे धर्म एवं दर्शन का प्रतिपादन किया, जिसका आधार मानव कल्याण, नैतिकता, करुणा तथा अहिंसा का मार्ग था। बौद्ध धर्म ने तत्कालीन भारतीय समाज को केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक स्तर पर भी गहन रूप से प्रभावित किया। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में बौद्ध धर्म का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह केवल एक धर्म नहीं बल्कि जीवन-दर्शन, नैतिक अनुशासन तथा मानवतावादी चिंतन की ऐसी परंपरा है जिसने विश्व के इतिहास को अत्यधिक गहराई से प्रभावित किया है। बौद्ध धर्म का उदय उस समय हुआ जब भारतीय समाज अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा था। इस काल में वैदिक धर्मों के अन्तर्गत यज्ञ, पशुबलि तथा ब्राह्मणवादी कर्मकाण्डों की प्रधानता बढ़ चुकी थी। इस दौरान धर्म का स्वरूप जनसामान्य की पहुँच से दूर होता जा रहा था तथा वर्ण-व्यवस्था अत्यधिक कठोर बन चुकी थी। जिसके परिणामस्वरूप समाज में व्यापक असंतोष व्याप्त हो गया था। ऐसी परिस्थितियों में सिद्धार्थ गौतम ने मानव जीवन के दुखों का समाधान खोजने का प्रयास किया। कठोर तपस्या तथा गहन चिंतन के पश्चात् उन्हें बोधगया में ज्ञान प्राप्त हुआ तथा वे बुद्ध कहलाए। महात्मां बुद्ध ने मानव जीवन की समस्याओं का समाधान आत्म अनुशासन, नैतिक आचरण तथा सम्यक् ज्ञान में खोजा। बौद्ध धर्म ने भारतीय समाज में समानता, करुणा, अहिंसा, सहिष्णुता तथा विवेकपूर्ण चिंतन को बढ़ावा दिया। इसने धार्मिक आडंबरों का विरोध करते हुए नैतिक जीवन को सर्वोच्च स्थान दिया। सम्राट अशोक के संरक्षण में बौद्ध धर्म का अभूतपूर्व विस्तार हुआ तथा यह भारत से निकलकर श्रीलंका, नेपाल, म्यांमार, चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व ऐशिया के अनेक देशों तक पहुँचा।

मुख्य बिन्दु– महात्मा बुद्ध : जीवन-वृत, ज्ञान की खोज, गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ, बौद्ध धर्म का उद्भव, बौद्ध धर्म का मानव जीवन पर प्रभाव, निष्कर्ष।

महात्मा बुद्ध : जीवन वृत- बौद्ध धर्म के संस्थापक, महात्मां बुद्ध का जन्म लगभग 563 ई. पू. बैशाख पूर्णिमा के दिन शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु के पास लुम्बिनी नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम शुद्धोधन तथा माता का नाम महामाया था। बचपन में इनका नाम सिद्धार्थ रखा गया। इनके जन्म के उपरान्त कालदेवल तथा कौण्डिन्य ने यह भविष्यवाणी कर दी थी कि यह बड़े होकर या तो एक चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे अथवा संसार को त्यागकर एक अत्यंत विख्यात ज्ञानी बनेंगे। जन्म के सातवें दिन ही इनकी माता का देहान्त हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण इनकी मौसी महाप्रजापति गौतमी के द्वारा किया गया जिससे इन्हें गौतम के नाम से जाना गया। एक राजघराने में जन्म होने के कारण बचपन में ही

इन्हें विभिन्न प्रकार की शिल्प तथा कलाओं की शिक्षा प्राप्त हुई। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी ने उनके पिता राजा शुद्धोधन को अत्यंत चिन्तित कर दिया। उन्होंने सिद्धार्थ को अत्यंत भोग-विलास में रखा ताकि उन्हें जीवन के किसी भी दुख का अनुभव न हो। उन्होंने सिद्धार्थ को सांसारिक बन्धनों में बाँधे रखने के उद्देश्य से सोलह वर्ष की अवस्था में ही यशोधरा नामक कन्या से उनका विवाह कर दिया। कुछ ही वर्षो के पश्चात् उनकी पत्नी यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम राहुल पड़ा।

विद्वानों द्वारा माना जाता है विभिन्न भोग-विलासों के होते हुए भी सिद्धार्थ का मन सांसारिक मोह-माया तथा बन्धनों में नहीं लगा। उनके पिता शुद्धोधन द्वारा किये गए विभिन्न प्रयासों के बावजूद एक दिन उन्होंने चार ऐसी घटनाओं को देखा जिसने सिद्धार्थ को मानव जीवन के दुख व कष्टों से परिचित करा दिया। परवर्ती साहित्य में चार कष्ट संकलित घटनाओं का उल्लेख मिलता है - (जर्जर शरीर लिए एक वृद्ध व्यक्ति, एक पीड़ित रोगी व्यक्ति, मृतक व्यक्ति तथा एक सन्यासी व्यक्ति)। मानव जीवन के इन सभी कष्टों को देखकर सिद्धार्थ का मन अत्यधिक व्यथित हो गया। उन्होंने मानव जीवन के दुखों के निवारण हेतु मार्ग ढूँढने का निर्णय लिया तथा इसके लिए उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया एवं वे सत्य की खोज में निकल पड़े। उन्होंने केवल 29 वर्ष की आयु में सांसारिक दुख के उन्मूलन के लिए ज्ञान की खोज में अपना घर-बार त्याग दिया। बौद्ध साहित्य के अनुसार गौतम बुद्ध के जीवन की यह घटना महाभिनिष्क्रमण कहलाती है। गौतम बुद्ध के गृह त्याग के विषय में परवर्ती आचार्यों के दो मत हैं। एक मत के अनुसार उन्होंने बिना किसी को बताए अचानक घर को त्याग दिया परन्तु दूसरे मत के अनुसार राजा शुद्धोधन तथा गौतमी को पूर्व से ही ज्ञात हो गया था कि गौतम बुद्ध सब कुछ त्यागने वाले हैं। गौतम बुद्ध के गृह-त्याग के कारणों के संबंध में विद्वानों में एक मत नहीं हैं।

ज्ञान की खोज– दुनियाँ में व्याप्त दुखों को देखने के पश्चात् गौतम बुद्ध ने अपना घर-परिवार त्याग दिया तथा सन्यास धारण कर लिया। शांति, सत्य तथा ज्ञान की खोज में भ्रमण करते हुए वे वैशाली में श्आलार कालामश नामक तपस्वी के आश्रम में जा पहुँचे। इनके आश्रम में गौतम बुद्ध ने विभिन्न कठिन योगाभ्यास सीखे परन्तु वे उनसे पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं थे एवं वे सच्चे ज्ञान की खोज में वैशाली छोड़कर राजगृह की ओर चले गये। माना जाता है कि राजगृह में गौतम बुद्ध का मगध नरेश बिंबिसार से साक्षात्कार हुआ। गौतम बुद्ध राजगृह के एक ज्ञानी के आश्रम में ठहरे, जिनका नाम रुद्रक रामपुत्र था। यहाँ गौतम बुद्ध ने बहुत कम समय में ही 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' की भूमिका प्राप्त कर ली परन्तु यह सिद्धि भी गौतम बुद्ध को सन्तुष्ट नहीं कर सकी। गौतम बुद्ध से प्रभावित होकर रुद्रक के पाँच ब्राह्मण-भिक्षु उनके साथ हो गये। यहाँ के पश्चात् गौतम बुद्ध मगध के एक जनपद उरुवेला पहुँचे, जहाँ उन्होंने उरुविल्व के निकट, सेनानी ग्राम में, निरंजना नदी के तट पर, वट वृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या की। परन्तु अत्यन्त कठिन तपस्या करने के पश्चात् भी उन्हें वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, जिसकी वे इच्छा रखते थे। बल्कि कठिन तपस्या करने के कारण उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। इसके पश्चात् गौतम बुद्ध ने अनुभव किया कि केवल तपस्या मात्र से ही उन्हें सम्यक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः उन्होंने अनाहार का त्याग कर दिया तथा अपनी साधना के मार्ग को बदलने का निश्चय किया। उनके पाँचों ब्राह्मण साथियों ने भी उन्हें साधन से भ्रष्ट समझकर उनका साथ छोड़ दिया।

गौतम बुद्ध अब फल्गु नदी को पार कर आगे बढ़े तथा उन्होंने आगे जाकर बोधिवृक्ष के नीचे आसन लगाया तथा यह निश्चय किया कि जब तक उन्हें ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, वे आसन नहीं छोड़ेंगे। सात दिन तक गौतम बुद्ध कठिन तपस्या में लीन रहे तथा आठवें दिन बैशाख पूर्णिमा के दिन उन्हें ज्ञान अथवा बोधि की प्राप्ति हुई। ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् गौतम बुद्ध अब पूर्ण ज्ञानी अथवा प्रबुद्ध हो गये। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध ने संसार के हितों के लिए धर्म का प्रचार करने का निर्णय लिया। सबसे पहले वे सारनाथ गये तथा वहाँ अपने पुराने पाँचों ब्राह्मण भिक्षुओं को सत्य-धर्म का उपदेश दिया। सारनाथ में ही उन्होंने एक संघ की स्थापना की। काशी के पाँचों ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ वर्ग, बुद्ध संघ के सदस्य बने। जिन्होंने गौतम बुद्ध के कहने पर विभिन्न दिशाओं में धर्म का प्रचार किया।

गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ– गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ मुख्य रूप से जीवन के दुखों से मुक्ति और शांति प्राप्त करने पर

केन्द्रित हैं। उन्होंने कर्म, अहिंसा तथा मध्यम मार्ग पर ज़ोर दिया है। जिसे उनके चार आर्य सत्यों तथा अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से समझा जा सकता है। गौतम बुद्ध ने किसी ग्रन्थ को नहीं लिखा तथा न ही अपना उपदेश अपने शिष्यों को किसी विशिष्ट भाषा में याद रखने के लिए कहा। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों हेतु प्रचलित मागधी भाषा का उपयोग किया तथा अन्य भिक्षुओं को यह अनुमति प्रदान की वे अपनी भाषा में उपदेशों का स्मरण रखें। बुद्ध की शिक्षाओं का ज्ञान हमें पालि त्रिपिटक से ही प्राप्त होता है। पालि त्रिपिटक बौद्ध धर्म के सबसे पुराने तथा पवित्र ग्रंथों का संग्रह है। सारनाथ में बुद्ध द्वारा दुःख सत्य, दुःख-समुदय, दुःख निरोध तथा दुःख-निरोध का मार्ग, इन्हीं चार आर्य सत्यों का धर्मचक्र प्रवर्तित किया गया था। इन्हीं चार आर्य सत्यों को समस्त सिद्धान्तों का आधार माना गया है।

1) दुःख सत्य– गौतम बुद्ध के अनुसार मानव का जीवन दुःखों से परिपूर्ण है। संसार की सभी वस्तुएँ दुःखमय हैं। संसार में जन्म, व्याधि, मरण, वियोग, मिलन सभी मानव के दुःखों का कारण हैं।

2) दुःख समुदय– गौतम बुद्ध के अनुसार संसार में प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। इसीलिए दुःखों का भी कोई न कोई कारण होता ही है। उनके अनुसार मनुष्य के दुखों का मूल कारण उसकी अज्ञानता तथा सांसारिक इच्छाएं या तृष्णा है।

3) दुःख-निरोध– गौतम बुद्ध के अनुसार तृतीय आर्य सत्य है कि मनुष्य के दुःखों का निवारण सम्भव है। उनके अनुसार प्रत्येक दुःख का कोई न कोई कारण अवश्य होता है यदि उस कारण को समाप्त कर दिया जाये तो दुःख भी समाप्त हो जायेगा। उनके अनुसार दुखों का मूल कारण अविद्या है इसलिए विद्या के माध्यम से अविद्या का निवारण करने पर दुखों का निवारण भी स्वतः हो जाता है। इसे ही जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है तथा इसे ही निर्वाण कहा गया है। इच्छाओं का त्याग करके दुख से मुक्ति सम्भव है।

4) दुख निरोध का मार्ग– गौतम बुद्ध के अनुसार चतुर्थ आर्य सत्य है, जिन कारणों से दुख की उत्पत्ति होती है उन्हें नष्ट करने का मार्ग। दुखों के कारणों को नष्ट करने का उपाय ही निर्वाण का मार्ग है। गौतम बुद्ध ने दुख निरोध के आठ साधन बताए हैं जिनको अष्टांगिक मार्ग कहा गया है। बुद्ध ने अतिवादी जीवन (भोग एवं कठोर तप) को छोड़कर मध्यम मार्ग अपनाने के लिए कहा है जिनके लिए उन्होंने आठ मार्ग बताए हैं–

1) सम्यक दृष्टि – सच तथा झूठ को सही तरीके से परखना ही सम्यक दृष्टि है।

2) सम्यक संकल्प – हिंसा तथा वासना से मुक्त रहने का दृढ़ निश्चय ही सम्यक संकल्प है।

3) सम्यक वाक – सदा सत्य तथा मधुर वाणी का प्रयोग करना ही सम्यक वाक है।

4) सम्यक कर्म – अहिंसा तथा भलाई से जुड़े अच्छे कार्य करना ही सम्यक कर्म है।

5) सम्यक आजीविका – ईमानदारी तथा नैतिक तरीकों से जीवनयापन करना ही सम्यक आजीविका है।

6) सम्यक प्रयत्न – बुरे विचारों को दूर रखकर अच्छे विचारों को अपनाना ही सम्यक प्रयत्न है।

7) सम्यक स्मृति – मन तथा शरीर को लेकर सदैव जागरूक रहना ही सम्यक स्मृति है।

8) सम्यक समाधि – मन को एकाग्र तथा शांत करना ही सम्यक समाधि है।

गौतम बुद्ध ने नैतिक जीवन जीने के लिए पाँच मूल उपदेश (पंचशील) दिए हैं–

1) अहिंसा – किसी जीव को नुकसान न पहुँचाना

2) सत्य – सदैव सच बोलना

3) अस्तेय – चोरी न करना

4) अपरिग्रह – संपत्ति या धन का अनावश्यक संचय न करना

5) व्यभिचार से दूर रहना

महात्मां बुद्ध कर्म को सबसे महत्वपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार, व्यक्ति अपने कर्मों का स्वयं निर्माता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा तथा बुरे कर्मों का फल बुरा होता है। वह भाग्य अथवा ईश्वर के स्थान पर व्यक्ति के अपने आचरण को सर्वोच्च

स्थान देते थे। बौद्ध धर्म को मूलतः निरीश्वरवादी माना गया है। गौतम बुद्ध के अनुसार सम्पूर्ण विश्व प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त बताता है कि संसार में कोई भी घटना बिना किसी कारण के नहीं होती है। उनके अनुसार जीवन के संचालन हेतु ईश्वर नामक किसी सत्ता की आवश्यकता नहीं है। यह विश्व उत्पत्ति तथा विनाश के नियमों में बंधा हुआ है, इसीलिए उन्होंने अपने भिक्षुओं को श्अप्पदीपो भवश (अपना दीपक स्वयं बनो) का उपदेश दिया एवं स्वयं प्रकाश का उपदेश दिया। गौतम बुद्ध के अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु अस्थाई है। यहाँ प्रत्येक वस्तु या प्राणी, जड़ अथवा चेतन, एक निश्चित समय के लिए पृथ्वी पर है। यहाँ प्रतिपल प्रत्येक पदार्थ में परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही है। यहाँ प्रत्येक पल में एक वस्तु का निर्माण हो रहा है तथा एक वस्तु नष्ट हो रही है। इसे ही बुद्ध का अनित्यवाद अथवा क्षणिकवाद कहा गया है।

बौद्ध धर्म का उद्‍भव– बौद्ध धर्म का उदय प्राचीन भारत में छठी शताब्दी ईसा पूर्व हुआ था। बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध थे, जिनका वास्तविक नाम सिद्धार्थ था। यह वह समय था जब लोग पुरानी सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्थाओं से हटकर शांति और सत्य की खोज कर रहे थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान भारत में कई सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक बदलाव हो रहे थे। इस काल में वैदिक धर्म अत्यधिक जटिल हो चुका था। बौद्ध धर्म के उद्‍भव के विभिन्न ऐतिहासिक व सामाजिक कारण थे। इस काल में ब्राह्मणवाद का प्रभुत्व हो चुका था। यज्ञ पशु बलि तथा महंगे अनुष्ठान आम हो गए थे जिससे सामान्य जनता परेशान थी। इस दौरान समाज चार वर्णों में बंटा हुआ था, जहाँ ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का दबदबा था, जबकि निचली जातियों के साथ भेदभाव किया जाता था। ऐसे समय में बौद्ध धर्म ने समाज में धार्मिक समानता का संदेश दिया। गौतम बुद्ध ने जाति प्रथा का खंडन किया तथा सभी मनुष्यों की समानता पर बल दिया, जिसके फलस्वरूप हिन्दू समाज में भी जातिवाद के विरोध में विचार विकसित हुए। उस समय अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में रचे जाते थे परन्तु बौद्ध धर्म ने लोकभाषा पाली को धार्मिक ग्रन्थों के लिए चुना। क्योंकि सामान्य जनता के लिए संस्कृत भाषा को समझना कठिन होता था अतः लोग ऐसे मार्ग की तलाश में थे जो उनकी अपनी सरल भाषा में हो।

बौद्ध धर्म का मानव जीवन पर प्रभाव– बौद्ध शिक्षाएँ मानव जीवन पर अत्यधिक गहरा प्रभाव डालती हैं, जो मुख्य रूप से अहिंसा, नैतिकता, और मानसिक शांति पर आधारित हैं। बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ व्यक्ति को अंधविश्वास से दूर रखकर ज्ञान तथा करुणा का मार्ग दिखाती हैं। यह मनुष्य को वर्तमान क्षण में जीना तथा अपने विचारों पर नियंत्रण रखना सिखाती हैं। बौद्ध शिक्षाओं में मानव को क्रोध, लोभ तथा ईर्ष्या जैसी भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए बताया जाता है। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं ने मानव को दुख की समाप्ति का मार्ग बताया तथा मानव को नैतिकता, ध्यान तथा ज्ञान पर ज़ोर देना सिखाया। बौद्ध धर्म ने उच्च जातियों के अधिकार तथा जाति की कठोरता को समाप्त करने का प्रयास किया जिसके प्रभाव से मानव जीवन में समानता तथा करुणा को बढ़ावा मिला। बौद्ध धर्म के प्रभाव स्वरूप माध्यमिका तथा योगाचार जैसी समृद्ध दार्शनिक परंपराओं का विकास एवं विस्तार हुआ। इसके द्वारा दी गई अहिंसावादी विचारधारा ने बौद्ध धर्म के साथ-साथ हिन्दू धर्म, जैन धर्म तथा बीसवीं शताब्दी में गाँधीवादी दर्शन को भी गहराई से प्रभावित किया। बौद्ध धर्म केवल धार्मिक विश्वासों का एक सम्प्रदाय नहीं था, बल्कि एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन था। बौद्ध धर्म ने तत्कालीन समाज, राजनीति, शिक्षा तथा संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। बुद्ध द्वारा दी गई शिक्षाएँ मानव को अज्ञानता के अन्धकार से दूर करके ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाती हैं।

निष्कर्ष

गौतम बुद्ध का जीवन, उनकी शिक्षाएँ तथा बौद्ध धर्म के उदय का मानव जीवन पर प्रभाव भारतीय तथा वैश्विक इतिहास की एक युगांतरकारी घटना है। गौतम बुद्ध का जीवन तथा उनकी शिक्षाएँ किसी संकीर्ण धर्म की सीमाओं में बँधी नहीं हैं, बल्कि इसमें मानवता के धर्म को सर्वोपरि माना गया है। उनके द्वारा दिखाए गए 'मध्यम मार्ग' तथा 'करुणा' के सिद्धांत आज के हिंसा, तनाव और लालच से भरे आधुनिक मानव जीवन को शांति और संतुलन देने का एक मार्ग हैं।

सन्दर्भ सूची

1. वर्मा, डॉ. विश्वनाथ, गौतम बुद्ध का जीवन और उनकी शिक्षाएँ, https://hcpgcollege.edu.in
2. Khatun, Asanur, The Rise and Teaching of Buddhism and Its Impact on Indian Society, International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT) ,https://www. ijcrt.org
3. बर्ज़िन, डॉ. अलेक्ज़ेंडर, एक सम्पूर्ण बौद्ध जीवन : अष्टांगिक मार्ग, https://studybuddhism.com
4. सिंह, मोहन, (2025) बौद्ध धर्म में शिक्षा पद्धति : एक दार्शनिक और ऐतिहासिक अध्ययन, International Journal of Leading Research Publication, Volume 6, Issue 7, https://www.ijlrp.com
5. सराओ, एस. के. टी., (2005) प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म : उद्भव, स्वरूप एवं पतन, https://www.du.ac.in
6. चौधरी, मनोज (2017) बौद्ध दर्शन का उद्भव, विकास और साहित्यिक विकास, International Journal of Applied Research, Volume 3(6),
   https://www. allresearchjournal.com
7. सिंह, प्रताप (2025) बौद्ध दर्शन का हिंदू धर्म पर प्रभावरू एक अध्ययन, International Educational Scientific Research Journal, Volume: 11, Issue:3, https://www.iesrj.com

B-Heritage Apartment
Fatehabad Road
Agra (282001)
मो- 8191022777

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

कबीर की रचनाओं में बौद्ध धर्म का प्रभाव

डॉ. अर्चना कुमारी

सारांश- कबीरदास हिन्दी के महान कवियों में से एक है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी जनता में लोगों की जुबान पर कबीर की साखीयां कंठस्थ है। इसका मूल कारण यह है कि उनके काव्य में अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति का खरापन है। वे ऐसे संत कवि थे जिन्होंने समाज में व्याप्त कर्मकाण्डों, आडंबरों और रुढ़ियों का तीव्र विरोध किया। कबीर की वाणी में मानवता, समानता, सत्य, करुणा और आत्मज्ञान का संदेश मिलता है। उनकी रचनाओं में अनेक धार्मिक एवं दार्शनिक परंपराओं का प्रभाव दिखाई देता है, जिनमें बौद्ध धर्म का प्रभाव प्रमुख है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध ने दुःख, उसके कारण और उसके उपाय का मार्ग बताया। उन्होंने अहिंसा, करुणा, समता, आत्मानुशासन तथा अंधविश्वास और कर्मकाण्ड से मुक्ति पर बल दिया। वास्तव में कबीर दास बौद्ध धर्म और विचारों के वाहक हैं। उनके जीवन, व्यक्तित्व, कार्य और कृतित्व में बुद्ध वाणी के संदेश स्पष्ट रूप से ज्ञातव्य हो रहे हैं। कबीर के दर्शन में ईश्वर और भक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है, जो बौद्ध दर्शन से भिन्न है। फिर भी उनके सामाजिक और नैतिक विचारों में बौद्ध चेतना की गहरी छाप दिखाई देती है।

कूट शब्द : कबीर, बौद्धधर्म, अहिंसा, करुणा. कर्मकाण्ड, मुक्ति, मानवता, आत्मज्ञान, अंधविश्वास।

प्रस्तावना : महान संत कवि एवं समाज सुधारक कबीरदास पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सहज धर्म की प्रतिष्ठा का जो प्रयत्न सिद्धों द्वारा किया गया उसे तीव्र गति से अग्रसर करने का कार्य कबीर के हाथों सम्पन्न हुआ। इन्होंने सन्तमत में बौद्धधर्म का सुन्दर समन्वय कर लोक कल्याण के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

आलेख : साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति तथा गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अतः उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का बहुत महत्व है। हिन्दी साहित्य अत्यंत विशाल तथा भारतीय दर्शन, सांस्कृतिक, धार्मिक पृष्टभूमि तथा राजनीतिक स्थिति आदि सभी का प्रतिबिंब है। आठवीं शताब्दी से पंद्रहव्वीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति में हिन्दू सत्ता के धीरे-धीरे अंत होने तथा इस्लाम सत्ता के उभरने की करुण कहानी के अंतर्गत है। आदिकाल के प्रभावित जीवन में कहीं भी संतुलन नहीं था। जनता पर विदेशी आक्रांताओं के अत्याचारों के साथ-साथ युद्ध कामी देशी राजाओं के अत्याचारों का प्रभाव भी बढ़ता चला गया। वे परस्पर लड़ने लगे, जिससे प्रजा पीड़ित होने लगी। निरंतर होनेवाले आक्रमणों के कारण धन-वैभव रहते हुए भी जनता के मन में अशांति थी। नारी का गौरव क्षीण हो चुका था। उनमें पर्दा प्रथा का प्रचलन हो गया था। महिलायें मुख्यतः पुरुष के लिए उपभोग की वस्तु हो गई थी। सती-प्रथा जोरों पर थी। अशिक्षित जनता के सामने अनेक धार्मिक मार्ग बनते जा रहे थे, परन्तु मार्ग दिखलाने वाले लोग ईमानदार नहीं थे। इस प्रकार नास्तिकता, आस्तिकता का आवरण ओढ़कर जनता में भ्रांत वातावरण बना रहे थे। हिन्दू समाज में जाति प्रथा कठोर रूप धारण कर चुकी थी, तो दूसरी ओर इस्लामी समाज में भी कट्टरता और औपचारिकता का प्रभाव बढ़ रहा था। दो संस्कृतियों के संगम से हर क्षेत्र में परिवर्तन एक सहज परिणाम था। इसी पृष्ठभूमि में कबीरदास ने दोनों समुदायों की रुढ़ियों का विरोध किया। सहज धर्म की प्रतिष्ठा का जो प्रयत्न सिद्धों द्वारा आरंभ किया गया, उसे तीव्र गति से अग्रसर करने का कार्य कबीर के हाथों से सम्पन्न हुआ।

हिन्दी साहित्य में रचनात्मकता के आधार पर बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव के उपरान्त हिन्दी साहित्य में जो कुछ लिखा गया उसमें किसी न किसी रूप में महात्मा बुद्ध और उनके उपदेशों का प्रभाव परिलक्षित होता है। बुद्ध के आगमन के बाद बुद्ध विचारधारा ने समाज में नयी चेतना का प्रारंभ किया। करुणाशील महामानव बुद्ध की नवीन सोच से भारत को नयी प्रेरणा मिली। मानव के उत्थान हेतु महात्मा बुद्ध अन्तकाल तक कार्य करते रहे। बौद्ध धर्म में बुद्ध ने नाना प्रकार के काम करने वाले समाजों को महत्व दिया। इसी विचारधारा का प्रभाव संत कवियों पर पड़ा। महान संत कवि कबीरदास की रचनाओं पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार महाकारुणिक बुद्ध ने वैदिक परंपराओं, गलत धारणाओं, परंपराओं का विरोध किया था, उसी प्रकार कबीर ने अपने काल में हिन्दू व मुस्लिम दोनों ही संस्कृतियों की असंगत मान्यताओं, अंधविश्वासों और पाखंड का प्रबल विरोध किया था। उनके अनुसार –

''माला फेरत जुग गया गया न मन का फेरा।
कर का मनका डारि के मन का मनका फेर॥"

भारतीय समाज में जन्म के आधार पर बड़ा था छोटा समझ्झा जाता है। जो बच्चा ब्राह्मण कुल में जन्म लिया तो वह महान हो जाता है लेकिन कोई बच्चा यदि निम्न कुल में जन्म लिया तो वह नीच हो जाता है। भगवान बुद्ध कहते हैं कि कोई भी उत्पत्ति से ब्राह्मण्ण नहीं बन जाता, उसके लिए अच्छा कर्म करना पड़ध्ता है। जन्म से किसी की जाति-पाँति का तय नहीं किया जा सकता। कर्म के अनुसार किसी व्यक्ति का वर्गीकरण होता है। अतः किसी के वर्गीकरण का आधार उनकी क्रिया है। उदाहरणस्वरूप –

'कम्मं सच्चे विभाजित यदिनं हीनप्पनीतता'

कबीरदास की सारखी में भी वही अर्थ अंतर्निहित है जो भगवान बुद्ध की गाथा में है। कबीरदास कहते हैं कि ऊँचे कुल में जन्म लेने से क्या लाभ, यदि कर्म ऊँचा न हो। जैसे- कलश तो स्वर्ण का हो, किंतु भीतर मदिरा भरी हो तो सज्जनों द्वारा वह निंदनीय ही होता है।

''ऊंचे कुल में जनमिया करनी ऊंच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा साधु निन्दत सोय॥"

महात्मा बुद्ध हिंसा के विरोधी थे। उनके अनुसार सभी जीव जीवन से प्रेम करते हैं और मृत्यु से डरते हैं। उन्होंने प्राणी हिंसा से विरत रहने की शिक्षा दी है। मन-वाचा-काया से होने वाली हिंसा से दूर रहने की बात की है। उन्होंने धम्मपद में उपदेश दिया है कि -

''सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥"

महाकवि कबीरदास ने भी जीव हिंसा का विरोध किया है। वे कहते हैं कि जब बकरी केवल घास-पात खाती है और इस पाप के कारण उसकी खाल खींची जाती है, किन्तु जो व्यक्ति बकरी को खाते हैं, उनकी क्या दशा होगीरू

''बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात है तिनके कौन हवाल॥"

महात्मा बुद्ध ने दुखी जीवन के लिए व्यभिचार को जिम्मेदार माना है। उन्होंने कहा कि स्त्री-पुरुष दोनों को व्यभिचार से विरत रहना चाहिए। वे कहते हैं कि

''हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे।
मिच्छादिद्धि न सेवेय्य, न सिया लोक वड्ढनो॥"

अर्थात् (पाँच कामगुणों वाले) निकृष्ट धर्म का सेवन न करे, न प्रमाद में लिप्त हो। मिथ्यादृघ्ष्टि को न अपनाये, और अपने आवागमन को बढ़ाने वाला न बने। इसी प्रकार कबीरदास ने भी व्यभिचार से दूर रहने का संदेश दिया है। उन्होंने कंचन और कामिनी को साधना के मार्ग में बाधक बताया है। कबीरदास नारी के माध्यम से अतिशय वासना की निन्दा करते हैं।

वे कहते हैं–

''नारी निरखि न देखिए, निरखि न कीजै गौर।
देखते ही ते विष चढ़े, मन आवै कुछ और॥''

अर्थात् पुरुषों को चाहिए कि वे कामवासना के वशीभूत होकर स्त्रियों को न देखें। यदि कदाचित उन पर दृष्टि पड़ भी जाये तो कामुक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से विषय वासना का जहर और बढ़घ्ता है और मन में कामुक विचार ही उत्पन्न होते हैं। महात्मा बुद्ध ने मिथ्या भाषण से विरत रहने का उपदेश दिया है। उनका मानना है कि हमेशा सच बोले, क्रोध न करे, मांगने पर थोड़ा रहते भी दे। इन तीन कारणों से कोई व्यक्ति देवताओं अर्थात् देवलोक चला जाता है–

''सच्चं भणे न कुज्झेय्य, दज्जा अप्पम्पियाचितो।
एतेहि तीहि ठानेहि, गच्छे देवान सन्तिके॥''

महात्मा बुद्ध की भांति ही कबीरदास ने भी सत्य का समर्थन किया है। उनके अनुसार सच्चाई और ईमानदारी के मार्ग पर चलना सबसे बड़ी तपस्या है। झूठ बोलना सबसे बड़ा अधर्म है। जिस इंसान के मन में सच्चाई होती है, उसके दिल में स्वयं भगवान निवास करते है–

''साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है ताके हिरदय आप॥''

कबीरदास जी कहते हैं कि सत्य तो बोलना चाहिए मगर प्रिय बोलना चाहिए। अपना अहंकार छोड़कर ऐसी वाणी बोलनी चाहिए कि जिससे बोलने वाला स्वयं शीतलता और शांति का अनुभव करे और सुननेवालों को भी सुख मिले।

''ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय॥''

महात्मा बुद्ध भी कहते हैं कि जो किसी का क्रोध न बढ़ाके प्रिय क्वन बोलता है वह ब्राह्मण है। किसी के चित को पीड़ा न देते हुए हमेशा जो प्रिय वचन बोले वह दूसरों को अच्छा भी लगता है, उनका कल्याण भी हमेशा होता है। भगवान बुद्ध के शब्दों में ऐसा आदमी अरहत है। वह किसी को हानी नहीं पहुंचाता है। हमेशा सच बोलता है। उनके वचनों से सभी का कल्याण होता है। अतः उसे ब्राह्मण मानना निरवद्य है–

''विजापतिं गिरं सच्चं उदिरये।
याय नाभिसाजे कंचि, तमहं ब्रमि ब्राह्मणं॥''

कबीरदास के काव्य में भावात्मक, साधनात्मक दोनों कोटियों का रहस्यवाद मिलता है। वस्तुतः उनकी रहस्यात्मकता अत्यंत व्यापक है। उनका प्रियतम घट-घट वासी हैं। लोग उसे इधर-उधर खोजते हुए भटक रहे हैं जबकि वह कस्तूरी के समान मृग की अपनी नाभि में ही उपलब्ध है–

''कस्तूरी कुण्डलि बसै मृग ढूंढ़ें बन माहि।
ऐसेहि घट-घट राम हैं दुनिया जाने नाहि॥''

इसी प्रकार भगवान बुद्ध का दर्शन है कि अपने का सहारा अपना ही होता है। दूसरों से क्या लाभ? अतः अपने को, अपने चित्त को दमन करके निवार्ण तक पहुंचना है। उनका मूल धर्म साधन चित के दमन से ज्ञान को बढ़ाना है। ज्ञान मूल धर्म साधना कबीर तथा बुद्ध का मुख्य दर्शन था। दोनों कहते हैं कि आपके अंदर ही भगवान है, अर्थात् अपना ज्ञान बढ़ाने से, चित्त की एकाग्रता से भगवान को देख सकते हैं–

''आत्ताहि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परो सिया।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥''

महात्मा बुद्ध संसार को नश्वर मानता है। उनके अनुसार यह जीवन ओस की बूंद के समान अत्यंत क्षणभंगुर और

नाशवान है। उन्होंने कहा कि जो भी उत्पन्न हुआ है, उसका विनाश निश्चित है। शरीर, मन और भावनाएँ हर पल बदलती रहती है। इसी प्रकार कबीरदास भी जीवन की क्षणभंगुरता का स्मरण कराते हुए कहते हैं–

''पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात॥"

ऐसे असंख्य उदाहरण दर्शाते हैं कि क्रांतिकारी कबीरदास के जीवन और चिन्तन पर बौद्ध धर्म का जबरदस्त प्रभाव दिखाई पड़ता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीरदास बौद्ध विचारधारा के निर्वाहक समन्यवादी और सारग्रही थे। उन्होंने बौद्ध धर्म से प्रभावित मूलतत्वों और आदर्शों को ग्रहण किया था। कबीरदास ने बौद्ध धर्म की समता, करुणा, विवेक आत्मज्ञान आदि को निर्गुण भावना से जोड़कर एक ऐसी जीवन- दृष्टि प्रस्तुत की, जो आज भी सामाजिक सद्भाव और मानव मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं। महात्मा बुध और कबीरदास ने अपने विचारों से समाज का कल्याण किया। दोनों ने सत्य रूप को ही ज्ञान रूप में स्वीकार किया है। कबीरदास जी बुद्ध क्रांति के वाहक बने और समतावादी समाज निर्माण में वे मील के पत्थर साबित हुए। कबीर के धम्म प्रेरित विचारों ने भारतीय साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया है और सामाजिक क्रांति के इतिहास में वे अप्रतिम साबित हुए।

संदर्भ सूची

1. गुप्त, बी., एवं मिश्रा, एम. के. (सं0). (2022). वैश्विक हिन्दी सन्दर्भ और बौद्ध साहित्य. वान्या पब्लिकेशंस, कानपुर।
2. शर्मा, आर. (संपादक). (2018). कबीर ग्रंथावली (सटीक). लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. गुप्त, एच. पी. (संपादक). (2015). कबीर ग्रंथावली (सटीक). जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. देव, एन. (2009). बौद्ध धर्म दर्शन. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
5. तिवारी, ए. (2021). प्रतियोगिता साहित्य सीरीज - (यू.जी.सी. नेट/श्रत्थ). साहित्य भवन, आगरा।
6. सक्सेना, डी. पी. (2017). हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि. अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
7. पाण्डेय, एम. (2019). मध्यकालीन नवजागरण काल और संत साहित्य. समता प्रकाशन, कानपुर-देहात।
8. बौद्ध, एच. (2022). कबीर वाणी पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव. विद्यारू ए जर्नल ऑफ गुजरात यूनिवर्सिटी, 1(1), पृष्ठ 15–19. ीजजचरू//अपकलंरवनतदंस.वतह
9. कौसल्यायन, बी. ए., एवं धर्मरक्षित, बी. (अनुकृ.). (1959). धम्मपदरू हिन्दी अनुवाद. मास्टर खेलाड़ीलाल एंड संस.
10. OpenAI. (2024). कबीर की रचनाओं में बौद्ध धर्म का प्रभाव https://chatgpt.com/share/6a762482-2280-83e8-89a1-8e79bd28dcdc

डॉ. अर्चना कुमारी
सहायक प्राध्यापक (विभागाध्यक्ष-हिन्दी)
एच0 पी0 एस0 महाविद्यालय मधेपुर (मधुबनी) (847408)
मो– 8789374221

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत के संताल एवं श्रीलंका के वैद्दा आदिवासियों की संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. धनु मुर्मू

सारांश- दक्षिण एशियाई क्षेत्र के मूल निवासियों (आदिवासियों) को इस इलाके की सबसे पुरानी सामाजिक और पारिस्थितिक विरासत माना जाता है। भारत का संताल समुदाय और श्रीलंका का वैद्दा (वानियालाएटो) समुदाय ऐसे दो समुदाय हैं जिन्होंने अपने-अपने भौगोलिक इलाकों में अपनी अलग संस्कृति की पहचान बनाए रखी है। ये दोनों ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार (मुंडा) से जुड़े हैं। यह शोधपत्र संताल और वैद्दा समुदायों के सांस्कृतिक तौर-तरीकों का विस्तार से वर्णन और तुलना करता है, जिसमें सामाजिक संरचना, धार्मिक और अनुष्ठानिक मान्यताओं, पारंपरिक आजीविका, भाषा और कला पर ध्यान दिया गया है। अध्ययन से पता चलता है कि भौगोलिक दूरी के बावजूद, ये दोनों समुदाय पूर्वजों की पूजा, प्रकृति से जुड़ी आध्यात्मिकता और सामुदायिक मूल्यों के मामले में एक जैसे हैं। इसके अलावा, यह शोधपत्र आधुनिकता, विस्थापन और हावी भाषाओं के असर के कारण दोनों समुदायों के सामने अपनी संस्कृति को बचाए रखने की चुनौती की भी पड़ताल करता है।

मुख्य शब्द- संताल आदिवासी, वैद्दा (वन्नियालाएत्तो), सांस्कृतिक तुलना, पूर्वज-पूजा, प्रकृतिवाद, भाषा एवं पहचान।

प्रस्तावना- दक्षिण-एशिया का सांस्कृतिक इतिहास मात्र शास्त्रीय या महानगरीय परंपराओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसकी वास्तविक जड़ें उन मूलनिवासी समुदायों की जीवन-शैली में समाहित हैं जिन्हें भारत में 'आदिवासी' तथा श्रीलंका में 'वन्नियालाएत्तो' (वनों के निवासी) कहा जाता है। भारत के संताल समुदाय मुख्य रूप से झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा तथा बिहार में निवास करते हैं और जनसंख्या की दृष्टि से भारत के सबसे बड़े आदिवासी समूहों में से एक है (मिंज एवं हाँसदा, 2019)। दूसरी ओर, वैद्दा समुदाय श्रीलंका का प्राचीनतम मूलनिवासी समुदाय है, जिनका उल्लेख श्रीलंका के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों जैसे श्महावंशश में भी श्यक्खाश और श्सबराश के रूप में मिलता है (दसानायके, 2021)।

दोनों ही समुदाय मानवविज्ञान (Anthropology) की दृष्टि से प्रोटो-ऑस्ट्रोलॉइड (Proto-Australoid) नस्लीय समूह से संबंध रखते हैं, जो दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में प्राचीनतम मानव प्रवासन (Early Human Migration) के संकेत देते हैं (गुहा, 2015)।

संताल मुख्य रूप से कृषि-आधारित जीवन पद्धति और वन संसाधनों पर निर्भरता के माध्यम से अपनी पहचान बनाए हुए हैं (डे, 2015), जबकि वैद्दा समुदाय की ऐतिहासिक जड़ें द्वीप की मेसोलिथिक 'बालंगोडा' आबादी से जोड़कर देखी जाती हैं, हालांकि उनके जैविक और सांस्कृतिक निरंतरता के साक्ष्यों पर विद्वानों में अभी भी चर्चा जारी है (बोहिंगामुवा और अन्य, 2024)।

इस तुलनात्मक अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य इन समुदायों के ऐतिहासिक अलगावों और वर्तमान सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करते हुए यह समझना है कि कैसे आधुनिक राज्य प्रणालियों के साथ निरंतर संपर्क के बावजूद इन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान को बनाए रखा है (कोनिंगहम एंड यंग, 2015)। साथ ही, यह शोध इन समुदायों

की सीमांतता, शैक्षिक पिछड़ेपन और सांस्कृतिक आत्मसातकरण (assimilation) की चुनौतियों की तुलना कर उनके अस्तित्व की रक्षा हेतु नीति-निर्माण के लिए एक आधार तैयार करने का प्रयास करता है। जहाँ एक ओर संताल अपनी कृषि-आधारित आजीविका और ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषाई विशिष्टताओं के लिए पहचाने जाते हैं, वहीं वैद्दा समुदाय का इतिहास मेसोलिथिक 'बालांगोडा मानव' से जुड़ी जैविक एवं सांस्कृतिक निरंतरता के जटिल विमर्शों के केंद्र में है। यह तुलनात्मक अध्ययन इन दोनों समुदायों के ऐतिहासिक अलगाव, पारिस्थितिक निर्भरता और आधुनिक चुनौतियों के प्रति उनके अनुकूलन तंत्रों का सूक्ष्म विश्लेषण करता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत की संताल जनजाति और श्रीलंका की वैद्दा जनजाति के सांस्कृतिक ताने-बाने में समानता और अंतर को उजागर करना है, और इस तरह दक्षिण एशियाई आदिवासी अध्ययनों में एक नया अंतर-सांस्कृतिक दृष्टिकोण जोड़ना है।

साहित्य समीक्षा- आदिवासी संस्कृति और सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में संताल और वैद्दा समुदायों से संबंधित विस्तृत और स्वतंत्र अध्ययन उपलब्ध हैं। संताल और वैद्दा समुदायों के लिए आदिवासी संस्कृति और आदिवासी समाजशास्त्र पर विस्तृत और अलग-अलग अध्ययन मौजूद हैं। संताल समाज के सांस्कृतिक और धार्मिक पक्ष पर बोडिंग (1925) तथा ट्रोइसी (1979) के आरंभिक कार्य मील का पत्थर माने जाते हैं। हिंदी शोध-परंपरा में टोप्पो (2018) ने संतालों के 'सरना धर्म' और 'मांझी परगना शासन व्यवस्था' पर प्रकाश डालते हुए तर्क दिया है कि संताल समाज का मूलाधार प्रकृति और पूर्वजों के प्रति निष्ठा है। सोरेन (2021) के अनुसार, संतालों की 'ओल चिकी' लिपि और लोक-साहित्य उनकी सांस्कृतिक प्रतिरोध क्षमता के सबसे बड़े प्रतीक हैं। दूसरी ओर, श्रीलंका के वैद्दा आदिवासियों पर सेलिगमैन एवं सेलिगमैन (1911) का नृवंशविज्ञान कार्य बुनियादी संदर्भ प्रदान करता है। आधुनिक संदर्भ में दसानायके (2021) तथा विक्रमसिंघे (2020) ने वैद्दा समाज की श्ने यकुनश (पूर्वज-पूजा) परंपरा और आधुनिक सिंहली-तमिल भाषाई दबाव के कारण लुप्त होती वैद्दा भाषा पर गंभीर शोध प्रस्तुत किया है। शर्मा एवं वर्मा (2022) ने दक्षिण एशियाई जनजातियों के तुलनात्मक अध्ययन में यह पाया कि संताल और वैद्दा दोनों ही समुदायों की आध्यात्मिक चेतना वनों के भौतिक अस्तित्व से जुड़ी हुई है। हालाँकि, हालिया अकादमिक विमर्श में संथालों के संबंध में 'आदिवासी' पहचान के दायरे से बाहर निकलकर उनकी विशिष्ट 'संथालियत' को स्थापित करने के प्रयासों पर अधिक बल दिया जा रहा है (दत्ता, 2025)। यह विकास क्रम पूर्व के नृवंशविज्ञान संबंधी वृत्तांतों की तुलना में इन समुदायों की राजनीतिक स्वायत्तता और सांस्कृतिक अस्मिता के दावों को एक नया आयाम प्रदान करता है। वहीं, वैद्दा समुदायों के संदर्भ में, हाल के अनुसंधानों ने उनके पारंपरिक सामाजिक ढांचे और आधुनिक कृषि-आधारित पुनर्वास के बीच उत्पन्न तनावों की ओर ध्यान आकर्षित किया है (उपरथना, 2026)। इन अध्ययनों का तुलनात्मक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि जहाँ एक ओर संताल अपनी भाषाई अस्मिता और 'संथालियत' के सुदृढ़ीकरण के माध्यम से सक्रिय राजनीतिक-सांस्कृतिक पहचान स्थापित कर रहे हैं (दत्ता, 2025), वहीं दूसरी ओर वैद्दा समुदाय अपनी वाचिक परंपराओं और वन-आधारित जीवन-पद्धति को आधुनिक कृषि-प्रणाली के दबावों के बीच बचाने हेतु निरंतर संघर्षरत है (उपरथना, 2026), यह वैचारिक भिन्नता समकालीन नृवंशविज्ञान में इन दोनों समुदायों की उत्तरजीविता और अनुकूलन रणनीतियों को समझने के लिए एक आवश्यक आधार प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त, गननाथ ओबेयेसेकेरे द्वारा 'शो वैद्दा' की अवधारणा का आलोचनात्मक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि कैसे औपनिवेशिक इतिहास लेखन ने वैद्दा अस्मिता को आदिमवादी चश्मे से परिभाषित करने का प्रयास किया है (रानासिंहा, 2024)। साथ ही, संथालों के संदर्भ में 19वीं सदी के विद्रोहों और नबीवाद (prophetism) के माध्यम से निर्मित 'स्वदेशी ज्ञान' उनकी राजनीतिक चेतना और भाषाई स्वायत्तता को पुष्ट करने में एक प्रभावी उपकरण के रूप में उभरा है (कैरिन, 2022)। इसी तर्ज पर, आदिवासी-केंद्रित प्रकाशन और अकादमिक मंच अब न केवल इन समुदायों के ऐतिहासिक विमर्शों को पुनर्गठित कर रहे हैं, बल्कि हाशिए के समुदायों द्वारा स्व-प्रतिनिधित्व (self-representation) के नए मानकों को भी स्थापित कर रहे हैं (दामोदरन और दासगुप्ता, 2022)। इस वैचारिक बदलाव के फलस्वरूप, वर्तमान वैश्विक विमर्श में इन समुदायों की पहचान को 'आदिम' अथवा 'पवित्र वन-निवासी' की रूढ़िवादी छवियों से हटाकर 'अधिकार-सचेत' नागरिक के रूप में पुनर्परिभाषित करने की प्रवृत्ति सशक्त हुई है, जो उनके विकास के दावों को

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों और आत्मनिर्णय के अधिकारों के साथ सीधे जोड़ती है। यह शैक्षणिक और नीतिगत दृष्टिकोण न केवल उनके पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों—जैसे संथालों का वन-प्रबंधन और वेद्दा समुदाय की वाचिक-पारिस्थितिक समझ—को वैज्ञानिक और समकालीन पर्यावरण संरक्षण नीतियों के केंद्र में रखने का आह्वान करता है, बल्कि उन्हें राज्य-प्रायोजित विकास के समानांतर अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक संवैधानिक सुरक्षा कवच प्रदान करने पर भी बल देता है, जिससे वे अपनी विशिष्ट अस्मिता के साथ आधुनिक लोकतंत्र में सार्थक भागीदारी सुनिश्चित कर सकें (दामोदरन और दासगुप्ता, 2022)। इसलिए, हिंदी शोध के क्षेत्र में भारत के संताल और श्रीलंका के वेद्दा आदिवासी समुदाय के बीच कोई सीधी तुलनात्मक अध्ययन नहीं दिखता है। इस शोध पत्र में इसी वैचारिक अंतर को भरने का प्रयास किया गया है।

अनुसंधान कार्यप्रणाली- इस शोध पत्र में गुणात्मक (qualitative) और ऐतिहासिक-तुलनात्मक (historical-comparative) पद्धतियों का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है :

1. सांस्कृतिक नृजातीय (ethnographic) विश्लेषण : संताल और वेद्दा समुदायों के धार्मिक ग्रंथों, लोक गीतों, रीति-रिवाजों और मौखिक लोक-कथाओं का मूल्यांकन।

2. द्वितीयक डेटा : भारत और श्रीलंका सरकारों द्वारा तैयार की गई जनजातीय रिपोर्ट और जनगणना के आंकड़े, साथ ही हिंदी और अंग्रेजी की प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख।

3. तुलनात्मक ढांचा : निम्न आधारों पर तुलनात्मक अध्ययन, धार्मिक और अनुष्ठानिक चेतना, सामाजिक और प्रशासनिक संरचना, आजीविका और पर्यावरण से संबंध, तथा दोनों समुदायों की भाषा और कला।

4. सांस्कृतिक तुलना एवं विश्लेषण (Comparative Discussion)

4.1. धार्मिक एवं आनुष्ठानिक चेतना (Religious & Ritualistic Consciousness)

संताल और वेद्दा दोनों समाजों की धार्मिक दृष्टि मूलतः प्रकृतिवादी (Animistic) और पूर्वज-केंद्रित है।

संताल समाज : संताल लोग 'सरना धर्म' के अनुयायी हैं। इनमें सर्वोच्च सत्ता को श्मरांगबुरुश और श्जाहेर एराश के रूप में पूजा जाता है। संताल समाज का मानना है कि संसार में विभिन्न प्रकार के 'बोंगा' (आत्माएं) निवास करते हैं, जिन्हें प्रसन्न रखना समुदाय की समृद्धि के लिए आवश्यक है (टोप्पो, 2018)।

संताल समाज पूजा-पाठ पर विश्वास करतें हैं। संताली में पूजा को 'बोंगा' कहा जाता है। वे अपने पूर्वजों की पूजा करतें हैं। ये लोग सरना धर्म को मानते हैं, जो कि पूर्वज-पूजा और प्रकृति की सेवा पर आधारित हैं। पूजा-पाठ बहुत ही श्रद्धा की साथ की जाती हैं। इनके अनेक तरह के पूजा-पाठ हैं जैसे जाहेर-बोंगा, ओड़ाग(घर)-बोंगा, टान्डी(मैदान)-बोंगा, गोंड़ा-बोंगा आदि। जाहेर-बोंगा संताल के 'जाहेरथान' में किया जाता हैं। 'जाहेरथान' में 'नायके' द्वारा बोंगा किया जाता हैं। प्रत्येक वर्ष 'जाहेरथान' में बाहा-बोंगा, एरोग-बोंगा और आषाड़ीया-बोंगा की जाती हैं। बाहा-बोंगा फाल्गुन महीने में नए फूलों की पूजा की जाती है उसके बाद ही वन के फूलों और पत्तों का सेवन किया जाता हैं जब की एरोग-बोंगा, आषाड़ीया-बोंगा उन्नत कृषि उत्पादन के लिए किया जाता है। मांग-बोंगा और सोहराई-बोंगा गाँव के मैदान में गाँववालें सब मिलकर करतें है। सोहराई-बोंगा घर के पालतू जानवरों का पर्व होता हैं, इसमें पशुओं की सेवा-सत्कार करतें है। गाय-बैलों को नहला-धोला कर श्रद्धा के साथ पूजा-अर्चना की जाती है। सोहराई गीत एवं नृत्य किए जातें हैं। साथ ही माग-मोणें और सरी-सोहराई जैसे पर्व-त्योहार पाँच वर्षों के अंतराल में की जाती है। वर्षो से चली आ रही पूजा-पाठ प्रथा को गाँव वालें गाँव और अपने समाज के समृद्धि व उत्थान के लिए करतें है, इससे उनका सामाजिक एकजुटता प्रदर्शित होती हैं।

पर्व-त्योहार भी संताल हर्ष-उल्लास के साथ मानतें हैं। हर पर्व-त्योहार जैसे बाहा, सोहराई, साकरात पर्व मे अपने सगे-संबंधियों को बुलातें हैं और मिलजुल कर त्योहार का आनंद लेते हैं। इनके पर्व-त्योहार में नृत्य-गीत का विशेष महत्व रहता हैं. हर पर्व-त्योहार में पारंपरिक नृत्य-गीत करतें हैं।

जन्म, विवाह और मृत्यु के भी अनेक रीति-रिवाज़ पारंपरिक रूप से मानतें हैं। इन रीति-रिवाज़ में भी नृत्य-गीत का विशेष महत्व रहता हैं।

वैद्दा समाज : वैद्दा समुदाय का धर्म श्ने यकुनश (किरी कोराहा) अनुष्ठान के माध्यम से पूर्वजों की आत्माओं की पूजा पर आधारित है। वैद्दा मानते हैं कि उनके मृत पूर्वज (नाए यकु) उनके रक्षक हैं और शिकार या बीमारी के समय उनकी आत्माओं का आह्वान किया जाता है (दसानायके, 2021)।

अतः इन समुदायों की पर्यावरणीय नैतिकता उनके प्राकृतिक संसाधनों के साथ गहरे आध्यात्मिक संबंधों से परिचालित होती है, जो सतत विकास के लिए स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों की महत्ता को रेखांकित करती है (मजूमदार और चटर्जी, 2021)। यह पारिस्थिकीय दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि उनके लिए वन केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान और अस्तित्व का अविभाज्य आधार हैं। दोनों ही संस्कृतियों में मूर्ति-पूजा और मंदिर-निर्माण की परंपरा नहीं मिलती। इसके बजाय, वे प्राकृतिक स्थलों (पवित्र उपवनों/पेड़ों) और पूर्वजों की आत्माओं का सम्मान करते हैं।

4.2. सामाजिक संरचना एवं स्व-शासन (Social Structure & Self-Governance)

दोनों समुदायों ने सदियों से अपनी आंतरिक सामाजिक व्यवस्था को अक्षुण्ण रखा है।

संताल समाज : संताल समाज 12 मुख्य गोत्रों में विभाजित है और इनमें 'मांझी परगना शासन व्यवस्था' लागू है। गाँव का मुखिया 'मांझी हड़ाम' कहलाता है, जो सामाजिक, न्यायिक और धार्मिक मामलों का निपटारा पारंपरिक लोकतांत्रिक तरीके से करता है (मिंज एवं हाँसदा, 2019)।

संताल समुदाय में अपने गाँव व समाज की व्यवस्था संचालन के लिए अपनी पारंपरिक स्व-शासन व्यवस्था हैं, जिसे 'मांझी परगना शासन व्यवस्था' कहते हैं। गाँव के लोगों बढ़े-बुजुर्ग, पुरुष-महिला, बच्चे-बूढ़े को मिलकर 'मोणे-होड़' कहा जाता हैं। गाँव में यदि कोई आपसी मतभेद होता है तो उसका समाधान यही 'मोणे-होड़' मिलकर करते हैं। 'मोणे-होड़' के विचार-विमर्श पर 'माझी' न्याय करता है। इस 'माझी-दरबार' भी कहा जाता है। जब गाँव की समस्या माझी द्वारा नहीं हो पता है तो 'माझी-दरबार' से उच्च दरबार में अर्जी की जाती है। समस्या का समाधान के लिए इस 'मांझी परगना शासन व्यवस्था' में न्याय के अनेक दरबार होतें हैं जो इसप्रकर हैं– 'माझी-दरबार', 'पुड़सी-दरबार', 'परगना-दरबार' और 'लो-बीर दरबार'। 'लो-बीर दरबार' संताल समाज के सबसे उच्च न्याय दरबार होती है। यहाँ अनेक प्रांत के परगना और माझी-बाबाओं द्वारा विचार-विमर्श कर निर्णय लिया जाता हैं।

गाँव के जन्म, विवाह और मृत्यु के रीति-रिवाज़ कार्यो में भी 'माझी मोणे-होड़' की अहम भूमिका होती है।

वैद्दा समाज : वैद्दा समाज में 'वारीगे' (Wariga - Clan system) की व्यवस्था पाई जाती है। इनमें 'मुहांदिराम' या 'कैरावनैया' (गांव का वयोवृद्ध मुखिया) सामाजिक नियमों का संचालन करता है। इनमें भी बहर्विवाही (Exogamous) गोत्र नियम का पालन होता है (विक्रमसिंघे, 2020)।

इस प्रकार संताल और वैद्दा, दोनों समाज में अपनी-अपनी सामाजिक व्यवस्था होतीं है–

4.3. आजीविका, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय ज्ञान (Livelihood - Ecological Knowledge)

इतिहास में दोनों ही समुदाय अपनी आजीविका के लिए जंगलों के मिल-जुलकर इस्तेमाल पर निर्भर रहे हैं :

संताल : इतिहास में, संताल लोग बेहतरीन किसान और जंगलों के रक्षक रहे हैं। वे फसल की पैदावार और प्रकृति में नई हरियाली आने की खुशी में पूजा-पाठ व त्योहार मनाते हैं। जंगलों के पूजा-पाठ के लिए 'जानताड़' पूजा करतें हैं। प्रकृति से जुड़े रहतें हैं। उनकी सेवा करते हैं। जल, जंगल और ज़मीन उनकी धरोहर हैं। इन्हीं उनका जीवन बसता हैं। प्रकृति में नए फूल-पत्ते आने पर वे पहले 'बाहा' (फूल) पूजा करते हैं। उसके बाद ही उसका सेवन करतें हैं। संतालों का प्रकृति से अटूट बंधन हैं।

वैद्दा : वैद्दा मूलतः शिकारी-संग्राहक (Hunter-Gatherers) रहे हैं। वे धनुष-बाण के प्रयोग में पारंगत होते हैं तथा जंगली शहद और जड़ी-बूटियों का एकत्रण करते हैं। उनकी पारंपरिक कृषि प्रणाली को श्हेनाश (Hena cultivation) कहा

जाता है (दसानायके, 2021)। दोनों समुदाय का प्रकृति से गहरा संबंध हैं। पहले तो दोनों समुदाय का जीवन जंगल पर ही निर्भर था। वर्तमान में संताल समुदाय विकसित होते गया और जंगल जीवन से बाहर हो गया हैं, पर प्रकृति से लगाव अब भी है। परंतु कुछ वैद्दा समुदाय अब भी जंगल जीवन ही जी रही हैं। उनका प्रकृति से सीधा संबंध हैं। वहाँ की सरकार को उन्हें विकसित करनें की जरूरत हैं।

4.4. भाषाई पहचान एवं आधुनिकता का संकट (Linguistic Identity & Crisis of Modernity)

दोनों समुदायों की भाषाई स्थिति में साफ़ फ़र्क और कठिनाई है :

संताल भाषा की जीवंतता : संतालों की अपनी मातृभाषा संताली है, जो कि भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में भी शामिल हैं। संताली भाषा की अपनी 'ओलचिकि' नामक लिपि है, जिससे संताली ध्वनियों को सरलता से लिखा जाता है। भारत में संताली विषय की अनेकों विश्वविद्यालय में पठन-पाठन होता है। साथ ही अनेक शोध-कार्य भी हो रहीं है। इससे संताली साहित्य और शिक्षा की विकास में एक नया जीवन मिल रहा है।

वैद्दा भाषा का अस्तित्व संकट : इसके विपरीत, श्रीलंका का वैद्दा समुदाय अपनी मूल भाषा खोने के कगार पर है। अधिकांश वैद्दा अब सिंहली या तमिल भाषा बोलने लगे हैं और उनकी मूल भाषा केवल अनुष्ठानों तक सीमित रह गई है (विक्रमसिंघे, 2020)।

श्रीलंका में वैद्दा भाषा के सरंक्षण की अति आवश्यकता हैं, ताकि वैद्दा आदिवासी भाषा जीवित रह सके।

निष्कर्ष- भारत की संताल जनजाति और श्रीलंका की वैद्दा जनजाति के बीच तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि दक्षिण एशिया के मूल निवासी समुदायों में पर्यावरण के प्रति एक जैसी जागरूकता और जीवन-दर्शन पाया जाता है। भौगोलिक दूरी के बावजूद, दोनों का प्रकृति के साथ गहरा जुड़ाव है। वे इसे केवल एक चीज़ नहीं, बल्कि एक जीवित इकाई मानते हैं। साथ ही, अपने पूर्वजों के साथ भी उनका गहरा आध्यात्मिक संबंध है। लेकिन विकास का मौजूदा तरीका, औद्योगीकरण, विस्थापन और प्रभावशाली भाषाओं का बढ़ता असर दोनों संस्कृतियों के लिए बड़ा खतरा हैं। इस कारण से वे अपनी संस्कृति आर मातृभाषा से दूर होते जा रहें हैं. वैद्दा समुदाय के सामने अपनी संस्कृति के खत्म हो जाने का गंभीर खतरा है, जबकि संताल समुदाय अपनी संस्कृति और भाषा संरक्षण करनें की कोशिश में लगें हुवें हैं. उन्होंने अपनी संताली भाषा की लिपि श्ओल चिकीश और संवैधानिक अधिकारों के ज़रिए अपनी मज़बूत पहचान बनाई है। दोनों समुदायों के पारंपरिक ज्ञान को न केवल उनकी पहचान बनाए रखने के लिए, बल्कि उनके पर्यावरण के संरक्षण और व्यापक संदर्भ में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए भी बचाकर रखना ज़रूरी है।

संदर्भ सूची

- उपरथना, यू. (2026). सायकोंसोसीयल एण्ड बाइलाजिकल कैरिक्टरिस्टिकस ऑफ द वेददास इन अनुराधपुरा डिस्ट्रिक्टरू द इंटरपेले बिटविन एण्ड मॉडर्ननाइजेसन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च एंड इनोवेशन इन सोशल साइंस, 10(1), https://dx.doi.org/10.47772/IJRISS.2026.10100084
- कैरिन, एम. (2022). संताली इन्डिजनस, कल्चरल हेरिटिज एण्ड द पॉलिटिक्स ऑफ रिप्रजेंटेसन, मॉडर्न एशियन स्टडीज़, 56(5), 1438–1463. doi:10.1017/S0026749X2100024X
- कोनिंगहम, आर., और यंग, आर. (2015). इन्ट्रोडक्शन एण्ड डेफनिसन्स. श्द आर्कियोलॉजी ऑफ़ साउथ एशियारू फ्रॉम द इंडस टू अशोक, c.6500 BCE-200 CE' (पृष्ठ 3–31) में अध्याय, कैम्ब्रिजरू कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. https://doi.org/10.1017/CBO9781139020633.001
- गुहा, बी. एस. (2015). भारत की जनजातीय आबादी का नस्लीय इतिहास. जनजातीय अनुसंधान संस्थान.
- टोप्पो, एस. (2018). संताल जनजाति का धार्मिक जीवनरू सरना धर्म और बोंगावाद का सामाजिक-सांस्कृतिक

अध्ययन. भारतीय समाजशास्त्र पत्रिका, 12(2), 45—58.

- ट्रोइसी, जे. (1979). ट्राइबल रिलिजनरू रिलिजियस बिलीफ्स एंड प्रैक्टिस अमंग द संथाल्स. अभिनव पब्लिकेशंस.
- दत्ता, एस. (2025). सीटूअटींग सॉंथलस वीथिन द रूब्रिक ऑफ आदिवासी आइडेंटिटी। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली। doi:https://doi.org/10.71279/epw.v60i35.38071
- दसानायके, एस. (2021). श्रीलंका के वन्नियालाएत्तो (वैद्दा) समुदाय की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना और आधुनिक संकट. दक्षिण एशियाई अध्ययन पत्रिका, 18(1), 112—126.
- दामोदरन, वी., और दासगुप्ता, एस. (2022). स्पेशल इशूरू मल्टीपल वर्ल्डस ऑफ द आदिवासी- अन इन्ट्रोडक्शन, मॉडर्न एशियन स्टडीज़, 56(5), 1353-1374. doi:10.1017/S0026749X22000361
- बोडिंग, पी. ओ. (1925). संताल लोककथाएं और सांस्कृतिक अध्ययन. एशियन एजुकेशनल सर्विसेज.
- बोहिंगमुवा, डब्ल्यू., रोड्रिगो, के., और नमालगामुवा, एच. (2024). रीकॉनसीडीरिंग द वेददास ऑफ श्रीलंकाः बायो लाजिकल एण्ड कल्चरल कान्टिनूइटी, एण्ड मिसकॉनसेपसंस। क्वाटरनरी एनवायरनमेंट्स एंड ह्यूमन्स, 2(6). doi:https://doi.org/10.1016/j.qeh.2024.100043
- मिंज, ए., एवं हाँसदा, पी. (2019). भारत के आदिवासी : समाज, संस्कृति और अधिकार. अनुज्ञा बुक्स.
- रानासिन्हा, सी. (2024). री-रीडिंग गनानथ ओबेयेसेकेरेस व्यू ऑफ द वेददा पीपल। जर्नल ऑफ़ लैंग्वेज स्टडीज़, 8(2), 119-154. https://doi.org/10.4038/jls.v8i2.38
- विक्रमसिंघे, आर. (2020). श्रीलंका में स्वदेशी वैद्दा भाषा का संकट और भाषाई विलोपन. भाषा और संस्कृति शोध पत्रिका, 8(3), 89—101.
- शर्मा, आर. के., एवं वर्मा, ए. (2022). दक्षिण एशिया के मूलनिवासी समाजों में पूर्वज-पूजा और पारिस्थितिकी : संताल और वैद्दा का तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य. मानवशास्त्र समीक्षा, 29(4), 215—230.
- सेलिगमैन, सी. जी., एवं सेलिगमैन, बी. जेड. (1911). द वैद्दाज़ (जैम टमककें). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- सोरेन, डी. (2021). संताली भाषा, ओल चिकी लिपि और संताल सांस्कृतिक पुनर्जागरण. आदिवासी स्वर, 15(1), 67—79.

Dr. Dhanu Murmu
Assis- Prof, Department of Santali
Kalinga Institute of Social Sciences (KISS) Deemed to be University,
Bhubaneswar Odisha (INDIA)
Mob: 79798811144

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत-श्रीलंका का भाषाई रामसेतु संस्कृत

डॉ. नौनिहाल गौतम

विश्व का प्राचीनतम साहित्य वेदों को माना जाता है। अथर्ववेद के प्रसिद्ध पृथ्वी सूक्त में भूमि को माता तथा मानव को उसके पुत्र के रूप में माना गया है–

'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'[1]

इसी पृथ्वी सूक्त में अनेक भाषाओं के बोलने वाले मानवों का उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य-

'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।'[2]

इससे यह निश्चित है कि पृथ्वी पर अनेक भाषाओं के बोलने वाले प्राचीन काल से ही विद्यमान रहे हैं। एशिया महाद्वीप में भारत और श्रीलंका पड़ौसी देश हैं। भारत में प्राचीन काल से संस्कृत व्यापक रूप में प्रचलित भाषा रही है। इसका प्रभाव एवं प्रसार श्रीलंका तक रहा है। वाल्मीकि रामायण आदि काव्य माना जाता है। उसमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि संस्कृत उस समय बोली जाती थी। रामायण स्वयं संस्कृत में निबंध है और उसमें संस्कृत भाषा बोलने का स्पष्ट उल्लेख सुन्दरकाण्ड में मिलता है। श्री हनुमान सीता जी से संस्कृत में इसलिए बात नहीं करते कि कहीं वह उन्हें राक्षस न समझ ले। इसका आशय है कि रावण एवं अन्य राक्षस संस्कृत बोलने में सक्षम थे।

'यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।'[3]

राम कथा में लंका वर्णन प्रायः मिलता ही है।[4] श्रीलंका से भारत के वैवाहिक संबंध रहे हैं। हर्षदेव की नाटिका रत्नावली में रत्नावली सिंहल देश की राजकुमारी बतलाई गई है। प्राचीन समय में श्रीलंका में संस्कृत का प्रचलन रहा है। श्रीलंका में अनेक संस्कृतज्ञ हुए हैं जिन्होंने संस्कृत में रचनात्मक कार्य किया है। प्रसिद्ध महाकाव्य जानकीहरण के रचनाकार कुमारदास (600 ई. लगभग) संस्कृत जगत् में प्रसिद्ध हैं। उनके उद्धरण सदुक्तिकर्णामृत, भोज के शृंगारप्रकाश तथा राजशेखर के काव्यमीमांसा जैसे ग्रन्थों में मिलते हैं। राजशेखर के मत में उनका काव्य कालिदास के रघुवंश की कोटि में है–

'जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणस्य यदि क्षमो।।'[5]

सिंहल ग्रन्थ पूजावली (13 वीं शती) में कुमारदास और कालिदास की मित्रता एवं तत्संबंधी घटना का वर्णन है। श्री सुदर्शनपाठी शर्मा ने सिंहलविजयम् नामक ऐतिहासिक नाटक की रचना की है। यह नाटक चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित है। श्रीलंका में महाकाव्य, दूतकाव्य, शतक काव्य, चंपू काव्य, आत्मकथा, अष्टक काव्यों की भी रचना हुई। व्याकरण ग्रन्थ और टीकाएँ लिखी गईं। भगवान बुद्ध पर भारत में लिखे गये मंगलाष्टक पर श्रीलंका के दोडान्गोडा सीलाक्खन्ध ने टीका लिखी। बाद में इसका प्रकाशन किया गया। इन्होंने ही मूलतः संस्कृत में लिखे गये भक्तिशतक तथा अनुरुद्धशतक पर टीका लिखी।

बहुभाषाविद् राहुल सांकृत्यायन बौद्ध दार्शनिक एवं संस्कृत के पंडित थे। वे श्रीलंका के केलानिया विश्वविद्यालय में

संस्कृत विभाग के प्रथम अध्यक्ष एवं आचार्य रहे थे।[6] मूलतः भारतीय प्रोफेसर शांति भिक्षु शास्त्री ने श्रीलंका में संस्कृत के अध्ययन अध्यापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने बुद्धविजयकाव्यम् की रचना की जिस पर 1970 में दिल्ली से साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।7 बालंगोडा आनंद मैत्रेय ने 1950 में सेवानिवृत होकर संस्कृत के आरंभिक अध्येताओं के लिए संस्कृत में दक्षता प्राप्त करने हेतु उपयोगी 'संस्कृत शिक्षक' शृंखला प्रकाशित की। प्रोफेसर डब्ल्यू. एस. करुणारत्ना (केलानिया विश्वविद्यालय) ने 'संस्कृतभाषाप्रवेशाय' पुस्तक लिखी जो नए अध्यताओं के लिए संस्कृत सीखने हेतु उपयोगी पुस्तक थी। संस्कृत से अनुवाद भी पर्याप्त मात्रा में हुए हैं। दंडी के काव्यादर्श का सिंहल में अनुवाद 1906 में प्रकाशित हुआ है। वामन के काव्यालंकारसूत्रवृत्ति तथा आनंदवर्धन के धन्यालोक का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। 'ध्वन्यालोकविवरणय' जी.एस.बी. सेनानायक द्वारा 1969 में प्रकाशित किया गया है। भामह के काव्यालंकार को 'भारतीयकाव्यविचारय' नाम से पंडित थलकिरियागम धर्मकीर्ति ने प्रकाशित किया है। विगत शताब्दी के संस्कृत मनीषी दोदान्दुवे श्रीशीलक्खन्ध, विदुरुपोला पियतिस्स, हेनपिटगेदरा ज्ञानसीहा, ककुणवेल पियरतन, दौलदेण ज्ञानिस्सार, कहवे रतनसार, रत्मलाने धर्माराम, जॉन विल्सन समरसिंहे रहे हैं।

श्रीलंका में कई संस्थाएँ हैं जिनमें संस्कृत अध्ययन-अध्यापन का कार्य जारी है। विश्वविद्यालय स्तर पर केलानिया विश्वविद्यालय, बुद्धिस्ट एंड पाली यूनिवर्सिटी, जयवर्धनपुरा यूनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटी ऑफ़ जाफना, यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेराडेनिया, भिक्षु यूनिवर्सिटी ऑफ़ श्री लंका, इंडीजीनस मेडिसिन यूनिवर्सिटी ऑफ़ श्री लंका। उच्च शिक्षा के संस्कृत मनीषियों में प्रो. ओ. एच. डि ए. विजेशेखरा (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, यूनिवर्सिटी ऑफ सिलोन, 1943), प्रो. एम.एच.एफ. जयसूरिया, केलानिया वि.वि., प्रो. जयदेव तिलकसिरि पेराडेनिया वि.वि., प्रो. विजयमूर्ति शिवस्वामी आदि रहे हैं। इन्होंने संस्कृत में रचनात्मक योगदान दिया है। इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त विद्यालयों में भी संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का कार्य जारी है।

प्रकाशक- श्रीलंका में संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन का भी कार्य जारी है। कुछ प्रमुख प्रकाशक[8] इस प्रकार हैं—

राजभाषा विभाग, कोलंबो

ओरिएंटल सोसाइटी, शिक्षा मंत्रालय

इसुरूपया, बत्तरामुल्ला

बौद्ध सांस्कृतिक केंद्र, नेदिमाला, देहिवाला

सांस्कृतिक कार्य विभाग, कोलंबो

एस. गोदेज एण्ड ब्रदर्स, 661, मेरादाना, कोलंबो 10

रत्ना बुक पब्लिशर्स, 513, मेरादाना रोड, कोलंबो 10

समयवर्धन बुकशॉप, 61, मेरादाना, कोलंबो 10

मॉडर्न बुक्स कंपनी, हाईलेवल रोड, नुगेगोडा।

सूरिया पब्लिशर्स, मेरादाना, कोलंबो 10

विद्यातिलका प्रिंटर्स, केलानिया

इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों के अपने प्रकाशन हैं जिनसे पत्रिका आदि प्रकाशित होती हैं।

संस्कृत के कार्यक्रम- संस्कृत के प्रोत्साहन एवं प्रचार-प्रसार के लिए समय-समय पर अनेक कार्यक्रम होते रहते हैं। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद आईसीसीआर, कोलंबो द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संस्कृत सेमिनार 'डाइवर्स डिसिप्लिन्स ऑफ संस्कृत फोर ए बेटर वर्ल्ड' विषय पर दिसंबर 2023 में भिक्षु विश्वविद्यालय श्रीलंका में आयोजित किया गया।

केलानिया विश्वविद्यालय द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संस्कृत सेमिनार का आयोजन किया गया।

भारत-श्रीलंका संस्कृत महोत्सव- स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केन्द्र, भारतीय उच्च आयोग, कोलंबो, पिरिवेण शिक्षा विभाग, शिक्ष ामंत्रालय, हायर एजुकेशन एंड वोकेशनल एजुकेशन, श्रीलंका तथा केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली के

संयुक्त तत्त्वावधान में भारत-श्रीलंका संस्कृत महोत्सव कार्यक्रम नवंबर 2025 में यूनिवर्सिटी आफ कोलंबो, कोलंबो में आयोजित किया गया।

संस्कृत विभाग, बुद्धिस्ट एंड पालि यूनिवर्सिटी श्रीलंका द्वारा 27.08.2025 को 'बुद्धिस्ट संस्कृत लिटरेचर' विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय सिंपोजियम का आयोजन किया गया। इसमें भारत से डॉ. नौनिहाल गौतम, सहा. आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) ने ऑनलाइन सहभागिता की।

वर्तमान में संस्कृत- बुद्धिस्ट एंड पालि यूनिवर्सिटी ऑफ श्रीलंका में डॉ. मावटागम पेमानन्द थेरो, प्रो. नेलुवे सुमनवंस थेरो, प्रो. लेनागाला सिरिनिवास थेरो, केलानिया विश्वविद्यालय में डॉ. उदवेल रेवत थेरो, प्रो. के. बी. जयवर्धने (बी.एच.यू. वाराणसी से पीएच.डी॰), इंदुरागारे धम्मरतन थेरो, रमेशा मधुशानी संस्कृत के प्राध्यापक हैं। पेराडेनिया वि.वि. के डॉ. जम्बुगाहापिटिए धम्मालोक थेरो बौद्ध संस्कृत साहित्य के विद्वान् हैं। केलानिया विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में डिप्लोमा कोर्स, बी.ए., एम.ए. तथा पीएच.डी. उपाधियों हेतु पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं।

श्रीलंका से लगभग 10 शिक्षकों का एक समूह भारत के कर्नाटक में संस्कृत प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए गया और संस्कृत संभाषण में दक्षता प्राप्त कर श्रीलंका लौटा। यह सभी शिक्षक अब श्रीलंका में संस्कृत संभाषण शिविरों का आयोजन कर रहे हैं और सफलतापूर्वक संस्कृत बोलना, लिखना और पढ़ना सिखा रहे हैं। श्रीलंका के संस्कृत अध्येता मर्तुवेल विजितसिरि हिमि द्वारा ऑनलाइन बेसिक संस्कृत कोर्स संचालित किया जा रहा है। आई सी सी आर अध्येतावृत्ति योजना के तहत श्रीलंका के छात्रों को भारत में डिप्लोमा कोर्स, स्नातक, स्नातकोत्तर तथा पीएच.डी. में अध्ययन के लिए अध्येतावृत्ति प्रदान की जाती है। 2026-27 में मीतियागोदा बुद्धानंद थेरो का चयन काशी हिन्दू वि.वि. वाराणसी से व्याकरण विभाग में पीएच. डी. करने हेतु हुआ है।

भारत श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंध प्राचीन काल से रहे हैं। परस्पर व्यवहार का प्रमुख माध्यम भाषा होती है। संस्कृत, पालि और तमिल दोनों देशों के मध्य व्यवहार में प्रचलित भाषाएँ रही हैं। संस्कृत का प्रभाव सिंहल के व्याकरण और साहित्य पर भी विद्यमान है। संस्कृत भाषा प्राचीन काल से दोनों देशों को भाषाई रूप में जोड़ने हेतु सेतु का कार्य करती रही है। यह भाषाई सेतु रामसेतु की भाँति प्राचीन एवं स्थिर है। श्रीलंका में संस्कृत भाषा के विस्तार की संभावनाएँ विद्यमान हैं। इतिदिक्।।

सन्दर्भ

1. अथर्ववेद, 12.1.12
2. अथर्ववेद, 12.1.45
3. रामायण, 5.30.17
4. रावण के अन्तःपुर के वाद्ययन्त्र, डॉ. नौनिहाल गौतम
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 192
6. केलानिया वि.वि. की वेबसाइट
7. साहित्य अकादमी दिल्ली की वेबसाइट
8. https://share.google/U0u7N388ÛÛSpq3XuB

सहा. आचार्य, संस्कृत विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003
मो. 9826151335

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध धम्म और डॉ. भीमराव आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन का दृष्टिकोण

सविता

सारांश- यह शोध-पत्र बौद्ध धम्म और डॉ. भीमराव आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन के दृष्टिकोण के अंतर्संबंध का विश्लेषण दर्शाता है। भारतीय समाज में लंबे समय से व्याप्त जातिगत भेदभाव, सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता और मानवाधिकारों के हनन के विरुद्ध डॉ. भीमराव आंबेडकर ने एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और मानवीय समाज की स्थापना का विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने बौद्ध धम्म को केवल धार्मिक आस्था के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता, तर्कशीलता, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार किया।

डॉ. आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन के दृष्टिकोण में बुद्ध के धम्म के प्रमुख सिद्धांत—प्रज्ञा, करुणा, मैत्री, अहिंसा, समता और सामाजिक नैतिकता—का महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। उनके अनुसार समाज का वास्तविक परिवर्तन केवल राजनीतिक या आर्थिक सुधारों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए सामाजिक चेतना, नैतिक मूल्यों और मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन आवश्यक है। बौद्ध धम्म व्यक्ति को अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त करते हुए तर्क, विवेक और नैतिक आचरण की ओर प्रेरित करता है।

प्रस्तावना- यह शोध-पत्र डॉ. आंबेडकर के सामाजिक चिंतन तथा उनके द्वारा बौद्ध धम्म के पुनर्व्याख्यायित स्वरूप का अध्ययन करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार बौद्ध धम्म के सिद्धांतों को डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक न्याय, समानता और मानव मुक्ति के आंदोलन से जोड़ा। यह अध्ययन निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि आंबेडकर का नवयान बौद्ध धम्म सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त वैचारिक और नैतिक आधार प्रदान करता है, जो आज भी जातिगत भेदभाव, असमानता और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रासंगिक है। भारतीय समाज प्राचीन काल से ही विविध सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं का केंद्र रहा है। भारतीय समाज की इस विविधता के साथ-साथ सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता और सामाजिक विभाजन जैसी समस्याएँ भी लंबे समय से रही हैं। विशेष रूप से जाति-व्यवस्था ने समाज के एक बड़े वर्ग को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा। ऐसी परिस्थितियों में सामाजिक न्याय और मानव समानता के लिए संघर्ष करने वाले महान विचारकों में डॉ. भीमराव आंबेडकर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

डॉ. भीमराव आंबेडकर केवल संविधान निर्माता और समाज सुधारक ही नहीं थे, बल्कि वे एक महान चिंतक, अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता और सामाजिक क्रांतिकारी भी थे। उनका संपूर्ण जीवन सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष को समर्पित रहा। उनका मानना था कि किसी भी लोकतांत्रिक समाज की सफलता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पर निर्भर नहीं करती, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता भी उसके लिए आवश्यक है। उन्होंने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को एक न्यायपूर्ण समाज के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया। डॉ. आंबेडकर के सामाजिक चिंतन पर बौद्ध धम्म का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बुद्ध के धम्म को कर्मकांड, अंधविश्वास और रूढ़िवादिता से मुक्त एक तर्कसंगत और नैतिक

जीवन-दर्शन के रूप में देखा। बौद्ध धम्म में निहित करुणा, मैत्री, प्रज्ञा, समता और अहिंसा के सिद्धांत डॉ. आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन के विचारों से गहराई से जुड़े हुए थे। उनके अनुसार बुद्ध का धम्म व्यक्ति को केवल व्यक्तिगत मुक्ति का मार्ग नहीं दिखाता, बल्कि समाज में नैतिकता, समानता और मानवीय संबंधों की स्थापना का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

स्वयं डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के जीवन में उन्होंने जाति भेद का बहुत बड़ा सामना किया हैं बाबा साहब के बचपन के कुछ बहुत ही दर्दनाक उदाहरण जिसमें जातिवाद के कारण उन्हें स्कूल में पानी तक नहीं पीने दिया गया, बैठने तक के लिए उन्हें स्कूल के कक्षा में जगह तक नहीं दी और हर बात पर उनका अपमान किया गया। जब वह लंदन से डिग्री लेकर आए उसके बाद भी भेदभाव के कारण उनके साथ कई बड़ी घटनाएं हुई जिसमें से बड़ौदा की घटना,चावदार तालाब का सत्याग्रह, काला राम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, और जब वह उड़ीसा में गए तो उनका नाम सुनकर ही जगन्नाथ मंदिर के द्वारा भी बंद कर दिए गए थे कहीं मंदिर अपवित्र ना हो जाए। कितनी घिनौनी और दर्दनाक ऐसी ये मानसिकता है जिसमें इंसान को इंसान नहीं समझा जाता और इंसान के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता है। डॉ अंबेडकर ने देखा कि जब उनके साथ इस प्रकार का आमानवीय व्यवहार होता है तो उन अन्य बिना पढ़े लिखे और दबे कुचले लोग के साथ कितना बुरा व्यवहार होता होगा इसकी कल्पना की जा सकती है। वह स्वतंत्र भारत को इस प्रकार का भारत नहीं देखना चाहते थे की जिसमें हर रोज जातिगत भेदभाव और आसमानता का व्यवहार होता हो। वह तो समाज में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व इस बात को देखना चाहते थे। डॉ. आंबेडकर का 1936 का यह प्रसिद्ध भाषण हैं जिसे 'मुक्ति किस मार्ग से?' "Which is the Way to Liberation?' के नाम से भी संदर्भित किया जाता है यह सामाजिक, धार्मिक और मानवीय मुक्ति पर केंद्रित है। इस भाषण के बिंदु इस प्रकार हैं—

1. सामाजिक मुक्ति के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी है।
2. जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता से मुक्ति आवश्यक है।
3. आत्मसम्मान, शिक्षा और संगठन को मुक्ति का आधार बताया।
4. जिस धर्म में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व न हो, वह मनुष्य की मुक्ति का मार्ग नहीं हो सकता।

अछूत और दबे कुचले से आह्वान किया कि वे ऐसे धर्म को अपनाएँ जो उन्हें सम्मान और समान अधिकार दे। इस भाषण में आगे चलकर बौद्ध धर्म की ओर उनके झुकाव की वैचारिक पृष्ठभूमि भी दिखाई देती है। तो यह यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 1936 का यह भाषण डॉ. आंबेडकर के उस वैचारिक परिवर्तन का हिस्सा था, जो अंततः 1956 में उनके बौद्ध धम्म ग्रहण करके एक नई क्रांति को जन्म दिया। डॉ. आंबेडकर ने यह अनुभव किया कि सामाजिक परिवर्तन के लिए केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है। समाज के लोगों की मानसिकता, सामाजिक चेतना और नैतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन भी आवश्यक है। इसी कारण उन्होंने बौद्ध धम्म को सामाजिक पुनर्निर्माण का एक महत्वपूर्ण आधार माना। 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ बौद्ध धम्म ग्रहण किया। यह घटना केवल धार्मिक परिवर्तन नहीं थी, बल्कि सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध एक ऐतिहासिक सामाजिक आंदोलन भी थी।

डॉ. आंबेडकर ने बौद्ध धम्म की आधुनिक सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत की, जिसे नवयान बौद्ध धम्म के रूप में जाना जाता है। उनके लिए धम्म का अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठान या व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना नहीं था, बल्कि यह एक ऐसी नैतिक और सामाजिक व्यवस्था थी जो मानव गरिमा, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को स्थापित करती है। उन्होंने बुद्ध के विचारों को आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक न्याय की अवधारणा से जोड़ते हुए एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसमें जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ भेदभाव न हो। इस संदर्भ में बौद्ध धम्म और डॉ. आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तन के दृष्टिकोण का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। यह अध्ययन इस बात को समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार बौद्ध धम्म के सिद्धांतों ने डॉ. आंबेडकर के सामाजिक चिंतन को प्रभावित किया और उन्होंने इन सिद्धांतों का उपयोग सामाजिक न्याय तथा समानता के आंदोलन के लिए किस प्रकार प्रयोग किया। वर्तमान समय में भी जातिगत

भेदभाव, सामाजिक असमानता और मानवाधिकारों से संबंधित समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। इसलिए डॉ. आंबेडकर और बौद्ध धम्म का सामाजिक परिवर्तन संबंधी दृष्टिकोण आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

बुद्ध के धम्म में किसी भी प्रकार के भेदभाव को कोई स्थान नहीं है। बुद्ध ने कहा है– कि कोई भी व्यक्ति जन्म से महान नहीं होता बल्कि उसके कर्मो से (कार्यों से) महान होता है। इसी बात को अंबेडकर ने एनीलेशन आफ कास्ट में कहाः

Caste is nothing, it is notion of mind-

What mind create, mind can undo-

जाति कुछ भी नहीं है, यह सिर्फ मन की संकल्पना है। यदि मन इसे उत्पन्न कर सकता है, तो मन ही इसे खत्म भी कर सकता है। अभी हम देखते हैं कि किस प्रकार बुद्ध की प्रज्ञा, करुणा, समता का परिणाम लोगों के मन और मस्तिष्क पर होता है। यदि कोई मनुष्य अपने जीवन को शांतिपूर्ण ढंग से जीना चाहता है और जीवन में सुख चाहता है तो बुद्ध के इन सिद्धांतों से वह प्राप्त कर सकता है और मानवीय जीवन की सर्वोत्कृष्टता को भी प्राप्त कर सकता है। बौद्ध धम्म के प्रमुख धम्म ग्रंथ में से एक धम्मपद है जिसमें मन के बारे में बहुत ही सुंदर गाथा कही गई है,-

धम्मपद (यमकवग्ग, गाथा 1–2) की पहली दो गाथाएँ बौद्ध धर्म में मन के महत्व को स्पष्ट करती हैं।

प्रथम गाथा (धम्मपद 1)

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा।
तो नं दुःखमन्वेति, चक्कं व वहतो पदं॥

हिंदी अर्थ : मन ही सभी कर्मों का अग्रदूत है। मन ही प्रधान है और सब कुछ मन से उत्पन्न होता है। यदि कोई व्यक्ति दूषित (बुरे) मन से बोलता या कर्म करता है, तो दुःख उसका उसी प्रकार पीछा करता है जैसे बैलगाड़ी का पहिया बैल के पैर के पीछे चलता है।

द्वितीय गाथा (धम्मपद 2)

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति, छायाव अनपायिनी॥

हिंदी अर्थ : मन ही सभी कर्मों का अग्रदूत है। मन ही प्रधान है और सब कुछ मन से उत्पन्न होता है। यदि कोई व्यक्ति निर्मल और प्रसन्न मन से बोलता या कर्म करता है, तो सुख उसकी उस छाया की भाँति साथ रहता है जो कभी उसका साथ नहीं छोड़ती।

पहली गाथा : दूषित मन - दुःख। दूसरी गाथा : शुद्ध और प्रसन्न मन - सुख।

यही कारण है कि बुद्ध ने मन के शुद्धीकरण को धम्म का मूल आधार माना है। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने भी बुद्ध और उनका धम्म में इन शिक्षाओं को नैतिकता और सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला के रूप में देखा है। यदि हम मन को ही प्रशिक्षित करते हैं तो समाज में फैली हुई सभी बुराइयों का खात्मा किया जा सकता है। हालांकि मन को प्रशिक्षित करने की अनेक पद्धति बताई गई है परंतु बुद्ध के आधारभूत सिद्धांतों को ही हम यहां लेने वाले हैं

प्रज्ञा, करुणा और मैत्री- बौद्ध धम्म में प्रज्ञा के तीन स्तर बताए गए हैं

श्रुतमयी प्रज्ञा- सुनने और अध्ययन से

चिन्तामयी प्रज्ञा- विचार और तर्क से

भावनामयी प्रज्ञा- ध्यान और प्रत्यक्ष अनुभव से

प्रज्ञा का अर्थ केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि सत्य, विवेक और यथार्थ को समझने की क्षमता है। यही विवेक व्यक्ति और समाज में परिवर्तन का आधार बनता है। जैसे की अंधविश्वास से मुक्तिरू प्रज्ञा व्यक्ति को रूढ़ियों, अंधविश्वासों

और अवैज्ञानिक मान्यताओं से मुक्त करती है।

समानता की चेतना : प्रज्ञा के माध्यम से व्यक्ति यह समझता है कि सभी मनुष्य समान हैं। इससे जाति, छुआछूत और भेदभाव जैसी सामाजिक बुराइयों को चुनौती मिलती है।

तार्किक सोच का विकास : प्रज्ञा व्यक्ति को हर बात को तर्क और प्रमाण के आधार पर परखने की प्रेरणा देती है, जिससे समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता है।

नैतिक समाज का निर्माण : जब प्रज्ञा के साथ करुणा और नैतिक आचरण जुड़ते हैं, तो समाज अधिक न्यायपूर्ण और मानवीय बनता है।

आत्मसम्मान और अधिकारों की चेतना : प्रज्ञा व्यक्ति को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का बोध कराती है, जिससे सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों को बल मिलता है। डॉ. आंबेडकर के अनुसार, ष्प्रज्ञा सामाजिक परिवर्तन की बौद्ध आधारशिला है। यह व्यक्ति में विवेक, तर्कशीलता और समानता की चेतना विकसित करती है, जिससे अन्यायपूर्ण सामाजिक संरचनाओं को चुनौती मिलती है और एक समतामूलक, न्यायपूर्ण तथा मानवीय समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता है।”

सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में करुणा (Karuna) का महत्व

बौद्ध धम्म में करुणा का अर्थ केवल किसी के प्रति दया करना नहीं है, बल्कि दूसरों के दुःख को समझना और उसे दूर करने का सक्रिय प्रयास करना है। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में करुणा समाज को अधिक न्यायपूर्ण, समतामूलक और मानवीय बनाने की प्रेरणा देती है।

करुणा की सामाजिक भूमिका

1. समानता की भावना का विकास

करुणा सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखने की प्रेरणा देती है। इससे जाति, वर्ग, लिंग और धर्म के आधार पर होने वाले भेदभाव को चुनौती मिलती है।

2. सामाजिक न्याय को बढ़ावा

करुणा व्यक्ति को केवल अपनी नहीं, बल्कि समाज के वंचित और पीड़ित वर्गों की समस्याओं के प्रति भी संवेदनशील बनाती है। इससे न्याय और अधिकारों की रक्षा का भाव विकसित होता है।

3. हिंसा और द्वेष में कमी

करुणा अहिंसा, सहिष्णुता और परस्पर सम्मान को बढ़ावा देती है, जिससे सामाजिक संघर्ष कम होते हैं।

4. सेवा और सहयोग की भावना

करुणा समाज में सहयोग, परोपकार और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करती है, जो सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण आधार है।

5. मानवीय गरिमा की रक्षा

करुणा प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और सम्मान को स्वीकार करती है, जिससे समावेशी और लोकतांत्रिक समाज के निर्माण में सहायता मिलती है।

करुणा सामाजिक परिवर्तन का नैतिक आधार है। यह व्यक्ति में संवेदनशीलता, सह-अस्तित्व और न्याय की भावना विकसित करती है, जिससे ऐसा समाज निर्मित होता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान, समान अवसर और मानवीय गरिमा प्राप्त हो।

डॉ. आंबेडकर की पुस्तक बुद्ध और उनका धम्म वह कहते हैं कि प्रज्ञा से अधिक आवश्यकता मैत्री की है।

प्रज्ञा मनुष्य को सही-गलत का विवेक देती है, लेकिन मैत्री मनुष्य को दूसरे मनुष्यों के साथ प्रेम, सम्मान और समानता

का व्यवहार करना सिखाती है। इसलिए सामाजिक जीवन में मैत्री का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

डॉ. आंबेडकर ने बौद्ध धम्म के मूल आदर्शों को प्रज्ञा, करुणा और समता के रूप में प्रस्तुत किया। इन मूल्यों को व्यवहार में लाने के लिए मैत्री को अनिवार्य माना।

प्रज्ञा अंधविश्वास और अज्ञान को दूर करती है। करुणा दूसरों के दुःख को दूर करने की प्रेरणा देती है।

मैत्री समाज में भाईचारा, विश्वास और सहयोग स्थापित करती है। समता सभी मनुष्यों को समान गरिमा और अधिकार प्रदान करती है।

संदर्भ सूची

1. Ambedkar, B. R. (2011). The Buddha and His Dhamma. Samyak Prakashan. (Original work published 1957)
2. Gethin, R. (1998). The Foundations of Buddhism. Oxford University Press.
3. Harvey, P. (2013). An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices (2nd ed.). Cambridge University Press.
4. Rahula, W. (1974). What the Buddha Taught. Grove Press.
5. Ñahaamoli, B. (Trans.). (1995). The Middle Length Discourses of the Buddha (Majjhima Nikaya). Wisdom Publications.
6. Narada Thera. (1998). The Buddha and His Teachings. Buddhist Missionary Society.
7. Kosambi, D. D. (1965). The Culture and Civilisation of Ancient India in Historical Outline. Routledge.
8. कौसल्यायन, आनंद. (2019). भगवान बुद्ध और उनका धर्म. सम्यक प्रकाशन।
9. सांकृत्यायन, राहुल. (2008). बौद्ध दर्शन. किताब महल।
10. त्रिपिटकाचार्य. धम्मपद (हिंदी/पाली संस्करण). विभिन्न प्रकाशन।
11. अंगुत्तर निकाय (पाली त्रिपिटक, हिंदी अनुवाद). नव नालंदा महाविहार/अन्य प्रामाणिक प्रकाशन।
12. सुत्तनिपात (पाली त्रिपिटक, हिंदी अनुवाद). नव नालंदा महाविहार/अन्य प्रामाणिक प्रकाशन।

असिस्टेंट प्रोफेसर- शारीरिक शिक्षा विभाग
कुंवर आरसी महिला महाविद्यालय, मैनपुरी
मो- 9410054929

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत और श्रीलंका की समकालीन संस्कृति में बुद्ध

दीक्षा सिंह

सारांश- यह शोध-पत्र भारत और श्रीलंका की समकालीन संस्कृति में बुद्ध की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। बुद्ध केवल एक ऐतिहासिक धार्मिक व्यक्तित्व नहीं हैं, बल्कि वे करुणा, अहिंसा, मध्यम मार्ग, आत्मसंयम और सामाजिक समरसता के प्रतीक हैं। भारत में बुद्ध की समकालीन उपस्थिति मुख्यतः सामाजिक न्याय, दलित अस्मिता, बौद्ध पुनर्जागरण, विरासत संरक्षण और आध्यात्मिक पुनर्पाठ से जुड़ी हुई है, जबकि श्रीलंका में बुद्ध राष्ट्रीय संस्कृति, धार्मिक अनुष्ठानों, सार्वजनिक जीवन और सामुदायिक पहचान के केंद्र में दिखाई देते हैं। आधुनिक वैश्वीकरण के दौर में बुद्ध की शिक्षाएँ शांति, मानसिक स्वास्थ्य, पर्यावरणीय चेतना और नैतिक जीवन के लिए विश्वव्यापी प्रासंगिकता रखती हैं। यह अध्ययन वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है तथा द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से विकसित किया गया है।

कुंजी शब्द : बुद्ध, बौद्ध धर्म, समकालीन संस्कृति, भारत, श्रीलंका, सामाजिक न्याय, करुणा।

प्रस्तावना- बुद्ध को केवल एक धार्मिक प्रवर्तक के रूप में देखना उनके सांस्कृतिक प्रभाव को सीमित करना होगा, क्योंकि उनकी शिक्षाएँ एशियाई सभ्यता के कई आयामों—धर्म, दर्शन, राजनीति, शिक्षा, कला, सामाजिक न्याय और जीवन-शैली—को प्रभावित करती रही हैं। भारत और श्रीलंका, दोनों देशों में बुद्ध की ऐतिहासिक स्मृति आज भी सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में सक्रिय है। भारत में बौद्ध धर्म का आधुनिक पुनरुत्थान विशेष रूप से डॉ. भीमराव अंबेडकर के बौद्ध आंदोलन और बौद्ध विरासत-संरक्षण से जुड़ा है, जबकि श्रीलंका में बौद्ध धर्म राष्ट्रीय पहचान, राज्य-समर्थन और लोक-आध्यात्मिक संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बना हुआ है। आज के समय में बुद्ध की समकालीन प्रासंगिकता केवल धार्मिक साधना तक सीमित नहीं है। वे शांति, आत्म-नियंत्रण, सामाजिक करुणा और उपभोक्तावाद से मुक्ति के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसीलिए भारत और श्रीलंका में बुद्ध की संस्कृति का अध्ययन केवल धर्म-अध्ययन नहीं, बल्कि समकालीन समाज, राजनीति और सांस्कृतिक परिवर्तन को समझने का भी माध्यम है। यद्यपि भारत एवं श्रीलंका में बौद्ध संस्कृति पर अनेक अध्ययन उपलब्ध हैं, तथापि अधिकांश शोध ऐतिहासिक, धार्मिक अथवा दार्शनिक पक्षों तक सीमित रहे हैं। समकालीन सांस्कृतिक संदर्भ में दोनों देशों में बुद्ध की बदलती भूमिका, सामाजिक पुनर्व्याख्या तथा वैश्वीकरण के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन इसी शोध-अंतराल को भरने का प्रयास करता है।

अध्ययन के उद्देश्य- इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य भारत और श्रीलंका की समकालीन संस्कृति में बुद्ध की भूमिका, प्रभाव और बदलते स्वरूप का विश्लेषण करना है। इसका एक उद्देश्य यह भी है कि दोनों देशों में बुद्ध की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति किन सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण भिन्न है, इसे समझा जाए। इसके अतिरिक्त वैश्वीकरण के संदर्भ में बुद्ध की बढ़ती प्रासंगिकता, आधुनिक समाज की चुनौतियाँ, और भविष्य में बौद्ध सांस्कृतिक परंपरा की संभावनाओं को भी इस अध्ययन में शामिल किया गया है। अध्ययन का एक और उद्देश्य यह है कि भारत और श्रीलंका में बुद्ध से जुड़े धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रतीकों की तुलना की जाए, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि एक ही दार्शनिक परंपरा अलग-अलग

समाजों में कैसे विभिन्न रूपों में जीवित रहती है। यह अध्ययन न केवल बौद्ध संस्कृति की वर्तमान स्थिति को उजागर करता है, बल्कि यह भी बताता है कि बुद्ध का संदेश आज भी आधुनिक मानवीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

शोध पद्धति- यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। शोध के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है जिनमें पुस्तकें, शोध-पत्र, जर्नल, सरकारी दस्तावेज, ऐतिहासिक अभिलेख तथा विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोत शामिल हैं। तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से भारत और श्रीलंका की वर्तमान सांस्कृतिक परिस्थितियों का अध्ययन कर बुद्ध के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। इस पद्धति में भारत में बौद्ध पुनर्जागरण, दलित बौद्ध पहचान, सांस्कृतिक धरोहर और आध्यात्मिक पुनर्पाठ से संबंधित शोध का अध्ययन किया गया, तथा श्रीलंका में लोकप्रिय बौद्ध अनुष्ठानों, गृहस्थ ध्यान आंदोलन, राष्ट्रीय संस्कृति और आधुनिक धार्मिक पुनर्संरचना से संबंधित शोधों का विश्लेषण किया गया। इस प्रकार यह अध्ययन गुणात्मक शोध-आधारित, तुलनात्मक और व्याख्यात्मक दृष्टि से तैयार किया गया है।

बुद्ध का सांस्कृतिक दर्शन- बुद्ध का सांस्कृतिक दर्शन जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण पर आधारित है। इसमें करुणा, अहिंसा, सम्यक दृष्टि, मध्यम मार्ग, आत्मसंयम, अनासक्ति और नैतिक आचरण को केंद्रीय स्थान दिया गया है। यह दर्शन मनुष्य को दुःख, लालसा, क्रोध और अज्ञान से मुक्त होकर एक अधिक संतुलित और संवेदनशील जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

समकालीन संस्कृति में बुद्ध का यह दर्शन विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि आज का समाज तेज़ गति, प्रतिस्पर्धा, तनाव, उपभोक्तावाद और पहचान-संकट से प्रभावित है। बुद्ध का संदेश व्यक्ति को भीतर की शांति, सामाजिक उत्तरदायित्व और करुणा की ओर लौटने के लिए प्रेरित करता है। इस कारण बुद्ध का दर्शन आधुनिक मनुष्य के लिए न केवल धार्मिक, बल्कि मनोवैज्ञानिक और नैतिक मार्गदर्शन का स्रोत भी है।

भारत की समकालीन संस्कृति में बुद्ध- भारत में बुद्ध की समकालीन सांस्कृतिक भूमिका अनेक स्तरों पर दिखाई देती है। सबसे प्रमुख स्तर सामाजिक न्याय और दलित चेतना का है, जहाँ बुद्ध को जाति-व्यवस्था के विकल्प और समानता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। डॉ. अंबेडकर द्वारा 1956 में बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद बुद्ध भारतीय सामाजिक-राजनीतिक विमर्श के केंद्र में पुनः आए। यह रूपांतरण उन्हें केवल अतीत के धार्मिक गुरु नहीं, बल्कि वर्तमान सामाजिक मुक्ति के मार्गदर्शक के रूप में स्थापित करता है। भारत में बुद्ध की उपस्थिति बौद्ध स्थलों, स्मारकों, ध्यान-संस्कृति, विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और सांस्कृतिक आयोजनों में भी स्पष्ट है। बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर और सांची जैसे स्थल धार्मिक और पर्यटन दोनों दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन स्थलों के संरक्षण और प्रचार-प्रसार ने बुद्ध को राष्ट्रीय विरासत और अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संपर्क का हिस्सा बना दिया है। समकालीन भारतीय संस्कृति में बुद्ध का एक और महत्त्वपूर्ण आयाम मानसिक स्वास्थ्य और सचेतनता से जुड़ा है। शहरी जीवन की भागदौड़ और तनावपूर्ण कार्य-संस्कृति के बीच बुद्ध की ध्यान-परंपरा युवाओं और मध्यम वर्ग में लोकप्रिय हो रही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में बुद्ध का संदेश केवल धार्मिक समुदाय तक सीमित नहीं रहा, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक और नैतिक संसाधन के रूप में विकसित हो रहा है।

श्रीलंका की समकालीन संस्कृति में बुद्ध- श्रीलंका में बुद्ध की सांस्कृतिक उपस्थिति भारत की तुलना में अधिक व्यापक, सार्वजनिक और संस्थागत है। वहाँ थेरवाद बौद्ध धर्म समाज, राज्य, शिक्षा, त्योहार और पारिवारिक जीवन में गहराई से जुड़ा हुआ है। बौद्ध मंदिर, स्तूप, अवशेष और धार्मिक अनुष्ठान श्रीलंकाई सांस्कृतिक परिदृश्य का अनिवार्य हिस्सा हैं। इसीलिए श्रीलंका में बुद्ध केवल आस्था का विषय नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक हैं। आधुनिक श्रीलंका में लोकप्रिय बौद्ध अनुष्ठानों का रूप बदल रहा है। सामाजिक शोध से पता चलता है कि आज के बौद्ध अनुष्ठान केवल पारंपरिक धार्मिक कृत्य नहीं रहे, बल्कि वे आर्थिक सुरक्षा, परिवार-कल्याण, परीक्षा-सफलता, मानसिक शांति और सामाजिक संबंधों की जरूरतों से भी जुड़े हैं। यह परिवर्तन दर्शाता है कि बौद्ध संस्कृति आधुनिक जीवन में नई सामाजिक भूमिकाएँ निभा रही है। श्रीलंका में बुद्ध की प्रासंगिकता का एक और पक्ष है—धार्मिक पुनर्जागरण और समाज में नैतिक अनुशासन की भावना। बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण के दबावों के बावजूद बौद्ध पहचान बनी हुई है। इससे यह पता चलता है कि

श्रीलंकाई संस्कृति में बुद्ध एक ऐसे आधार-स्तंभ हैं, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का काम करते हैं।

भारत और श्रीलंका की संस्कृति में बुद्ध- भारत और श्रीलंका दोनों में बुद्ध की सांस्कृतिक उपस्थिति ऐतिहासिक रूप से गहरी है, लेकिन उनके समकालीन रूपों में स्पष्ट अंतर है। भारत में बुद्ध का रूप अधिक वैचारिक, पुनरुत्थानवादी और सामाजिक न्याय-आधारित है। वहाँ बुद्ध को मुख्यतः अस्मिता, संविधानिक समानता, बौद्धिक विमर्श और विरासत के संदर्भ में देखा जाता है। श्रीलंका में बुद्ध का रूप अधिक धार्मिक, अनुष्ठानिक, राष्ट्रीय और संस्थागत है। भारत में बौद्ध संस्कृति बहुलतावादी है और वह हिंदू, जैन, दलित, आधुनिक तथा वैश्विक सांस्कृतिक प्रवाहों के बीच विकसित हो रही है। इसके विपरीत श्रीलंका में बौद्ध संस्कृति थेरवाद परंपरा के भीतर अधिक संगठित है और सार्वजनिक जीवन में उसका प्रभाव अधिक प्रत्यक्ष है। भारत में बुद्ध की स्मृति कई बार स्मारकीय और बौद्धिक स्तर पर अधिक दिखती है, जबकि श्रीलंका में वह दैनिक धार्मिक व्यवहार का हिस्सा है। दोनों देशों में बुद्ध की शिक्षाएँ सामाजिक संतुलन, नैतिकता और मानसिक शांति का माध्यम हैं, लेकिन भारत में उनका उपयोग सामाजिक परिवर्तन और समानता के लिए अधिक हुआ है, जबकि श्रीलंका में उनका उपयोग सांस्कृतिक निरंतरता और सामुदायिक पहचान के लिए अधिक हुआ है। यही कारण है कि दोनों देशों में बुद्ध की संस्कृति समान होते हुए भी अपने ऐतिहासिक-सामाजिक संदर्भों के अनुसार अलग पहचान रखती है।

तालिका 1. भारत और श्रीलंका में बुद्ध की समकालीन भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन

आधार	भारत	श्रीलंका
बुद्ध की समकालीन भूमिका	सामाजिक न्याय, दलित चेतना, पुनर्जागरण	राष्ट्रीय पहचान, धार्मिक जीवन, अनुष्ठान
संस्कृति में स्वरूप	वैचारिक और पुनरुत्थानवादी	धार्मिक और संस्थागत
प्रमुख संदर्भ	अंबेडकरवाद, विरासत, ध्यान-संस्कृति	थेरवाद परंपरा, मंदिर, लोक-आस्था
सार्वजनिक उपस्थिति	स्मारक, विश्वविद्यालय, बौद्ध स्थल	मंदिर, उत्सव, दैनिक धार्मिक जीवन
आधुनिक प्रासंगिकता	समानता, सचेतनता, सामाजिक सुधार	सामुदायिक एकता, नैतिक अनुशासन

उपरोक्त तालिका भारत और श्रीलंका में बुद्ध की सांस्कृतिक भूमिका की तुलना स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है।

वैश्वीकरण और बुद्ध की प्रासंगिकता- वैश्वीकरण ने बुद्ध की शिक्षाओं को स्थानीय सीमाओं से बाहर निकालकर वैश्विक स्तर पर एक उपयोगी नैतिक संसाधन बना दिया है। आज सचेतनता (Mindfulness), ध्यान (Meditation), शांति-अध्ययन, करुणा-आधारित नेतृत्व और तनाव-नियंत्रण जैसी अवधारणाएँ विश्वव्यापी स्तर पर लोकप्रिय हैं, जिनकी वैचारिक जड़ें बौद्ध दर्शन में हैं। भारत और श्रीलंका दोनों ने इस वैश्विक प्रवाह में बुद्ध को सांस्कृतिक कूटनीति और अंतरराष्ट्रीय धरोहर के रूप में प्रस्तुत किया है। भारत में बुद्ध की वैश्विक प्रासंगिकता बौद्ध पर्यटन, सांस्कृतिक कूटनीति, आध्यात्मिक विपणन और धरोहर-आधारित अंतरराष्ट्रीय संवाद में दिखाई देती है। श्रीलंका में बौद्ध संस्कृति वैश्विक तीर्थयात्रियों, धार्मिक पर्यटकों और सांस्कृतिक शोधकर्ताओं को आकर्षित करती है। इस प्रकार वैश्वीकरण बुद्ध को कमजोर नहीं करता, बल्कि उनके संदेश को नए रूपों में विस्तार देता है।

चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ- आधुनिक समय में बुद्ध की संस्कृति के सामने कई चुनौतियाँ हैं। भारत में सबसे बड़ी चुनौती यह है कि बुद्ध की ऐतिहासिक विरासत कई बार केवल स्मारक और औपचारिक आयोजनों तक सीमित रह जाती है। श्रीलंका में चुनौती यह है कि धार्मिक अनुष्ठान कभी-कभी व्यवसायीकरण और राजनीतिक उपयोग का रूप ले लेते हैं। इसके अलावा, युवा पीढ़ी में गहरी दार्शनिक समझ की कमी भी एक समस्या है। फिर भी संभावनाएँ बहुत व्यापक हैं। बुद्ध की शिक्षाएँ शांति, सामाजिक समावेशन, मानसिक स्वास्थ्य, पर्यावरणीय चेतना और अंतरधार्मिक संवाद के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। भारत और श्रीलंका यदि बौद्ध शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण और शोध को प्रोत्साहित करें, तो बुद्ध की परंपरा आधुनिक समाज

में और अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सकती है।

प्रमुख निष्पत्तियाँ- इस अध्ययन की प्रमुख निष्पत्ति यह है कि भारत और श्रीलंका में बुद्ध की समकालीन संस्कृति जीवित, परिवर्तनशील और अर्थपूर्ण है। भारत में बुद्ध सामाजिक न्याय, दलित अस्मिता और बौद्ध पुनर्जागरण के प्रमुख सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में उभरते हैं, जबकि श्रीलंका में वे राष्ट्रीय संस्कृति और धार्मिक जीवन के केंद्र में स्थित हैं। दोनों देशों में बुद्ध आधुनिकता के साथ संवाद कर रहे हैं और नई सामाजिक जरूरतों के अनुसार पुनर्परिभाषित हो रहे हैं। एक अन्य निष्पत्ति यह है कि बुद्ध की शिक्षाएँ आज के युग में केवल धार्मिक सिद्धांत नहीं, बल्कि जीवन जीने की व्यावहारिक और नैतिक पद्धति के रूप में उभर रही हैं। चाहे वह मानसिक तनाव हो, सामाजिक असमानता हो, पर्यावरणीय संकट हो या सांस्कृतिक अस्थिरता, बुद्ध का संदेश इन सबके लिए एक संतुलित मार्ग प्रस्तुत करता है।

सुझाव- इस विषय के संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए जा सकते हैं। भारत और श्रीलंका दोनों को बौद्ध स्थलों, शैक्षणिक संस्थानों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से बुद्ध की शिक्षाओं को नई पीढ़ी तक पहुँचाना चाहिए। विश्वविद्यालयों और शोध केंद्रों में बौद्ध अध्ययन को अधिक अंतरविषयी बनाया जाना चाहिए, जिससे इतिहास, समाजशास्त्र, दर्शन, पर्यटन और सांस्कृतिक अध्ययन के बीच बेहतर समन्वय हो सके।

साथ ही, मंदिर-आधारित समुदायों, बौद्ध संगठनों और सरकारी सांस्कृतिक संस्थाओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बुद्ध की शिक्षा केवल अनुष्ठान तक सीमित न रहे, बल्कि सामाजिक नैतिकता, करुणा, समानता और शांति के मूल्यों को भी आगे बढ़ाए। डिजिटल माध्यमों, प्रदर्शनियों, अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से भी बुद्ध की प्रासंगिकता को और मजबूत किया जा सकता है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः, भारत और श्रीलंका की समकालीन संस्कृति में बुद्ध की भूमिका अत्यंत गहरी, बहुआयामी और प्रासंगिक है। भारत में वे सामाजिक परिवर्तन, दलित अस्मिता और बौद्ध पुनरुत्थान के केंद्र हैं, जबकि श्रीलंका में वे राष्ट्रीय संस्कृति, धार्मिक अनुष्ठान और सामुदायिक पहचान के आधार हैं। दोनों देशों में बुद्ध की शिक्षाएँ आधुनिक समाज के लिए शांति, करुणा, संयम और सह-अस्तित्व का मार्ग प्रदान करती हैं। इस प्रकार बुद्ध केवल इतिहास के महान शिक्षक नहीं, बल्कि आज की संस्कृति के जीवंत प्रेरक भी हैं। वैश्वीकरण, आधुनिकता और सामाजिक परिवर्तन के बावजूद उनकी शिक्षाएँ मानवता को नैतिक दिशा देने में सक्षम हैं। इसलिए भारत और श्रीलंका में बुद्ध की सांस्कृतिक भूमिका को समझना समकालीन एशियाई समाज को समझने की एक आवश्यक कुंजी है। भारत और श्रीलंका के अनुभव यह दर्शाते हैं कि बुद्ध का दर्शन केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि समकालीन वैश्विक समाज के लिए शांति, सह-अस्तित्व और सतत विकास का एक व्यवहारिक सांस्कृतिक मॉडल है।

संदर्भ सूची

1. अंबेडकर, बी. आर. (1957). द बुद्धा एंड हिज धम्मा. बॉम्बे : सिद्धार्थ कॉलेज पब्लिकेशन्स।
2. बाशम, ए. एल. (2004). द वंडर दैट वॉज़ इंडिया. नई दिल्ली : रूपा पब्लिकेशन्स।
3. बेचर्ट, हाइनरिख, एवं गोम्ब्रिच, रिचर्ड (संपा.) (1984). द वर्ल्ड ऑफ बुद्धिज्म : बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ समाज और संस्कृति में. लंदन : टेम्स एंड हडसन।
4. गोम्ब्रिच, रिचर्ड एफ. (2006). थेरवाद बौद्ध धर्म : प्राचीन वाराणसी से आधुनिक कोलंबो तक एक सामाजिक इतिहास. लंदन : रूटलेज।
5. हार्वे, पीटर. (2013). बौद्ध धर्म का परिचय : शिक्षाएँ, इतिहास और अभ्यास. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. कीओन, डेमियन. (2013). बौद्ध धर्म : एक अत्यंत संक्षिप्त परिचय. ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. नारद थेरा. (1998). द बुद्धा एंड हिज टीचिंग्स. कोलंबो : बौद्ध पब्लिकेशन सोसाइटी।

8. राहुल सांस्कृत्यायन. (2015). बौद्ध दर्शन. प्रयागराज : किताब महल।
9. वॉलपोला राहुल. (1974). व्हॉट द बुद्धा टॉट. न्यूयॉर्क : ग्रोव प्रेस।
10. रोमिला थापर. (2002). आरंभिक भारत : उत्पत्ति से 1300 ई. तक. नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स।
11. ओम्वेद्त, गेल. (2003). भारत में बौद्ध धर्म : ब्राह्मणवाद और जाति व्यवस्था को चुनौती. नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन्स।
12. क्वीन, क्रिस्टोफर एस., एवं किंग, सैली बी. (संपा.) (1996). एंगेज्ड बौद्धिज्म : एशिया में बौद्ध मुक्ति आंदोलन. अल्बानी : स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस।
13. सर्किस्यांज़, मैनुएल. (1965). बर्मा क्रांति की बौद्ध पृष्ठभूमि. द हेग : मार्टिनस निजहॉफ।
14. सांस्कृत्यायन, राहुल. (2015). बौद्ध दर्शन (Bauddha Darshan). प्रयागराज : किताब महल।
15. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (2009). भारतीय संस्कृति के स्वरूप. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

133/157 ओ ब्लॉक किदवई नगर
बारादेवी, कानपुर (208011)
मो- 7985262980

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

यज्ञ संस्कृति के रक्षक श्रीराम

डॉ. वैशाली गावली

भूमिका- जिस समय संसार में दुराचार दुर्विचार हिंसा तथा विकारों का प्रादुर्भाव होने लगता है उस समय ईश्वर किसी न किसी रूप में प्रकट होकर वेद शास्त्रोक्त धर्म की रक्षा के लिए अवतार धारण करते है। भारत की संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति है इसकी रक्षा के लिए ईश्वर समय-समय पर अवतार धारण करते है। इसी शृंखला में त्रेता युग में भगवान् श्रीराम का अवतार हुआ। भगवान् का अवतार के रूप में अभिव्यक्त होना मानवता की सहायता के लिये है। श्रीराम का अवतार परात्पर ब्रह्म का ही अवतरण है।

सोऽयं परात्मा पुरूषः पुराणं
एके स्वयं ज्योतिरनन्त आद्यः
मायातनुं लोकविमोहनीयां
धत्ते परानुग्रह एष रामः।।

अध्यात्म रामायण बालकाण्ड पंचम् सर्ग श्लोक 49

अर्थात् पुराण पुरूष परमात्मा श्रीराम ने संसार पर परम अनुग्रह करने के लिये एक स्वयं प्रकाश अनन्त और सबके आदि कारण होते हुए भी यह मायारूप धारण किया है। सनातन वैदिक धर्म यज्ञ संस्कृति की रक्षा के लिये अवतार धारण करना सर्वोपरि है।

2. वेदों का महत्व - वेद सनातन संस्कृति का मूल आधार है। वेदों से ही भारतीय संस्कृति की पहचान है। वेद चार है ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तथा अथर्ववेद। वेदों के चार उपवेद है आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्ववेद व अर्थवेद। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ब्राह्मणग्रन्थ आरण्यकग्रन्थ शिक्षाग्रन्थ् वेदांग उपनिषद् आदि आते है।

संस्कृत भाषा में निबद्ध यह वैदिक साहित्य भारतवर्ष का गौरव है। सनातन संस्कृति का आधार वेद ही है। ऋषि संस्कृति के भारतवर्ष में सदैव से ही वेदों का पठन-पाठन होता रहा है। वेद मात्र पठन-पाठन के लिये ही नहीं है अपितु वे विज्ञान के कारक भी है इसलिए वेद-विज्ञान कहा जाता है। वेदों में अनेक देवताओं के सूक्त उपलब्ध होते है इन्द्र वायु अग्नि वरूण।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

समस्त मानवों के अभ्युत्थान के लिये एक मात्र वेद ही सर्वस्व है। सर्वविषयात्मक सर्वविद्यात्मक तथा सर्वज्ञान प्रकाशात्मक वेद परमेश्वर के शासन रूप में अवतरित है।

यज्ञ का महत्व– भारतीय संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति है। वेदों में यज्ञ का महत्व प्रतिपादित किया गया है। वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ ही है। यज्ञों के द्वारा मानव जीवन उन्नत होता है। यज्ञ से ही धर्म संस्कृति अध्यात्म का विकास होता है। मानव तथा यज्ञ का पारस्परिक सम्बन्ध है। यज्ञ से ही विश्व का कल्याण होता है।

यज्ञ शब्द चिन्तन – वैदिक कोश निघण्टु में यज्ञ के 15 पर्यायों का उल्लेख है वे इस प्रकार है :

यज्ञ वेन अध्वरः मेधः विदथः नार्यः सवनम् होत्रा इष्टि देवताना मख विष्णुः इन्दुः प्रजापतिः धर्म इति पञ्चदशः यज्ञ नामानि।

(निघण्टु 3/17

यज् धातु से नङ् प्रत्यय पूर्वक यज्ञ शब्द सिद्ध होता है। देवपूजा संगति करण और दान यज्ञ के मुख्य अङ्ग है।

यज्ञ का स्वरूप - यज्ञ के संबंध में कहा गया है कि यज्ञ ही समस्त भुवनों का केन्द्र बिन्दु है। यज्ञ ही पृथ्वी का धारण करता है यज्ञ साक्षात् विष्णुरूप है। शतपथ् ब्राह्मणग्रन्थ में यज्ञों वै विष्णुः कहा गया है।

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में विराट यज्ञ की कल्पना की गई है।

यत्पुरूषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।

मन्त्र 10/90/6

यज्ञ देवशक्तियों का न केवल वहन करता है अपितु उन्हें अनुकूल भी करता है यज्ञ को देवरथ भी कहा जाता है। वेदों में असंख्य प्रकार के यज्ञों का विधान है किन्तु मुख्यतः अग्निहोत्र दर्षपूर्ण मास चातुर्मास सोमयाग राजसूय अष्वमेघ आदि प्रमुख है। यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होते है। यज्ञ केवल वायुशुद्धि का प्रयोजन नहीं है अपितु देवताओं की उपासना आराधना का प्रतीक है। यज्ञ से पर्यावरण की रक्षा होती है यज्ञ ही पर्यावरण की रक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

वैदिक संस्कृति का महत्व- भारत की संस्कृति सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति है। यजुर्वेद में कहा है—

सा प्रथमा संस्कृति र्विश्ववारा

संस्कृति का आधार यज्ञ है। संस्कृति सभ्यता तथा संस्कारों की परिचायक होती है। संस्कृति की रक्षा के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। राष्ट्र का आधार उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति वेदविहित है। वेदों के प्रतिपाद्य विषयों में वर्णाश्रम षोडश संस्कार पञ्चमहायज्ञ स्वाध्याय सदाचार व्रतोपवास अध्यात्मज्ञान समाहित है। पुरूषार्थ चतुष्टय धर्म अर्थ काम मोक्ष आदि। इसी के आधार पर मानव जीवन संरक्षित और उन्नतिशील होता है।

श्रीराम का व्यक्तित्व और कृतित्व - वेद संस्कृति की रक्षा के लिए त्रेतायुग में श्रीराम का अवतरण हुआ था। धर्म की रक्षा के लिए धर्मरक्षक श्रीराम धर्म के साक्षात् विग्रह है। धर्म क्या है धर्म का लक्षण क्या है। इसका उत्तर शास्त्र देते है। धर्म के अनेक लक्षण शास्त्रों में प्राप्त होते है।

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः

जिसके द्वारा अभ्युदय और कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है वही धर्म है। इसी श्रेष्ठ धर्म के लिए यज्ञ संस्कृति की रक्षा के लिए श्रीराम का जन्म हुआ था। दशरथ अयोध्या के चक्रवर्ती राजा थे उनके घर श्रीराम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ था। वे चारों ही परमप्रतापी तेजस्वी और धर्मशील थे। ऐसा लगता था मानों धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चारों पदार्थ पृथ्वी पर अवतरित हो गये हो।

स चतुर्धा बभो व्यस्तः प्रसवः पृथिवी पते।
धर्मार्थ काम मोक्षाणामवतार इवाङ्गभाक्।।

रघुवंश दशम सर्ग श्लोक 84 पृष्ठ 94

शिक्षा - पिता की आज्ञा से उपनयन संस्कार के पश्चात वशिष्ठ मुनि के आश्रम में चारों भाई ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा -दीक्षा ग्रहण करने लगे। वर्णाक्षर श्रुति अष्टशब्द (विभक्तियाँ काव्य व्याकरण स्मृतिग्रन्थ चौसठ कलां अस्त्र- शस्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त की।

पञ्च वर्ष गत हय हाते दिल खड़ि पड़िते पाठान राजा बशिष्ठेर बाड़ी
क ख ग आठार फला बानान प्रभृति अष्ट शब्द पाठ करिलेन रघुपति
व्याकरण काव्यशास्त्र पड़िले स्मृति अवशेषे पड़िलेन राम चतुःश्रुति

कोन शास्त्र नाहि ताँर हय अगोचर चाद्दिने चतु:षष्टि विद्याते तत्पर
विद्या पड़ि करिलेन गुरूके प्रणाम अस्त्र-विद्या सेइ क्षणे शिखिलेन राम।

कृतिवास रामायण आदिकाण्ड पृष्ठ 160

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा - एक दिन महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास जाकर यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम और लक्ष्मण को मांगते है। आसुरी शक्ति को नष्ट कर यज्ञ संस्कृति की रक्षा करना उनका परम् उद्देष्य था। श्रीराम के बिना यज्ञ की रक्षा नहीं हो सकती यह महर्षि विश्वामित्र को पता था। यज्ञ संस्कृति की रक्षा से ही आर्यावर्त की रक्षा होगी। ऐसा सोचकर महर्षि विश्वामित्र जी श्रीराम और लक्ष्मण को अपने साथ लेकर चले गये और उन्हें धनुर्वेद में वर्णित संपूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान का प्रदान किया।

रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेद विशारदम्।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीव लोचनम्।।

श्रीराम ने मार्ग में ताड़का नामक राक्षसी का वध किया। सिद्धाश्रम आकर यज्ञस्थल पहुंचने पर श्रीराम ने ऋषियों से प्रार्थना की आप निश्चिंत होकर यज्ञ करे। जैसे ही महर्षि विश्वामित्र ने अन्य ऋषियों के साथ यज्ञ प्रारंभ किया मारीच और सुबाहु अनेक राक्षसों के साथ यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने आ गये। उसी समय आकाश में जोर का शब्द हुआ राक्षसों ने यज्ञ मण्डप पर रक्त की धाराएँ बरसाना प्रारंभ कर दिया यह देखकर श्रीराम और लक्ष्मण ने अनेक अस्त्र- शस्त्रों से उनका संहार किया। मारीच को बिना फलक वाले बाण से सौ योजन समुद्र पार फेंक दिया। इस प्रकार श्रीराम ने यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले राक्षसों का संहार कर दिया। यज्ञ की समाप्ति के पश्चात महर्षि विश्वामित्र ने संपूर्ण दिशाओं को विघ्नबाधा से रहित देखा और श्रीराम की और देखकर कहा -

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतंगुरूवचस्त्वया।
सिद्धाश्रममिदंसत्यं कृतं वीर महायशः।।

वाल्मिकी रामायण बालकाण्ड सर्ग 30 श्लोक 26 पृष्ठ 126

हे महाबाहो तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गया। तुमने गुरू की आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया, सिद्धाश्रम का नाम सार्थक किया। इस प्रकार श्रीराम ने यज्ञ की रक्षा की और ऋषियों को निर्भय किया।

अहिल्या का उद्धार/धनुषयाग - मिथिला नगर की और जाते समय मार्ग में गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या जो शापग्रस्त हो शिला के रूप में पड़ी थी श्रीराम की चरण धुली से पुनः जीवनदान पा गयी, पवित्र हो गयी तथा सतीयों में सर्वश्रेष्ठ बन गयी।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।।

श्रीरामचरित मानस बालकाण्ड पृष्ठ 246

श्रीराम ने पतिता नारी का उद्धार कर गौरव प्रदान किया। विश्वामित्र के साथ दोनों भाई मिथिला नगरी आये वहाँ का अपूर्व सौंदर्य देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। सीता का स्वयंवर होने वाला था। राजा जनक ने विवाह की प्रतिज्ञा रखी की जो शिव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा सीता का विवाह उसी से होगा। इस कठिन प्रतिज्ञा को भी श्रीराम ने लीलापूर्वक सार्थक किया। शिव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सीता का पाणिग्रहण किया। सीता से विवाह कर एक पत्नी व्रत धारण किया। गृहस्थाश्रम धर्म की विशेषता को सार्थक किया।

एक पत्नी व्रत धरो राजर्षि चरितः शुचिः।
स्वधर्म गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरन्।।

श्रीमद्‌भागवत 9/10/35

श्रीराम एक पत्नी व्रतधारी थे उनका चरित्र अत्यंत पवित्र था वे गृहस्थोचित स्वधर्म की शिक्षा देने के लिये स्वयं उस

धर्म का आचरण करते थे। श्रीराम साक्षात् धर्म के विग्रह थे।

वनवासी राम - कैकयी के कहने पर राजा दशरथ ने श्रीराम को 14 वर्ष का वनवास दिया। अपने पिता के वचनों को सत्य सिद्ध करने के लिये राज्यलक्ष्मी का त्याग कर दिया। जटा और वल्कल वस्त्र धारण कर सीता सहित लक्ष्मण के साथ वन की और चले गये। चित्रकूट तथा दण्डकारण्य में पर्णकूटी बनाकर रहते, ऋषि-मुनियों के साथ शास्त्रार्थ करते। महर्षि अत्रि के आश्रम में उनकी पत्नी अनसूया ने सीता को नारीधर्म की शिक्षा प्रदान की तथा अनेक आभूषण, दिव्य अंगराग तथा वस्त्र प्रदान किये।

महर्षि अगस्त्य के आश्रम में आकर उनसे दिव्य अस्त्र- शस्त्र प्राप्त किये जिसमें विश्वकर्मा निर्मित दिव्य धनुष, ब्रह्माजी का दिया हुआ अमोघबाण, इन्द्र के द्वारा प्रदत्त दो तरकस जो तेजस्वी बाणों से भरे रहते थे साथ ही एक तलवार प्रदान की।

एवमुक्त्वा महातेजाः समस्त तद्वरायुधम्।
दत्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत्।।

वाल्मिकी रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग 12 श्लोक 37 पृष्ठ 583

शबरी माता को दर्शन देकर उनके झूठे बेर खाकर सामाजिक सद्‌भाव का परिचय दिया तथा नवधा भक्ति का उपदेश दिया।

सीताहरण के पश्चात जब सीता अन्वेषण का कार्य प्रारंभ हुआ तब श्रीराम ने सुग्रीव से मित्रता की वाली का वध किया तथा हनुमानजी जैसा भक्त प्राप्त किया। वानरों के साथ मिलकर समुद्र पर सेतु निर्माण का कार्य किया राम और रावण के बीच भीषण युद्ध हुआ जिसमें श्रीराम की विजय हुई। विभिषण को लंका का राज्य दिया जब विभिषण ने श्रीराम को लंका का राजा बनने का निवेदन किया तब श्रीराम ने जननी और जन्मभूमि को सर्वश्रेष्ठ बताया और कहा -

''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी''

तत्पश्चात लक्ष्मण् और सीता सहित अयोध्या की और लौट आये।

राजाराम- जब श्रीराम अयोध्या लौट आये और पुनःराज सिंहासन को प्राप्त किया और प्रतिज्ञा की :

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।

भवभूति उत्तररामचरित प्रथम अंक पृष्ठ 42

धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। गृहस्थाश्रम धर्म तथा राजधर्म का पालन करते थे।

स्नात्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम्।
प्रातःसंध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च।।

आनंदरामायण राज्यकाण्ड सर्ग 19 श्लोक 10

अपवाद के लिये निर्दोष पत्नी सीता का परित्याग किया। एक पत्नी व्रत धारण करने के कारण अश्वमेध यज्ञ में सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर यज्ञ का संपादन किया। इस प्रकार मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम का चरित्र आदर्श तथा अनुकरणीय है। जो मानव मात्र के लिये कल्याणकारी है।

उपसंहार- - श्रीराम धर्म के साक्षात् विग्रह है इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। आसुरी शक्तियों को नष्ट कर वैदिक धर्म तथा यज्ञ संस्कृति की स्थापना उनका उद्देश्य था। उन्होंने अपने शील चरित्र सदाचार और न्याय आदि से वैदिक धर्म की स्थापना की। राज्य शासन के लिये अपनी प्रिय पत्नी सीता का त्याग कर दिया। श्रीराम का समस्त जीवन मर्यादाओं के प्रति सतत् जागरूकता और निष्ठा का प्रतीक है। वे कर्तव्य बुद्धि से सर्वदा अपने धर्म का पालन करते थे। अपने आदर्श चरित्र के आचरण द्वारा मानवता का मार्ग प्रशस्त करते। वस्तुतः भगवान् राम भारतीय संस्कृति में परम् आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित है। एक प्रकाश स्तम्भ है जो आने वाली पीढ़ियों के लिए पथ प्रदर्शक है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःखभाग् भवेत्।।

संदर्भ सूची

1 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण प्रथम खण्ड सं0 2075 बावनवाँ पुनर्मुद्रण प्रकाशक एवं मुद्रक गीताप्रेस गोरखपुर।

2 महाकविकालिदासविरचितं रघुवंषम् व्याख्याकार डा श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी संस्करण 2014 प्रकाशक चौखम्बा सुरभारती प्रकाश न वाराणसी उ0प्र0।

3 महाकवि भवभूतिविरचितम् उत्तररामचरितम् हिन्दी व्याख्याकार डा कृष्णकान्त शुक्ल संस्कृत टीकाकार स्व0ब्रह्मानन्द शुक्ल मुद्रक दुर्गा आफसैट प्रिन्टर्स मेरठ प्रकाशक साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ उ0प्र0।

4 कालिदास-ग्रन्थावली व्याख्याकार पण्डित श्रीरामतेज शास्त्री सम्पादक डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी। संस्करण 2023 प्रकाशक चौखम्बा सुरभारती प्रकाश न वाराणसी उ0प्र0।

5 श्रीरामचरित्मानस टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार संवत् 2081 सांतवा पुनर्मुद्रण प्रकाशक एवं मुद्रक गीताप्रेस गोरखपुर।

6 कश्मीरी रामावतारचरित रचयिता श्री प्रकाशराम कुर्यग्रामी अनुवादक डॉ.शिबनकृष्ण रैणा प्रथम संस्करण 1975 प्रकाशक व मुद्रक भुवन वाणी ट्रस्ट सीतापुर रोड लखनउ उ0प्र0 पिन 226020।

7 बंगला कृत्तिवास रामायण रचयिता सन्त महाकवि कृत्तिवास पद्यानुवाद एवं लिप्यन्तरण नन्दकुमार अवस्थी प्रकाशक भुवन वाणी ट्रस्ट सीतापुर रोड लखनउ उ0प्र0 पिन 226020।

8 श्रीम श्रीमद्भगवतमहापुराण संवत् 2075 चोरानवेवा पुनर्मद्रण प्रकाशक व मुद्रक गीताप्रेस गोरखपुर पिन 273005

9 अध्यात्मरामायण अनुवादक मुनिलाल संवत् 1989, प्रकाशक व मुद्रक गीताप्रेस गोरखपुर उ0प्र0

10 अग्निमहापुराणम् अनुवादक एवं संपादक डा सुरकान्त झा संस्करण तृतीय वि0स0 2080 सन् 2023 प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी।

अ/37 कमला नगर
कोटरा सुल्तानाबाद भोपाल
मध्यप्रदेश (4620030
मो- 9407254424
07553560474

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक विनिमय में संस्कृत, पाली और क्लासिकल भाषाओं की भूमिका

डॉ. मधु विनय

प्रस्तावना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- भारत और श्रीलंका के मध्य सांस्कृतिक और सभ्यतागत संबंध मानव इतिहास के सबसे पुराने और अटूट अध्यायों में से एक हैं। यह संबंध केवल तीस समुद्री मील की भौगोलिक दूरी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह दो संस्कृतियों के अंतर्मन का मिलन है। भारतीय और श्रीलंकाई परंपराओं में ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और भाषाई विनिमय की एक ऐसी सुदृढ़ विरासत रही है जिसने दोनों देशों की लोक-चेतना को समान रूप से प्रभावित किया है। रामायण काल से लेकर सम्राट अशोक के युग तक और उसके बाद के औपनिवेशिक एवं आधुनिक काल तक, दोनों देशों ने विचारों और भावनाओं का अनवरत आदान-प्रदान किया है।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक के पुत्र महेंद्र (महिंदा) और पुत्री संघमित्रा के श्रीलंका आगमन ने इस द्वीपीय राष्ट्र की धार्मिक और सांस्कृतिक दिशा को हमेशा के लिए बदल दिया। श्रीलंका के राजा देवानाम्पिया तिस्सा ने जब अनुराधापुर के निकट मिहिंताले में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली, तो वह केवल एक धार्मिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि वह एक नई भाषाई और ज्ञान-मीमांसात्मक क्रांति की शुरुआत थी। इस सांस्कृतिक यात्रा के साथ जो तत्व सबसे प्रभावी रूप से स्थानांतरित हुआ, वह था—'भाषा'। प्राचीन काल में विचार और ज्ञान के संवहन के लिए भाषा ही सबसे सशक्त माध्यम थी। भारत से श्रीलंका की इस यात्रा में तीन प्रमुख भाषाई धाराओं—पाली, संस्कृत और क्लासिकल तमिल ने एक ऐसे सभ्यतागत पुल का निर्माण किया, जिसने सदियों तक दोनों देशों के सामाजिक ताने-बाने को जोड़े रखा।

पाली भाषा : थेरवाद बौद्ध धर्म और वैचारिक विनिमय का मुख्य स्तंभ

श्रीलंका में बौद्ध धर्म का आगमन थेरवाद परंपरा के रूप में हुआ, और इस परंपरा की आत्मा श्पालीश भाषा में रची-बसी थी। पाली भाषा मूलतः प्राचीन भारत की एक लोकभाषा या प्राकृत का ही रूप थी, जिसे भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों का माध्यम बनाया था। जब बौद्ध भिक्षु और पवित्र ग्रंथ श्रीलंका पहुंचे, तो पाली वहाँ की धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक अभिव्यक्ति की मुख्य भाषा बन गई।

श्रीलंका के महान ऐतिहासिक ग्रंथ जैसे श्दीपवंशश और श्महावंशश पाली भाषा में लिखे गए हैं। ये ग्रंथ न केवल श्रीलंका का इतिहास बताते हैं, बल्कि भारत के साथ उसके गहरे ऐतिहासिक संबंधों के जीवंत दस्तावेज हैं। पाली भाषा ने श्रीलंका में केवल धार्मिक अनुष्ठानों को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि वहाँ की स्थानीय भाषा श्सिंहलीश के भाषाई और व्याकरणिक विकास में भी केंद्रीय भूमिका निभाई। सिंहली भाषा की शब्दावली, वाक्य विन्यास और दार्शनिक अभिव्यक्ति पर पाली का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। थुपरमा परिषद के आयोजन से लेकर पवित्र त्रिपिटक के लेखन तक, पाली भाषा ने श्रीलंकाई बौद्ध विद्वानों को एक वैश्विक पहचान दी। इस प्रकार, पाली भाषा ने भारत और श्रीलंका के बीच एक ऐसे आध्यात्मिक और दार्शनिक सेतु का कार्य किया जिसने दोनों देशों की बौद्धिक चेतना को एक समान धरातल पर ला खड़ा किया।

संस्कृत भाषा : ज्ञान, विज्ञान और राजशाही विमर्श का माध्यम

यद्यपि पाली भाषा धार्मिक और बौद्ध दर्शन के क्षेत्र में अग्रणी रही, किंतु ज्ञान-विज्ञान, कला, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद और राजशाही विमर्श के क्षेत्र में श्संस्कृतश भाषा का प्रभाव अद्वितीय था। श्रीलंका के प्राचीन राजाओं के शिलालेखों, राजकीय आदेशों और साहित्यिक कृतियों में संस्कृत का प्रचुर प्रयोग मिलता है। लंका के राजाओं ने अपनी वंशावली और विजय-गाथाओं को अमर बनाने के लिए संस्कृत काव्य शैली को अपनाया।

श्रीलंका में महायान बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ भी संस्कृत का गहरा संबंध रहा है। अभयगिरि विहार जैसे प्रमुख केंद्र संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन और संरक्षण के गवाह रहे हैं। श्रीलंका के प्रसिद्ध विद्वान कुमारदास द्वारा रचित काव्य श्जानकीहरणश संस्कृत साहित्य में एक मील का पत्थर है, जो यह सिद्ध करता है कि श्रीलंकाई विद्वानों का संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण पर कितना असाधारण अधिकार था। इसके अलावा, श्रीलंका की पारंपरिक चिकित्सा पद्धति (देशीय वैद्य पीठ) और वास्तुकला के ग्रंथों में संस्कृत शब्दावली का व्यापक उपयोग मिलता है। संस्कृत ने दोनों देशों के उच्च बौद्धिक वर्ग को एक साझा मंच प्रदान किया, जहाँ दर्शन, कला और न्यायशास्त्र पर बिना किसी भाषाई बाधा के संवाद संभव हो सका।

क्लासिकल भाषाएँ और तमिल : दक्षिण भारतीय भाषाई अंतर्धाराएँ

भारत और श्रीलंका के संबंधों का एक और अत्यंत महत्वपूर्ण और जीवंत पहलू है—क्लासिकल भाषा तमिल का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक योगदान। भौगोलिक रूप से दक्षिण भारत और श्रीलंका के उत्तरी एवं पूवी भाग के बीच निरंतर संपर्क रहा है। यह संपर्क चोल, चेर और पांड्य राजवंशों के काल में और अधिक चतंहंकी हुआ। तमिल भाषा ने श्रीलंका के सामाजिक और व्यापारिक जीवन को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया।

प्राचीन काल से ही दोनों देशों के बीच व्यापारिक संगठनों (जैसे मणिग्रामम और अंजुवन्नम) के माध्यम से जो विनिमय हुआ, उसकी मुख्य भाषा तमिल थी। श्रीलंका में द्रविड़ संस्कृति और तमिल भाषा का प्रभाव वहाँ के मंदिरों की वास्तुकला, संगीत (भरतनाट्यम) और लोक-परंपराओं में स्पष्ट झलकता है। कंब रामायण का प्रभाव और तमिल साहित्य के महान महाकाव्य जैसे श्शिलप्पादिकारमश और श्मणिमेकलाईश दोनों देशों के साझा कथा-साहित्य के जीवंत उदाहरण हैं। श्मणिमेकलाईश में तो विशेष रूप से श्रीलंका के बौद्ध केंद्रों और वहाँ की सामाजिक व्यवस्था का सुंदर चित्रण मिलता है। इस प्रकार, तमिल भाषा ने न केवल एक भाषाई पुल का कार्य किया, बल्कि यह दोनों देशों के बीच लोक-संस्कृति, कला और दैनिक सामाजिक विनिमय की सबसे सशक्त कड़ी बन गई।

भाषावैज्ञानिक विश्लेषण : सिंहली और भारतीय भाषाओं का अंतर्संबंध

यदि भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए, तो सिंहली भाषा की उत्पत्ति और विकास की यात्रा भारत की इंडो-आर्यन (भारोपीय) और द्रविड़ भाषा परिवारों के संगम की कहानी है। सिंहली भाषा के मूल व्याकरणिक ढांचे और प्रारंभिक शब्दावली पर प्राकृत और पाली का गहरा प्रभाव है, जो उत्तर-पूवी और उत्तर-पश्चिमी भारत की प्राचीन बोलियों से साम्य रखता है। समय के साथ, दक्षिण भारत की क्लासिकल भाषा तमिल के निरंतर संपर्क के कारण सिंहली में बड़े पैमाने पर द्रविड़ भाषाई तत्वों का समावेश हुआ।

ध्वनि-विज्ञान (Phonology), रूप-विज्ञान (Morphology) और शब्दावली (Lexicon) के स्तर पर सिंहली और तमिल के बीच का अंतर्संबंध यह दर्शाता है कि संस्कृत और पाली जैसी शास्त्रीय भाषाओं ने जहाँ एक ओर तत्सम और तद्भव शब्दों के माध्यम से सिंहली को समृद्ध किया, वहीं तमिल ने उसके व्यावहारिक और सामाजिक स्वरूप को आकार दिया। यह त्रिकोणीय भाषाई अंतर्संबंध (संस्कृत-पाली-तमिल) दोनों देशों के बीच केवल भाषाई उधार का मामला नहीं है, बल्कि यह सदियों के सह-अस्तित्व और सांस्कृतिक तादात्म्य का परिणाम है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य और सांस्कृतिक कूटनीति (Cultural Diplomacy)

आधुनिक युग में, भारत और श्रीलंका के इन प्राचीन भाषाई संबंधों को श्सांस्कृतिक कूटनीतिश (Cultural Diplomacy) के रूप में एक नई दिशा मिली है। दोनों देशों की सरकारों ने 1977 के सांस्कृतिक सहयोग समझौते के माध्यम से इन ऐतिहासिक कड़ियों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। कोलंबो स्थित स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र (SVCC) और भारत-श्रीलंका फाउंडेशन जैसी संस्थाएं आज भी संगीत, नृत्य और भाषाओं के आदान-प्रदान के माध्यम से इस पुल को मजबूत कर रही हैं।

हाल के वर्षों में, श्रामायण टूरिज्म सर्किटश और बौद्ध तीर्थयात्राओं (धरोहर सर्किट) के विकास ने लोगों के बीच आपसी संपर्क (People-to-People Connect) को एक नया संवेग दिया है। संस्कृत, पाली और तमिल के प्राचीन ग्रंथों का डिजिटल संरक्षण और दोनों देशों के विश्वविद्यालयों के बीच अकादमिक सहयोग इस बात का प्रमाण है कि ये भाषाएँ केवल अतीत का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि वे वर्तमान और भविष्य के द्विपक्षीय संबंधों के लिए भी उतनी ही प्रासंगिक हैं। बिम्सटेक (BIMSTEC) और सार्क (SAARC) जैसे क्षेत्रीय मंचों पर भी यह साझा सांस्कृतिक विरासत दोनों देशों के बीच राजनीतिक और आर्थिक समझौतों के लिए एक विश्वासपूर्ण और आत्मीय धरातल तैयार करती है।

प्राचीन अनुवाद परंपरा : ग्रंथों का भाषाई देशांतरण

भारत और श्रीलंका के बीच सभ्यतागत संवाद केवल मौखिक नहीं था, बल्कि यह एक सुव्यवस्थित लिखित अनुवाद परंपरा पर आधारित था। जब बौद्ध धर्म के ग्रंथ भारत से श्रीलंका पहुँचे, तो वे मूलतः पाली भाषा में थे। परंतु श्रीलंका के भिक्षुओं और विद्वानों ने केवल उन ग्रंथों को कंठस्थ ही नहीं किया, बल्कि उनका स्थानीय सिंहली प्राकृत में अनुवाद और भाष्य (Commentaries) लिखना प्रारंभ किया। इन भाष्यों को 'हेला-अटुकथा' (सिंहली भाष्य) कहा जाता था।

आगे चलकर पाँचवीं शताब्दी में जब महान विद्वान आचार्य बुद्धघोष भारत से श्रीलंका के अनुराधापुर स्थित महाविहार पहुँचे, तो उन्होंने एक युगांतरकारी कार्य किया। उन्होंने उन प्राचीन सिंहली भाष्यों का पुनः श्पालीश भाषा में अनुवाद किया। बुद्धघोष का यह कार्य वैश्विक अकादमिक इतिहास में अनुवाद और भाषाविज्ञान का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। उन्होंने 'विशुद्धिमग्ग' (Visuddhimagga) नामक ग्रंथ की रचना की, जो आज भी बौद्ध दर्शन का एक प्रामाणिक स्तंभ है। इस भाषाई देशांतरण ने यह सिद्ध किया कि भाषाएँ स्थिर नहीं होतीं, बल्कि वे भौगोलिक सीमाओं को लांघकर ज्ञान का पुनरुत्पादन करती हैं। संस्कृत के ग्रंथों के साथ भी यही हुआ; आयुर्वेद के संस्कृत ग्रंथों का श्रीलंकाई वैद्यों ने अपनी भाषा में अनुवाद किया, जिससे ज्ञान की एक साझी उपमहाद्वीपीय विधा का जन्म हुआ।

महाकाव्यों का भाषाई सेतु : वाल्मीकि, कंबन और श्रीलंकाई लोक-चेतना

सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक अत्यंत जीवंत उदाहरण रामायण कथा का भाषाई रूपांतरण है। वाल्मीकि रामायण जहाँ संस्कृत में इस ऐतिहासिक गाथा को स्थापित करती है, वहीं दक्षिण भारत में महाकवि कंबन द्वारा रचित श्कंब रामायणश ने इसमें एक नया भाषाई और सांस्कृतिक सौंदर्य जोड़ा। श्रीलंका के तमिल और सिंहली समाज दोनों में ही रामायण के पात्रों और घटनाओं को लेकर एक गहरा जुड़ाव रहा है।

श्रीलंका की लोककथाओं और लोकगीतों में सीता, राम और हनुमान की भूमिका को केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक मूल्यों के दस्तावेज़ के रूप में देखा गया है। सिंहली लोक-परंपरा में 'कोहंबा कंकड़िया' जैसे अनुष्ठानों और नृत्यों में रामायण के प्रसंगों की झलक मिलती है। वहीं, कंब रामायण ने श्रीलंका के तमिल समाज को एक विशिष्ट साहित्यिक पहचान दी, जहाँ युद्ध, प्रकृति और मानवीय संवेदनाओं का चित्रण मिलता है। यह भाषाई सेतु दर्शाता है कि कैसे एक ही कथावस्तु संस्कृत, तमिल और सिंहली में अलग-अलग भाषाई स्वादों के साथ प्रवाहित होकर भी दोनों देशों के वैचारिक सह-अस्तित्व को मजबूत करती है।

भविष्य की राह : डिजिटल संरक्षण और भाषाई कड़ियों का पुनरुद्धार

21वीं सदी के इस तकनीकी युग में प्राचीन भाषाओं के इस पुल को आधुनिक स्वरूप देना अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान में दोनों देशों के मध्य हो रहे अकादमिक समझौतों के तहत संस्कृत, पाली और प्राचीन तमिल के शिलालेखों का डिजिटल संरक्षण (क्पहपजंस ।तबीपअपदह) किया जा रहा है। श्रीलंका के विभिन्न मठों, विहारों और मंदिरों में हजारों ऐसे ताड़पत्र (च्संउ-सर्मा उंदनेबतपचजे) मौजूद हैं जो प्राचीन लिपियों में लिखे गए हैं। भारत और श्रीलंका के विश्वविद्यालय मिलकर इन ग्रंथों के डिजिटलीकरण और उनके हिंदी व अन्य समकालीन भाषाओं में अनुवाद की परियोजनाओं पर कार्य कर रहे हैं।

यह भाषाई कड़ियों का पुनरुद्धार केवल इतिहास को टटोलना नहीं है, बल्कि यह आने वाली पीढ़ी के लिए ज्ञान के नए द्वार खोलना है। जब आज का युवा यह समझता है कि सिंहली भाषा के श्अम्माश्, श्तातपश् (पिता) या दार्शनिक शब्द कैसे पाली और संस्कृत से जुड़े हैं, तो दोनों देशों के बीच का कूटनीतिक रिश्ता स्वाभाविक रूप से एक पारिवारिक रिश्ते में बदल जाता है। फिनटेक, ऊर्जा और व्यापारिक कनेक्टिविटी के इस दौर में यह श्सॉफ्ट पावरश् ही है जो दोनों देशों के बीच दीर्घकालिक शांति और आपसी सम्मान की सबसे मजबूत नींव बनती है।

व्याकरणिक संरचना और लिपि का अंतर्संबंधरू ब्राह्मी से सिंहली तक

भाषाई पुल केवल शब्दों के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह लिपियों और व्याकरण के गहन स्तर पर भी परिलक्षित होता है। भारत की प्राचीन ब्राह्मी लिपि ही वह मूल स्रोत है जिससे न केवल भारत की आधुनिक लिपियों का विकास हुआ, बल्कि श्रीलंका की 'सिंहली लिपि' का उद्भव भी इसी ब्राह्मी लिपि के दक्षिणी रूपांतरण से हुआ है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के मौर्यकालीन ब्राह्मी शिलालेख जो श्रीलंका के गुफाओं और विहारों में मिलते हैं, वे इस बात के अकादमिक साक्ष्य हैं कि दोनों देशों की लेखन परंपरा की जड़ें एक ही हैं।

इसके अतिरिक्त, व्याकरण के धरातल पर भी एक अत्यंत रोचक अंतर्संबंध दिखाई देता है। सिंहली भाषा के सबसे प्राचीन और प्रामाणिक व्याकरण ग्रंथ 'सिदत्संगरावा' (Sidatsangarava) की रचना 13वीं शताब्दी में हुई थी। इस ग्रंथ का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इसके व्याकरणिक नियम, कारकीय व्यवस्था, और संधि-विच्छेद के सिद्धांत काफी हद तक संस्कृत के पाणिनीय व्याकरण और पाली के श्कच्चायन व्याकरणश् (Kaccayana Grammar) से प्रेरित हैं। सिंहली भाषा ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली को ग्रहण करते हुए भी अपने क्रियापदों और वाक्य-संरचना में जो मौलिकता बनाए रखी, उसमें पाली के तद्भव रूप और तमिल के व्याकरणिक प्रभाव का एक अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

ध्वनि-विज्ञान (Phonology) के स्तर पर, सिंहली में महाप्राण ध्वनियों (जैसे ख, घ, छ, झ) का प्रयोग मूल सिंहली (एळू) में कम था, किंतु संस्कृत और पाली के धार्मिक व साहित्यिक प्रभाव के कारण इन ध्वनियों को सिंहली वर्णमाला में 'मिश्र सिंहली' के रूप में स्थान दिया गया। यह दर्शाता है कि भाषाई पुल ने न केवल संवाद को सुगम बनाया, बल्कि एक संपूर्ण भाषा के व्याकरणिक और ध्वन्यात्मक कलेवर को पुनर्गठित किया।

समकालीन अकादमिक विनिमय : विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों की भूमिका

प्राचीन काल से चली आ रही इस भाषाई विरासत को आधुनिक युग में संस्थागत रूप देने में दोनों देशों के विश्वविद्यालयों और शोध केंद्रों का योगदान अतुलनीय है। श्रीलंका के प्रमुख विश्वविद्यालय, जैसे 'केलणिय विश्वविद्यालय' (University of Kelaniya) और 'बौद्ध तथा पाली विश्वविद्यालय' (Buddhist and Pali University of Sri Lanka), दशकों से संस्कृत, पाली और हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के वैश्विक केंद्र रहे हैं। इन संस्थानों में हिंदी विभाग की स्थापना और वहां के छात्रों में हिंदी साहित्य के प्रति बढ़ता अनुराग यह सिद्ध करता है कि आधुनिक काल में हिंदी भी संस्कृत और पाली की तरह ही एक नया सभ्यतागत सेतु बन रही है।

दूसरी ओर, भारत के केंद्रीय हिंदी संस्थान (आगरा), डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय जैसे अग्रणी संस्थान श्रीलंकाई शोधार्थियों को भाषाई और सांस्कृतिक शोध के लिए मंच प्रदान करते हैं। यह अकादमिक विनिमय केवल भाषा सीखने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'तुलनात्मक साहित्य' (Comparative Literature) के माध्यम से दोनों देशों की साझी सांस्कृतिक विरासत को वैश्विक पटल पर स्थापित करने का माध्यम है। जब भारत के विद्वान सिंहली साहित्य में मौजूद बौद्ध दर्शन का अध्ययन करते हैं और श्रीलंका के प्राध्यापक कबीर, तुलसी या आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य पर शोध करते हैं, तो यह भाषाई संवाद एक नए बौद्धिक विमर्श को जन्म देता है। इस प्रकार, समकालीन शैक्षणिक संस्थान प्राचीन भाषाई पुल की नींव पर एक आधुनिक, प्रगतिशील और अन्तर्विषयी अकादमिक सेतु का निर्माण कर रहे हैं जो द्विपक्षीय संबंधों को स्थायित्व प्रदान करता है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत और श्रीलंका के बीच सभ्यतागत संपर्क के पुल के रूप में संस्कृत, पाली और क्लासिकल भाषाओं की भूमिका केवल ऐतिहासिक तथ्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह दोनों देशों के आत्मिक और बौद्धिक संबंधों की जीवन-रेखा है। पाली ने जहाँ आध्यात्मिक और दार्शनिक चेतना को जगाया, वहीं संस्कृत ने बौद्धिक और वैज्ञानिक विमर्श को ऊंचाइयाँ प्रदान कीं, और क्लासिकल तमिल ने सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन को समरस बनाया।

'हेला-अटुकथा' से लेकर बुद्धघोष की अनुवाद परंपरा और कंब रामायण से लेकर श्रीलंकाई लोक-मानस तक फैले ये भाषाई सूत्र यह सिद्ध करते हैं कि हमारा साझा अतीत एक अटूट वैचारिक धरातल पर निर्मित है। आज के डिजिटल युग में इन प्राचीन पांडुलिपियों का संरक्षण और भाषाई कड़ियों का पुनरुद्धार इस सभ्यतागत पुल को और अधिक आधुनिक और प्रासंगिक बना रहा है।

ये भाषाएँ केवल शब्दों का समूह नहीं थीं, बल्कि वे विचार, मूल्य, करुणा और सद्भाव के संवाहक माध्यम थीं। आज के वैश्विक और भू-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में, जब दोनों देश आर्थिक, तकनीकी और सुरक्षा के क्षेत्रों में एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं, तब इस भाषाई और सांस्कृतिक विरासत का स्मरण और संरक्षण और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। यह प्राचीन भाषाई पुल आने वाली सदियों में भी भारत और श्रीलंका के संबंधों को प्रगाढ़, अटूट और जीवंत बनाए रखेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

1. महावंश (पाली ग्रंथ) - श्रीलंका का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दस्तावेज।
2. कुमारदास कृत - 'जानकीहरण' (संस्कृत महाकाव्य)।
3. मणिमेकलाई (क्लासिकल तमिल महाकाव्य) - भारत-श्रीलंका सांस्कृतिक संबंध।
4. भारत-श्रीलंका सांस्कृतिक सहयोग समझौता (1977) और द्विपक्षीय सांस्कृतिक नीति प्रतिवेदन।
5. अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी ब्रोशर (2026) - डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा एवं बुद्धिस्ट एंड पालि यूनिवर्सिटी ऑफ श्रीलंका।

सहायक प्रोफेसर (हिंदी विभाग)

श्री कन्यका परमेश्वरी कला एवं विज्ञान महिला महाविद्यालय (SKPC), चेन्नई, तमिलनाडु, भारत

No- 1, Audiappa Street, Chennai – 600001

Mobile No- – 8939666719

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

वाल्मीकि रामायण और कम्ब रामायण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. पी. बी. वनिता

प्रस्तावना- रामायण भारतीय साहित्य, संस्कृति और धार्मिक परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण महाकाव्य है। राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान और रावण की कथा ने भाषाई, भौगोलिक और ऐतिहासिक सीमाओं को पार करते हुए अलग-अलग क्षेत्रों की सांस्कृतिक परंपराओं का सफर तय किया है। यह महाकाव्य तमिल और अन्य भारतीय भाषाओं में पुनर्लिखित और पुनर्व्याख्यायित हुई है। साथ ही दक्षिण पूर्व एशिया की साहित्यिक परंपराओं को भी प्रभावित किया है। वाल्मीकि की रामायण को पारंपरिक रूप से राम कथा का सबसे पुराना और सबसे प्रभावशाली संस्कृत महाकाव्य संस्करण माना जाता है। इस महाकाव्य को सात कांडों में बांटा गया है : बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड, युद्धकांड और उत्तरकांड। रामायण में राम की कथा से परे, साथ-साथ धर्म, कर्तव्य, पारिवारिक संबंध, नैतिकता और आदर्श जीवन पर भी गहन विचार किया गया है।

कंबन की 'रामावतारम' जिसे कंब रामायण के नाम से जाना जाता है, तमिल साहित्य की महानतम कृतियों में से एक है। कंबन ने रामकथा को तमिल भाषा, साहित्यिक परंपरा और सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप पुनर्सृजित किया। उनका काव्य वाल्मीकि के रामायण से प्रेरित है पर उन्होंने अनेक प्रसंगों का विस्तार किया, कुछ घटनाओं में परिवर्तन किया और विभिन्न पात्रों को पुनर्परिभाषित किया। कंब रामायण छह कांडों में विभाजित है : बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड और युद्धकांड।

इस प्रकार कंब रामायण मूल कथा का अनुवाद मात्र न होकर एक स्वतंत्र और सृजनात्मक साहित्यिक पुनर्व्याख्या के रूप में सामने आता है। पी. एस. सुंदरम ने कंबन की रचना की भूमिका में स्पष्ट (Kamba Ramayana by P.S. Sundaram) किया है कि 'रामावतारम' धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक प्रभावों से समृद्ध एक स्वतंत्र साहित्यिक रचना है, तथा राम और अन्य प्रमुख पात्रों के चित्रण में यह वाल्मीकि के रामायण से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है।

वाल्मीकि रामायण और कंबन की रामावतारम का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह ज्ञात होता है कि कैसे एक ही साहित्यिक कथा अलग-अलग भाषाओं, संस्कृतियों और धार्मिक दृष्टिकोणों के संपर्क में आने पर नए अर्थ, रूप और व्याख्याएँ ग्रहण करता है। यह अध्ययन न केवल दोनों महाकाव्यों के बीच समानता और अंतर को उजागर करता है बल्कि साहित्यिक पुनर्निर्माण, सांस्कृतिक बदलाव और क्षेत्रीय साहित्यिक परंपराओं की भूमिका को भी स्पष्ट करता है।

कथानक और महाकाव्य की संरचना का तुलनात्मक विश्लेषण

वाल्मीकि रामायण एक क्रमबद्ध कथा के रूप में विकसित होता है। यह महाकाव्य राम जन्म और बाल्यकाल से शुरू होकर सीता विवाह, वनवास, सीता अपहरण, वानरों से गठबंधन, सीता खोज, लंका विजय, अयोध्या वापसी और राम राज्याभिषेक

के बाद उनके जीवन, शासन काल और अनुभवों का सम्पूर्ण विवरण मिलता है।

कंब रामायण मूल कथा-संरचना को बनाए रखते हैं लेकिन इसके साहित्यिक प्रस्तुतीकरण में अंतर है। श्रामावतारमश की विशेषता है - विस्तृत वर्णन, गहरी भावनाएँ और काव्यात्मक विस्तार। वाल्मीकि रामायण में जिन घटनाओं का ज़िक्र संक्षेप में किया गया है, कंबन ने उन्हीं घटनाओं को नाटकीय और भावनात्मक रूप से प्रभावशाली दृश्यों में बदल दिया है। कंबन ने पात्रों की आंतरिक भावनाओं और कहानी के कलात्मक पहलुओं को ज्यादा महत्त्व दिया है।

जहाँ वाल्मीकि का वर्णन अपेक्षाकृत संतुलित और कथात्मक है, वहीं कंबन का काव्य अधिक अलंकारिक, कल्पनाशील और भावप्रधान है। अतः कंबन की रामावतारम वाल्मीकि रामायण का केवल अनुवाद नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र काव्यात्मक पुनर्कल्पना के रूप में सामने आता है।

चरित्र-चित्रण

राम का चरित्र-चित्रण- दोनों महाकाव्यों के बीच सबसे अहम अंतर राम के चित्रण में दिखता है। दोनों में राम आदर्श पुरुष, आदर्श पुत्र और आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं किन्तु दोनों कवियों की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण अंतर दिखाई देता है।

वाल्मीकि ने राम को एक आदर्श राजकुमार और धर्म के प्रतीक के रूप में दिखाया है और साथ ही वे मानवीय भावनाओं से भी जुड़े हुए हैं। सीता के अपहरण के बाद उनका गहरा दुःख उनके चरित्र के भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को उजागर करता है। कंबन के राम में दिव्यता का पक्ष अधिक प्रमुख है। राम केवल आदर्श मनुष्य नहीं हैं बल्कि ईश्वर के अवतार हैं।

यद्यपि राम मानव संसार में रहते हैं और मानवीय भावनाओं का अनुभव करते हैं, फिर भी उनके दिव्य अवतार का स्वरूप पूरे काव्य में स्पष्ट रूप से उभरता है। वाल्मीकि के राम अपनी नैतिक अनुशासनशीलता, भावनात्मक संघर्ष और कर्तव्यनिष्ठा के कारण पाठक में भावना उत्पन्न करते हैं जबकि कंबन के राम भक्ति की भावना भी जागृत करते हैं। इस प्रकार, एक ही चरित्र राम को दो भिन्न, किन्तु परस्पर संबद्ध दृष्टिकोणों से देखा जाता है - राम एक आदर्श मानव के रूप में और राम एक दिव्य अवतार के रूप में।

सीता का चरित्र-चित्रण- सीता - स्त्री, पत्नी और सदाचार की प्रतिमूर्ति हैं। दोनों महाकाव्यों में सीता केंद्रीय नायिका हैं और नैतिक दृढ़ता, साहस और आत्मसम्मान का प्रतीक हैं। वाल्मीकि रामायण की सीता साहस, नैतिक शक्ति और स्वतंत्र सोच का परिचय देती हैं। वाल्मीकि द्वारा सीता का चित्रण मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को दर्शाता है। वह डर, दुख और गुस्से का अनुभव करती हैं, फिर भी अपने मूल्यों पर अडिग रहती हैं।

कम्बन सीता के चरित्र में सौंदर्य, पवित्रता, भक्ति और आध्यात्मिक शक्ति को अधिक प्रमुखता देते हैं। कम्बन का काव्यात्मक चित्रण सीता से जुड़े दृश्यों की भावनात्मक तीव्रता को बढ़ाता है। दोनों ही रूपों में सीता निष्ठा, साहस और नैतिक ईमानदारी के आदर्शों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जहाँ कम्बन की सीता भक्तिपूर्ण नज़रिए से ज्यादा गहराई से जुड़ी हैं, वहीं वाल्मीकि की सीता आदर्शवाद और मानवीय भावनाओं की जटिलता के मेल से उभरती हैं।

हनुमान और भक्ति का आदर्श- वाल्मीकि के रामायण और कम्बन् के रामावतारम् दोनों में हनुमान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाल्मीकि के रामायण में हनुमान एक कुशल कूटनीतिज्ञ, वीर योद्धा, दूत और राम के निष्ठावान सेवक के रूप में उभरते हैं। उनकी बुद्धिमत्ता और वाक्पटुता पर विशेष बल दिया गया है। वे परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण करने, प्रभावी रणनीतियाँ बनाने की असाधारण क्षमता रखते हैं। उनकी अपार शारीरिक शक्ति के साथ-साथ विवेक, साहस और व्यावहारिक बुद्धि का भी समन्वय दिखाई देता है।

कम्बन् इन गुणों का विस्तार करते हुए हनुमान को राम के परम भक्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। रामावतारम् में उनकी अपार शक्ति का वास्तविक महत्त्व राम की सेवा के प्रति उनकी पूर्ण समर्पण में निहित है। उनका साहस, ज्ञान और विनम्रता

केवल व्यक्तिगत गुण नहीं रह जाते, बल्कि उनकी अटूट भक्ति की अभिव्यक्तियाँ बन जाते हैं। उनकी महानता केवल उनकी असाधारण क्षमताओं में नहीं, बल्कि इस बात में निहित है कि वे अपनी समस्त शक्तियाँ और प्रतिभाओं को निःस्वार्थ भाव से ईश्वर की सेवा में समर्पित करते हैं।

वाल्मीकि के रामायण में हनुमान मुख्यतः एक असाधारण वीर पात्र के रूप में प्रस्तुत होते हैं, जिनकी बुद्धि, शक्ति और पराक्रम कथा को गति प्रदान करते हैं, वहीं कम्बन् के यहाँ वे परम दास और अनन्य भक्त के रूप में पूजनीय हो जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण और कम्ब रामायण में धर्म का निरूपण- धर्म, वाल्मीकि की रामायण और कंबन की कंब रामायण दोनों का मुख्य नैतिक और दार्शनिक आधार है। दोनों महाकाव्य भिन्न भाषाई, सांस्कृतिक और धार्मिक-दार्शनिक संदर्भों में रचे गए हैं लेकिन दोनों में धर्म को एक जटिल नैतिक सिद्धांत के रूप में दिखाया गया है जो व्यक्ति के आचरण, पारिवारिक रिश्तों, राजनीतिक जिम्मेदारी और व्यापक ब्रह्मांडीय व्यवस्था को नियंत्रित करता है।

वाल्मीकि की रामायण में, धर्म का पालन एक गहरे मानवीय संघर्ष के रूप में दिखाया गया है। राम का वनवास व्यक्तिगत आकांक्षा और पारिवारिक दायित्व के मध्य उत्पन्न नैतिक द्वंद्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। राम का आचरण पितृ धर्म के आदर्श और वचन पालन की नैतिक जिम्मेदारी को दर्शाता है। भरत का चरित्र धर्म और राजनीतिक वैधता के संबंध को और अधिक गहराई प्रदान करता है। राम के वनवास के पश्चात अयोध्या का सिंहासन भरत स्वीकार नहीं करते, जिसकी प्राप्ति राम के वनवास जैसी अन्यायपूर्ण परिस्थिति से जुड़ी हो, नैतिक रूप से वैध नहीं हो सकता। वाल्मीकि यह दर्शाते हैं कि आदर्श शासन केवल उत्तराधिकार या राजकीय अधिकार पर आधारित नहीं होता, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व, आत्मसंयम और न्यायबोध पर आधारित होता है।

कम्बन् की कम्ब रामायण में धर्म की यह नैतिक आधारभूमि बनी रहती है, किन्तु उसमें आध्यात्मिक और दैवी आयाम अधिक प्रमुख है। राम का धर्मपालन केवल आदर्श मानवीय आचरण का उदाहरण नहीं है, बल्कि अधर्म के विनाश और धर्म की पुनर्स्थापना से संबंधित दैवी उद्देश्य का भी अंग है। वाल्मीकि और कम्बन् की भिन्न साहित्यिक एवं दार्शनिक दृष्टियों के माध्यम से धर्म एक ओर मानवीय नैतिक संघर्ष के रूप में और दूसरी ओर आध्यात्मिक एवं दैवी सिद्धांत के रूप में उभरता है।

अतः दोनों का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि एक ही मूलभूत नैतिक अवधारणा विभिन्न सांस्कृतिक और साहित्यिक संदर्भों में भिन्न दार्शनिक अर्थ ग्रहण कर सकती है, कि कैसे एक ही बुनियादी अवधारणा रामायण परंपरा में अपना मुख्य महत्त्व बनाए रखते हुए अलग-अलग दार्शनिक पहलुओं को अपना सकती है।

अहल्या प्रसंग : एक तुलनात्मक दृष्टिकोण- अहल्या प्रसंग वाल्मीकि की रामायण और कम्बन् रामायण के तुलनात्मक अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि के संस्करण में, इंद्र के साथ अहल्या का मिलना, गौतम का श्राप और उसके बाद राम द्वारा उसकी मुक्ति को अपराध, दंड, प्रायश्चित और उद्धार के ढांचे के भीतर प्रस्तुत किया गया है। यह प्रसंग नैतिक जिम्मेदारी और सामाजिक नैतिकता से जुड़े जटिल सवाल भी उठाता है। कम्बन् मूल कथा को तो बनाए रखते हैं, लेकिन इसे भक्तिपूर्ण और आध्यात्मिक आयाम देते हैं। राम का आगमन अहल्या की मुक्ति का निर्णायक क्षण बन जाता है, जिससे यह प्रसंग दैवीय कृपा और उद्धार का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार जहाँ वाल्मीकि कर्म, दंड और नैतिक जिम्मेदारी की जटिलताओं को प्रमुखता देते हैं, वहीं कम्बन् करुणा, दैवीय हस्तक्षेप और आध्यात्मिक मुक्ति पर ज़ोर देते हैं। अहल्या प्रसंग का तुलनात्मक अध्ययन यह दिखाता है कि कैसे कम्बन् ने वाल्मीकि की कथा का अनुवाद न कर उसका भक्तिपूर्ण पुनर्व्याख्या किया है।

प्रेम और भावनात्मक सौंदर्यबोध- दोनों महाकाव्यों में चित्रित प्रेम और भावनाओं के चित्रण में अंतर है। हालाँकि दोनों में दुख, विरह, क्रोध, भक्ति और प्रेम जैसी भावनाओं को गहराई से दर्शाया है, लेकिन कम्बन् तमिल साहित्य परंपरा के विशिष्ट सौंदर्यबोध के माध्यम से इन भावनात्मक पहलुओं को और अधिक विस्तार प्रदान करते हैं। वाल्मीकि रामायण में भावनात्मक अनुभवों, विशेषकर विरह और भक्ति के संदर्भ में बहुत गहरा चित्रण मिलता है।

लेकिन कंबन कथा में भावनात्मक और सौंदर्यबोध वाले पहलुओं को और गहरा करते हैं, खासकर राम और सीता के रिश्ते का चित्रण। उनके काव्य में प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन केवल घटनाएँ नहीं हैं बल्कि गहन भावानुभूति के रूप में विकसित होते हैं। कंबन की काव्य दृष्टि की एक विशिष्ट विशेषता प्रकृति का सशक्त और सांकेतिक प्रयोग है। पर्वत, वन, नदियाँ, ऋतुएँ, पुष्प और पक्षियों का वर्णन केवल दृश्य-सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वे पात्रों की मानसिक एवं भावनात्मक अवस्थाओं के प्रतीक के रूप में कार्य करते हैं।

इस प्रकार, जहाँ वाल्मीकि रामायण में भावनाओं का चित्रण मर्यादा, धर्म और यथार्थ के आलोक में विकसित होता है, वहीं कंब रामायण में वही भावनाएँ भक्ति, सौंदर्य और काव्यात्मक संवेदना के साथ अधिक विस्तृत एवं कलात्मक रूप ग्रहण करती हैं।

निष्कर्ष

वाल्मीकि रामायण और कंब रामायण दोनों भारतीय साहित्य की अनुपम धरोहर हैं।

समानताएँ- दोनों ग्रंथों का मुख्य कथानक श्रीराम के जीवन पर आधारित है।

दोनों में सत्य, धर्म, त्याग, प्रेम और आदर्श जीवन का संदेश दिया गया है।

दोनों में राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान के चरित्र प्रेरणादायक हैं।

दोनों भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्यों के प्रमुख स्रोत हैं।

भिन्नताएँ (तुलनात्मक तालिका)-

आधार	वाल्मीकि रामायण	कम्ब रामायण
भाषा	संस्कृत	तमिल
प्रमुख दृष्टि	धर्म एवं मर्यादा	भक्ति एवं ईश्वर
राम का स्वरूप	आदर्श मानव	पूर्ण भगवान
शैली	सरल एवं यथार्थवादी	अलंकारिक एवं भावप्रधान
प्रमुख रस	वीर, करुण, शान्त	भक्ति, करुण

वाल्मीकि रामायण और कम्ब रामायण का तुलनात्मक अध्ययन न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि भारतीय संस्कृति, दर्शन, लोकपरंपरा और राष्ट्रीय एकात्मता को समझने की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी एवं प्रासंगिक है। यह अध्ययन श्भारतीय साहित्य की विविधता में एकताश की अवधारणा को पुष्ट करते हुए यह प्रमाणित करता है कि भिन्न भाषाएँ और सांस्कृतिक परिवेश होने पर भी भारतीय जीवन-दर्शन की मूल चेतना एक और अखंड है।

संदर्भ सूची

1. Comparing Ramayana of Valmiki - Kamban: Ahalya's Episode (by Ashu J. International Journal of Social Science - Humanities Research ISSN 2348-3156 - Volume 4 Issue 4 Oct 2016 - Dec 2016)
2. Kamba Ramayana by P.S. Sundaram (https://www.goodreads.com/author/show/406750.P-S-Sundaram)
3. Ramayana: Valmiki - Kamban / Shubhendu Mondal (Pp 30-36 Open access - Trisangam International Refereed Journal, Vol 4 No. 4, 2024)

डीन, श्री कन्यका परमेश्वरी कला एवं विज्ञान महिला महाविद्यालय (SKPC) चेन्नई, तमिलनाडु

No- 1, Audiappa Street, Chennai - 600001, Mob - 8939666719

आदिवासी और दलित समाज में बौद्ध धर्म का प्रभाव

प्रियंवदा शबर

सारांश- प्रस्तुत शोध में आदिवासी समाज और बौद्ध धर्म के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया गया है। आदिवासी समाज प्रकृति-पूजा, सामुदायिक जीवन और प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व में विश्वास रखता है। बौद्ध धर्म की करुणा, अहिंसा, समता और मानव-मर्यादा पर आधारित शिक्षाओं तथा आदिवासी जीवन-दृष्टि के बीच अनेक वैचारिक एवं सांस्कृतिक समानताएँ दिखाई देती हैं। बौद्ध भिक्षुओं ने धर्म-प्रचार के दौरान अनेक जनजातीय क्षेत्रों की यात्राएँ कीं, जिसके परिणामस्वरूप अनेक आदिवासी समुदाय बौद्ध धर्म से प्रभावित हुए। इसका प्रमाण प्राचीन साहित्य, ऐतिहासिक अभिलेखों, चीनी यात्रियों के यात्रा-वृत्तांतों तथा लद्दाख, अरुणाचल प्रदेश और असम जैसे क्षेत्रों में स्थित बौद्ध स्तूपों, विहारों और मठों से प्राप्त होता है। शोध में यह भी स्पष्ट किया गया है कि बौद्ध धर्म ने जाति-आधारित भेदभाव का विरोध करते हुए समानता, करुणा और सामाजिक न्याय का संदेश दिया। यही कारण है कि दलित समाज के एक बड़े वर्ग ने डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में बौद्ध धर्म को आत्मसम्मान और सामाजिक मुक्ति के माध्यम के रूप में अपनाया। यद्यपि समय के साथ भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव अपेक्षाकृत कम हुआ, फिर भी इसकी मानवीय शिक्षाएँ आज भी भारत सहित विश्व के अनेक देशों में समान रूप से प्रासंगिक हैं। अंततः यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि बौद्ध धर्म और आदिवासी समाज का संबंध केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। यह संबंध भारतीय संस्कृति की बहुलतावादी परंपरा को समृद्ध करता है तथा सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक संरक्षण और समावेशी विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है।

प्रमुख बिंदु : आदिवासी, दलित, बौद्ध धर्म, अम्बेडकरवादी विचार,

प्रस्तावना : भारतीय संस्कृति की जड़ें अत्यंत गहरी हैं और इसकी परंपराएँ अत्यंत समृद्ध हैं। यह संस्कृति समय के साथ निरंतर विकसित हुई है, जिसमें विभिन्न धर्मों, विचारधाराओं और समाजों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बौद्ध धर्म का उद्भव लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारत में हुआ। बौद्ध धर्म ने भारतीय समाज, विशेषकर दलित समुदाय को समानता, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा का संदेश दिया। जहाँ हिंदू समाज की वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत दलितों को अपमानजनक एवं निम्न सामाजिक स्थिति में रखा गया था, वहीं बौद्ध धर्म ने उन्हें समानता, सम्मान और अधिकारों का महत्व प्रदान किया। जुबैर अहमद ने अपनी आलेख में उदित राज के कही हुई बात लिखते है -"दलितों को इज्जत तभी मिलेगी जब वे मौजूदा सामाजिक वर्ण व्यवस्था से बाहर निकलेंगे. इसीलिए दलित-आदिवासी बौद्ध धर्म अपना रहे हैं।" आदिवासी समाज बहुआयामी एवं विविधतापूर्ण है। अधिकांश आदिवासी समुदाय प्रकृति-पूजा में विश्वास रखते हैं तथा प्रकृति को अपने जीवन और संस्कृति का अभिन्न अंग मानते हैं। यदि बौद्ध धर्म और आदिवासी समाज के संबंधों का अध्ययन किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि बौद्ध भिक्षुओं ने धर्म-प्रचार के दौरान अनेक आदिवासी क्षेत्रों की यात्राएँ कीं। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और आदिवासी प्रकृति-पूजा की परंपराओं में कई स्तरों पर सामंजस्य दिखाई देता है। यही कारण है कि अनेक आदिवासी समुदायों पर बौद्ध धर्म का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। इसका प्रमाण प्राचीन साहित्य, ऐतिहासिक स्रोतों तथा आज भी लद्दाख, असम और अरुणाचल प्रदेश

के आदिवासी क्षेत्रों में स्थित बौद्ध स्तूपों, मठों और अन्य बौद्ध स्मारकों से प्राप्त होता है। आदिवासी आध्यात्मिकता और बौद्ध धर्म की मान्यताओं में अनेक समानताएँ दिखाई देती हैं। अधिकांश आदिवासी समुदाय प्रकृति-आधारित आस्था-परंपरा का पालन करते हैं। इस आस्था के अंतर्गत सूर्य, चंद्रमा, पर्वत, नदियों, वनों तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों को पवित्र मानकर उनकी पूजा और सम्मान किया जाता है। हालांकि, कुछ आदिवासी समुदाय ऐसे भी हैं जो बौद्ध धर्म का पालन करते हैं। इनमें से कुछ ने बौद्ध धर्म को समय के साथ अपनाया है, जबकि कुछ समुदायों में यह उनकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा रहा है। बारहवीं शताब्दी तक भारत के अधिकांश भागों में बौद्ध धर्म के प्रभाव में उल्लेखनीय कमी आ गई थी, जबकि एशिया के अनेक पूवी क्षेत्रों में इसका व्यापक प्रसार और विकास हो रहा था। माना जाता है कि अरुणाचल प्रदेश में बौद्ध धर्म दो प्रमुख परंपराओं थेरवाद और महायान के रूप में पहुँचा। इन दोनों परंपराओं का प्रभाव वहाँ की कला, वास्तुकला, संस्कृति तथा आदिवासीयों जीवन-शैली में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अरुणाचल प्रदेश की सिंगफो, खाम्पती और तांगसा आदिवासी मुख्यतः थेरवाद बौद्ध धर्म का पालन करती हैं, जबकि मोनपा, शेरडुकपेन, मेम्बा और बुगुन आदिवासी महायान बौद्ध धर्म की अनुयायी हैं। दोनों परंपराओं में आत्मा, प्रकृति के साथ संतुलन, जीवन-चक्र तथा परलोक संबंधी विश्वासों का विशेष महत्व है। ये समानताएँ आदिवासी आध्यात्मिकता और बौद्ध धर्म के बीच वैचारिक संबंध को स्पष्ट करती हैं। आदिवासी मान्यताओं के अनुसार आत्माएँ अमूर्त और अमर होती हैं तथा वे मनुष्य के अस्तित्व का अभिन्न अंग मानी जाती हैं। वहीं, बौद्ध धर्म में जीव पुनर्जन्म और दुःख के चक्र (संसार) से बँधा माना जाता है तथा मोक्ष (निर्वाण) की प्राप्ति को इस चक्र से मुक्ति का मार्ग बताया गया है। कुछ दक्षिणपंथी हिंदू संगठन इस प्रकार के धर्मांतरणों का विरोध करते रहे हैं। धर्मांतरण करने वाले लोगों का मानना है कि इसके माध्यम से वे जाति-आधारित उस सामाजिक व्यवस्था से बाहर निकल सकेंगे, जिसमें उन्हें सबसे निचले स्तर पर रखा गया है। यद्यपि सरकार ने दलितों और आदिवासी के लिए आरक्षण की व्यवस्था की है, फिर भी उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो सका है। भारत में धर्मांतरण का विषय लंबे समय से विवाद का विषय रहा है, विशेषकर जब धर्मांतरण हिंदू धर्म से इस्लाम या ईसाई धर्म में होता है। इसके विपरीत, हिंदू धर्म से बौद्ध धर्म ग्रहण करने का अपेक्षाकृत कम विरोध देखने को मिलता है, क्योंकि अनेक लोग बौद्ध धर्म को भारतीय धार्मिक-दार्शनिक परंपरा से संबद्ध मानते हैं। “समाज सर्वथा वर्गों से मिलकर बनाता है। इसमें वर्ग - संघर्ष के सिद्धान्त पर बल देता अतिशयोंकित हो सकती है, परंतु यह सच है कि समाज में कुछ निशचत वर्ग होते है। आधार भिन्न हो सकते है। वे वर्ग अर्थिक, आध्यात्मिक या समाजिक हो सकते है।” ऐतिहासिक रूप से वंचित एवं उत्पीड़ित समुदायों विशेषकर दलितों और आदिवासीयों के लिए धर्मांतरण सामाजिक सम्मान, समानता और दमनकारी सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त करने के एक प्रभावी साधन के रूप में उभरकर सामने आया है। कई दलितों ने बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम या सिख धर्म को इसलिए अपनाया क्योंकि इन धर्मों में समानता और भाईचारे का विचार अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देता है। कुछ मामलों में मिशनरी संस्थाओं ने शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाएँ भी प्रदान कीं, जो ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों के लिए महत्वपूर्ण अवसर बने। विशेष रूप से दूरदराज़ क्षेत्रों में इन संस्थाओं ने सामाजिक उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

दूसरी ओर, यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए, तो सारनाथ और नालंदा जैसे बौद्ध केंद्र इस बात के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं कि जिन क्षेत्रों के आसपास आदिवासीयों समुदाय निवास करते थे, वहाँ बौद्ध धर्म का प्रभाव व्यापक रूप से विद्यमान था। इसके अतिरिक्त, कुछ चीनी यात्रियों के यात्रा-वृत्तांतों में भी उल्लेख मिलता है कि वन एवं आदिवासीयों क्षेत्रों में बौद्ध स्तूपों और विहारों का अस्तित्व था। समय के साथ भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। इसके साथ ही, सांस्कृतिक समन्वय और संस्कृतिकरण की प्रक्रियाओं के कारण अनेक आदिवासी समुदायों पर हिंदू धर्म का प्रभाव बढ़ा। बाद के काल में ईसाई तथा इस्लाम धर्म का प्रभाव भी कुछ आदिवासीयों क्षेत्रों में देखा गया। भगवान बुद्ध ने स्वयं को कभी ईश्वर नहीं कहा। ‘बुद्ध’ शब्द का अर्थ है—‘जागृत’ या ‘ज्ञान प्राप्त व्यक्ति’। बौद्ध धर्म जाति-आधारित भेदभाव का समर्थन नहीं करता, बल्कि समानता, करुणा और मानव-मर्यादा पर बल देता है। यही कारण है कि दलित समाज के एक वर्ग में बौद्ध धर्म के प्रति विशेष आकर्षण विकसित हुआ। दलित वे समुदाय हैं, जो सदियों तक जाति-आधारित सामाजिक व्यवस्था के कारण अपने अधिकारों,

सम्मान और अवसरों से वंचित रहे। इस सामाजिक विषमता के परिणामस्वरूप अनेक दलितों ने समानता और आत्मसम्मान की खोज में बौद्ध धर्म सहित अन्य धर्मों को अपनाया। वर्ष 1956 में डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण किए जाने के बाद बड़ी संख्या में उनके अनुयायी भी बौद्ध धर्म की ओर प्रेरित हुए और उन्होंने धर्मांतरण किया।

निष्कर्ष

यद्यपि बौद्ध धर्म का उद्‌भव भारत में हुआ, फिर भी आज भारत में इसका प्रभाव अपेक्षाकृत सीमित है। इतिहास के विभिन्न कालों में राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिवर्तनों के कारण भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। इसके बावजूद बौद्ध धर्म के सिद्धांत, जैसे करुणा, अहिंसा, समता और मानवता, कभी लुप्त नहीं हुए। आज भले ही भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव सीमित दिखाई देता हो, किंतु एशिया सहित विश्व के अनेक देशों में इसका व्यापक प्रसार हुआ है और इसकी शिक्षाएँ आज भी मानव समाज का मार्गदर्शन कर रही हैं। भारत के आदिवासी समुदायों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव व्यापक, जटिल एवं बहुआयामी रहा है। इसने सामाजिक सुधारों को प्रोत्साहित किया, धार्मिक समन्वय को सुदृढ़ बनाया तथा राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास को भी प्रभावित किया। यद्यपि समय के साथ बौद्ध धर्म के प्रभाव में कमी आई, जिसके परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में पारंपरिक आदिवासीयों आस्थाओं और मान्यताओं का पुनरुत्थान हुआ, फिर भी इसकी सांस्कृतिक एवं वैचारिक विरासत आज भी अनेक आदिवासीयों समुदायों की जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक संरचनाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। बौद्ध धर्म केवल एक धर्म नहीं, बल्कि मानवीय नैतिक मूल्यों पर आधारित जीवन-दर्शन है। भगवान बुद्ध ने सदैव यह प्रतिपादित किया कि वे स्वयं कोई ईश्वर नहीं हैं तथा समाज के सभी मनुष्य समान हैं। उनके अनुसार करुणा, प्रेम, अहिंसा और समता के माध्यम से समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है। भारत एक बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक देश है, जहाँ अनेक धर्मों के लोग निवास करते हैं। भारत में जाति और वर्ण-व्यवस्था का इतिहास अत्यंत प्राचीन है, जिसके कारण समाज का एक बड़ा वर्ग लंबे समय तक शोषण, भेदभाव और सामाजिक असमानता का शिकार रहा। इस सामाजिक परिस्थिति के कारण समय-समय पर विभिन्न बाहरी धर्मों, जैसे इस्लाम और ईसाई धर्म, का भी भारत में प्रसार हुआ। भारत में उत्पन्न बौद्ध धर्म ने समानता, करुणा और मानव-मर्यादा पर आधारित समाज की स्थापना का संदेश दिया तथा सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखने की प्रेरणा प्रदान की। भारत की आदिवासीयों विरासत की विविधता, समृद्धि और अनुकूलनशीलता को समझने के लिए इस ऐतिहासिक अंतर्संबंध का अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। साथ ही, आदिवासी समुदायों के समावेशी सामाजिक-आर्थिक विकास तथा उनकी सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण के उद्देश्य से प्रभावी नीतियों के निर्माण में भी यह समझ उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सन्दर्भ सूची

i. जुबैर अहमद, बीबीसी संवाददाता, मुंबई
ii. अंबेडकर : सम्पूर्ण वाड़मय, खंड -1
iii. जुबैर अहमद,बीबीसी संवाददाता, मुंबई- https://www.bbc.com/hindi/regionalnews/story/2007/05/070527_dalit_conversion
iv. https://arunachallivingheritage.com/blog-1
v. डॉ. धर्मकीर्ति -समस्त मुंडा जाति बौद्ध थी

(शोधार्थी) हिन्दी विभाग,
कलिंग इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल
साईसेज मानित विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, ऑडिशा

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

डिजिटल युग में रामायण पर्यटन सर्किट : सांस्कृतिक विरासत और वैश्विक संवाद के नए आयाम

डॉ. जैस्मीन पटनायक

रामायण भारतीय सांस्कृतिक चेतना का ऐसा आधारग्रंथ है, जिसने केवल धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन को ही नहीं, बल्कि भारतीय समाज, कला, साहित्य, स्थापत्य, लोकसंस्कृति और नैतिक मूल्यों को भी गहराई से प्रभावित किया है। वर्तमान डिजिटल युग में रामायण से जुड़े तीर्थस्थलों और सांस्कृतिक धरोहरों को एक समन्वित पर्यटन परिपथ के रूप में विकसित करने की दिशा में रामायण पर्यटन सर्किट एक महत्त्वपूर्ण पहल के रूप में उभरा है। यह केवल धार्मिक पर्यटन की योजना नहीं है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नए संदर्भों में स्थापित करने का सशक्त माध्यम भी है।डिजिटल प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, भू-स्थानिक सूचना प्रणाली, वर्चुअल रियलिटी, डिजिटल अभिलेखीकरण, मोबाइल अनुप्रयोग तथा स्मार्ट पर्यटन सेवाओं ने तीर्थयात्रा के स्वरूप को व्यापक रूप से परिवर्तित किया है। आज श्रद्धालु और पर्यटक डिजिटल मानचित्रों, बहुभाषिक सूचना प्रणालियों, ऑनलाइन बुकिंग, वर्चुअल भ्रमण तथा डिजिटल संग्रहालयों के माध्यम से रामायण से जुड़े स्थलों का अधिक सुव्यवस्थित, ज्ञानवर्धक और अनुभवपरक अध्ययन कर सकते हैं। इससे भारतीय सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, प्रस्तुतीकरण तथा वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार अधिक प्रभावी हुआ है।डिजिटल युग के संदर्भ में रामायण पर्यटन सर्किट की सांस्कृतिक, पर्यटन संबंधी तथा वैश्विक उपयोगिता का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि डिजिटल तकनीक ने रामायण को केवल धार्मिक आस्था का विषय न रहने देकर सांस्कृतिक संवाद, विरासत संरक्षण और अंतरराष्ट्रीय पर्यटन के महत्त्वपूर्ण आधार के रूप में स्थापित किया है। स्थानीय समुदायों की सहभागिता, सतत पर्यटन, डिजिटल नवाचार तथा सांस्कृतिक प्रामाणिकता के मध्य संतुलन बनाए बिना इस योजना की दीर्घकालिक सफलता संभव नहीं है।डिजिटल युग में रामायण पर्यटन सर्किट भारतीय संस्कृति, पर्यटन विकास और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद के मध्य एक सशक्त सेतु के रूप में उभर रहा है। यह न केवल भारत की सांस्कृतिक पहचान को विश्व स्तर पर सुदृढ़ करता है, बल्कि सांस्कृतिक कूटनीति, स्थानीय विकास तथा मानवता के साझा मूल्यों के प्रसार में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

बीज शब्द : रामायण पर्यटन सर्किट, डिजिटल विरासत, सांस्कृतिक पर्यटन, स्मार्ट पर्यटन, वैश्विक संवाद, भारतीय संस्कृति, डिजिटल मानविकी

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी निरंतरता, समावेशिता और सार्वभौमिक दृष्टि है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान डिजिटल युग तक भारतीय ज्ञान-परंपरा ने मानवता को केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन ही नहीं दिया, बल्कि जीवन-मूल्यों, सांस्कृतिक सह-अस्तित्व और नैतिक चेतना की ऐसी दृष्टि प्रदान की है, जो समय और सीमाओं से परे है। भारतीय महाकाव्यों में रामायण का स्थान केवल एक धार्मिक ग्रंथ के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, संस्कृति, लोकजीवन और मानवीय आदर्शों के जीवंत दस्तावेज़ के रूप में स्थापित है। मर्यादा, कर्तव्य, करुणा, न्याय, सहिष्णुता, पारिवारिक मूल्यों तथा लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत रामायण भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृति का अभिन्न अंग है। यही कारण है कि इसका प्रभाव भारत तक सीमित न रहकर नेपाल, श्रीलंका, इंडोनेशिया, थाईलैंड, कंबोडिया, लाओस, मलेशिया, मॉरीशस,

फिजी और विश्व के अनेक देशों तक विस्तृत हुआ है। इक्कीसवीं शताब्दी में वैश्वीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल क्रांति ने संस्कृति और पर्यटन की पारंपरिक अवधारणाओं को नए आयाम प्रदान किए हैं। आज पर्यटन केवल मनोरंजन अथवा धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक अनुभव, विरासत संरक्षण, स्थानीय विकास और वैश्विक संवाद का प्रभावी माध्यम बन चुका है। इसी व्यापक दृष्टि के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा विकसित रामायण पर्यटन सर्किट सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और धार्मिक-आध्यात्मिक पर्यटन के सुदृढ़ीकरण की एक महत्त्वपूर्ण पहल है। यह सर्किट भगवान श्रीराम के जीवन से जुड़े प्रमुख स्थलों को एक सांस्कृतिक परिपथ में जोड़ते हुए भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहर को राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नई पहचान प्रदान करता है। डिजिटल युग ने इस सांस्कृतिक पहल को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल अभिलेखीकरण, वर्चुअल रियलिटी, ऑगमेंटेड रियलिटी, भू-स्थानिक सूचना प्रणाली, मोबाइल अनुप्रयोग, बहुभाषिक डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म तथा स्मार्ट पर्यटन सेवाओं ने तीर्थयात्रा के स्वरूप को व्यापक रूप से परिवर्तित किया है। आज श्रद्धालु और पर्यटक किसी भी तीर्थस्थल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक महत्ता, यात्रा मार्ग, स्थानीय परंपराओं तथा उपलब्ध सुविधाओं की जानकारी डिजिटल माध्यमों से सहजता से प्राप्त कर सकते हैं। इससे यात्रा केवल धार्मिक अनुष्ठान न रहकर ज्ञान, संस्कृति और अनुभव का समन्वित आयाम बन गई है।रामायण पर्यटन सर्किट का महत्त्व केवल धार्मिक पर्यटन तक सीमित नहीं है। यह भारतीय संस्कृति की सॉफ्ट पावर, सांस्कृतिक कूटनीति और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद का भी सशक्त माध्यम है। दक्षिण-पूर्व एशिया सहित विश्व के अनेक देशों में रामकथा विविध भाषाओं, लोकनाट्यों, नृत्य-परंपराओं और साहित्यिक कृतियों के रूप में आज भी जीवंत है। ऐसे में रामायण से जुड़े स्थलों का डिजिटल रूप से प्रलेखन, संरक्षण और वैश्विक प्रस्तुतीकरण भारत की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा सकता है। यह पहल भारतीय संस्कृति को विश्व समुदाय के साथ संवाद स्थापित करने का अवसर प्रदान करती है तथा सांस्कृतिक पर्यटन को अंतरराष्ट्रीय सहयोग का आधार भी बनाती है। डिजिटल तकनीक ने पर्यटन को अधिक सुविधाजनक, सुलभ और आकर्षक बनाया है, तथापि इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। सांस्कृतिक प्रामाणिकता का संरक्षण, स्थानीय समुदायों की सहभागिता, विरासत स्थलों का सतत प्रबंधन, पर्यावरणीय संतुलन तथा डिजिटल संसाधनों की समान उपलब्धता ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर गंभीर विचार अपेक्षित है। यदि तकनीकी विकास और सांस्कृतिक संवेदनशीलता के मध्य संतुलन स्थापित किया जाए, तभी रामायण पर्यटन सर्किट अपने वास्तविक उद्देश्य की सार्थक पूर्ति कर सकेगा। डिजिटल युग के संदर्भ में रामायण पर्यटन सर्किट के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैश्विक आयामों का विश्लेषण करना है। साथ ही यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि आधुनिक डिजिटल तकनीक और भारतीय सांस्कृतिक विरासत का समन्वय न केवल पर्यटन को नई दिशा प्रदान कर रहा है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान, अंतरराष्ट्रीय संवाद और सतत विकास की अवधारणा को भी सुदृढ़ कर रहा है।

इस प्रकार रामायण पर्यटन सर्किट परंपरा और आधुनिकता के सृजनात्मक समन्वय का एक सशक्त उदाहरण बनकर उभरता है। रामायण भारतीय संस्कृति, आस्था और नैतिक जीवन-दृष्टि का ऐसा महाकाव्य है, जिसने सहस्राब्दियों से भारतीय समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण केवल भगवान श्रीराम के जीवन का आख्यान नहीं, बल्कि सत्य, धर्म, मर्यादा, करुणा, कर्तव्य और लोकमंगल जैसे शाश्वत मानवीय मूल्यों का जीवन-दर्शन भी है। इसी सांस्कृतिक विरासत को जन-जन तक पहुँचाने तथा उससे जुड़े ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों को एक समन्वित पर्यटन परिपथ के रूप में विकसित करने की अवधारणा को रामायण पर्यटन सर्किट कहा जाता है। रामायण पर्यटन सर्किट का उद्देश्य श्रीराम के जीवन, वनगमन, संघर्ष और आदर्शों से जुड़े प्रमुख स्थलों को सांस्कृतिक एवं पर्यटन की दृष्टि से एक सूत्र में जोड़ना है। अयोध्या, चित्रकूट, श्रृंगवेरपुर, प्रयागराज, पंचवटी (नासिक), हम्पी (किष्किंधा), रामेश्वरम् तथा अन्य अनेक स्थल इस सांस्कृतिक यात्रा के महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं। इन स्थानों का महत्त्व केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि ये भारतीय इतिहास, लोकपरंपरा, कला, स्थापत्य, लोककथाओं तथा सांस्कृतिक स्मृतियों के जीवंत प्रतीक भी हैं।भारत सरकार द्वारा स्वदेश दर्शन योजना के अंतर्गत विकसित रामायण पर्यटन सर्किट सांस्कृतिक पर्यटन को

प्रोत्साहित करने की एक महत्त्वपूर्ण पहल है। इसका उद्देश्य तीर्थयात्रा को आधुनिक पर्यटन सुविधाओं, आधारभूत संरचना, डिजिटल सूचना प्रणाली तथा सांस्कृतिक संरक्षण के साथ जोड़ना है। यह पहल स्थानीय अर्थव्यवस्था, हस्तशिल्प, लोककला, पारंपरिक आजीविका तथा सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण को भी नई ऊर्जा प्रदान करती है।सांस्कृतिक दृष्टि से रामायण पर्यटन सर्किट भारत की 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की भावना को सुदृढ़ करता है। इसके साथ ही यह भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के उन देशों के मध्य सांस्कृतिक सेतु का कार्य करता है, जहाँ रामकथा आज भी लोकजीवन, साहित्य, रंगमंच और धार्मिक परंपराओं का अभिन्न अंग है। इस प्रकार रामायण पर्यटन सर्किट केवल तीर्थस्थलों का समूह नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना, आध्यात्मिक विरासत और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद का सशक्त माध्यम है। वर्तमान डिजिटल युग में यह सर्किट भारतीय संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और विश्वव्यापी प्रसार का एक महत्त्वपूर्ण आधार बनकर उभर रहा है। डिजिटल युग ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन उपस्थित किए हैं। शिक्षा, संचार, ज्ञान-विज्ञान और पर्यटन की भाँति सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं संवर्धन के क्षेत्र में भी डिजिटल तकनीकों ने नए आयाम स्थापित किए हैं। भारतीय संस्कृति, जो अपनी प्राचीनता, विविधता और आध्यात्मिक चेतना के लिए विश्वभर में सम्मानित है, आज डिजिटल माध्यमों के द्वारा वैश्विक स्तर पर अधिक प्रभावी ढंग से संरक्षित और प्रसारित हो रही है।

इस संदर्भ में रामायण पर्यटन सर्किट भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को आधुनिक तकनीक से जोड़ने का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।सांस्कृतिक विरासत केवल ऐतिहासिक स्मारकों, मंदिरों और पुरातात्त्विक अवशेषों तक सीमित नहीं होती, बल्कि उसमें लोकपरंपराएँ, धार्मिक आस्थाएँ, साहित्य, लोककथाएँ, उत्सव, कला, संगीत और जीवन-मूल्य भी समाहित रहते हैं। डिजिटल तकनीक ने इन अमूर्त एवं मूर्त विरासतों के संरक्षण को अधिक व्यवस्थित, सुरक्षित और सुलभ बनाया है। आज त्रि-आयामी प्रलेखन, डिजिटल अभिलेखीकरण, वर्चुअल रियलिटी, ऑगमेंटेड रियलिटी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा भू-स्थानिक सूचना प्रणाली जैसी तकनीकों के माध्यम से सांस्कृतिक धरोहरों का वैज्ञानिक संरक्षण और प्रामाणिक दस्तावेजीकरण संभव हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप भावी पीढ़ियाँ भी इन अमूल्य धरोहरों का अध्ययन और अनुभव सहजता से कर सकती हैं। रामायण पर्यटन सर्किट के संदर्भ में डिजिटल तकनीक की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डिजिटल मानचित्र, बहुभाषिक मोबाइल अनुप्रयोग, वर्चुअल भ्रमण, ऑनलाइन सूचना केंद्र तथा डिजिटल संग्रहालय श्रद्धालुओं और पर्यटकों को रामायण से जुड़े स्थलों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता से परिचित कराते हैं। इससे यात्रा केवल दर्शन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि ज्ञान, संस्कृति और इतिहास से जुड़े एक समृद्ध अनुभव में परिवर्तित हो जाती है। साथ ही, डिजिटल मंचों के माध्यम से विश्व के विभिन्न देशों में रहने वाले लोग भी भारतीय सांस्कृतिक विरासत से सहज रूप से जुड़ पा रहे हैं।डिजिटल तकनीक सांस्कृतिक संरक्षण की दिशा में अनेक नई संभावनाएँ प्रदान करती है, तथापि इसके उपयोग में प्रामाणिकता, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और स्थानीय समुदायों की सहभागिता सुनिश्चित करना भी उतना ही आवश्यक है। यदि तकनीकी नवाचार को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और विरासत की मौलिकता के साथ संतुलित किया जाए, तो डिजिटल युग सांस्कृतिक संरक्षण का एक प्रभावी माध्यम सिद्ध होगा। इस प्रकार डिजिटल तकनीक केवल विरासत के संरक्षण का साधन नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में नई पहचान प्रदान करने वाला सशक्त सेतु भी है। वर्तमान समय में पर्यटन केवल मनोरंजन अथवा धार्मिक यात्रा का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान, आर्थिक विकास, स्थानीय सहभागिता तथा वैश्विक संवाद का एक सशक्त साधन बन चुका है। इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में रामायण पर्यटन सर्किट भारतीय सांस्कृतिक विरासत, आध्यात्मिक चेतना और पर्यटन उद्योग के मध्य एक प्रभावी सेतु के रूप में उभरकर सामने आया है। यह पहल भगवान श्रीराम के जीवन से जुड़े विभिन्न स्थलों को एक समन्वित सांस्कृतिक परिपथ में जोड़ते हुए यात्रियों को केवल धार्मिक अनुभव ही नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, इतिहास, लोकसंस्कृति और जीवन-मूल्यों से भी परिचित कराती है।रामायण पर्यटन सर्किट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पर्यटन को आस्था, संस्कृति और ज्ञान के साथ जोड़ता है। अयोध्या, चित्रकूट, प्रयागराज, शृंगवेरपुर, पंचवटी, किष्किंधा, रामेश्वरम् तथा अन्य रामायणकालीन स्थलों की यात्रा श्रद्धालुओं को केवल पूजा-अर्चना तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उन्हें भारतीय इतिहास, स्थापत्य कला, लोकविश्वास, धार्मिक परंपराओं

और सांस्कृतिक विविधता के व्यापक स्वरूप से भी परिचित कराती है।

इस प्रकार यह सर्किट सांस्कृतिक पर्यटन की उस अवधारणा को सुदृढ़ करता है, जिसमें यात्रा ज्ञान, अनुभव और आत्मबोध का माध्यम बन जाती है।डिजिटल युग में रामायण पर्यटन सर्किट ने पर्यटन के स्वरूप को और अधिक व्यापक तथा आधुनिक बनाया है। ऑनलाइन पंजीकरण, डिजिटल मार्गदर्शन, बहुभाषिक मोबाइल अनुप्रयोग, वर्चुअल भ्रमण, ई-गाइड, क्यूआर कोड आधारित सूचना प्रणाली तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित स्मार्ट सेवाओं ने यात्रियों के अनुभव को अधिक सहज, सुरक्षित और ज्ञानवर्धक बनाया है। अब पर्यटक किसी भी तीर्थस्थल के इतिहास, सांस्कृतिक महत्त्व, स्थापत्य, स्थानीय परंपराओं तथा यात्रा संबंधी आवश्यक जानकारी डिजिटल माध्यमों से तत्काल प्राप्त कर सकते हैं। इससे पर्यटन केवल स्थल-दर्शन तक सीमित न रहकर सांस्कृतिक अधिगम और अनुभवपरक शिक्षा का माध्यम बन गया है।रामायण पर्यटन सर्किट स्थानीय अर्थव्यवस्था और ग्रामीण विकास के लिए भी महत्त्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है। पर्यटन गतिविधियों के विस्तार से स्थानीय हस्तशिल्प, लोककलाएँ, पारंपरिक भोजन, सांस्कृतिक उत्सव तथा लघु उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है। इससे स्थानीय समुदायों के लिए रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व भी विकसित होता है। जब स्थानीय समाज पर्यटन प्रक्रिया का सक्रिय सहभागी बनता है, तब सांस्कृतिक संरक्षण और आर्थिक विकास परस्पर पूरक रूप में विकसित होते हैं।वैश्विक परिप्रेक्ष्य में रामायण पर्यटन सर्किट भारत की सांस्कृतिक कूटनीति को भी नई दिशा प्रदान करता है।

नेपाल, श्रीलंका, इंडोनेशिया, थाईलैंड, कंबोडिया तथा अन्य अनेक देशों में रामकथा विभिन्न सांस्कृतिक रूपों में आज भी जीवंत है। ऐसे में रामायण से जुड़े स्थलों का सुव्यवस्थित विकास और उनका डिजिटल प्रस्तुतीकरण अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक सहयोग तथा पर्यटन को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यह पहल भारत की सांस्कृतिक विरासत को विश्व समुदाय के समक्ष सम्मानपूर्वक प्रस्तुत करने के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति की सकारात्मक छवि को भी सशक्त बनाती है।रामायण पर्यटन सर्किट केवल धार्मिक पर्यटन की योजना नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, सतत पर्यटन, स्थानीय विकास और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद का बहुआयामी मॉडल है। यदि इसमें आधुनिक तकनीक, पर्यावरणीय संतुलन, सांस्कृतिक प्रामाणिकता तथा स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी को समान महत्त्व दिया जाए, तो यह सर्किट भविष्य में भारत के सांस्कृतिक पर्यटन का एक आदर्श प्रतिमान सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार रामायण पर्यटन सर्किट परंपरा और आधुनिकता के समन्वय का ऐसा सृजनात्मक उदाहरण है, जो भारतीय सांस्कृतिक विरासत को विश्व-पटल पर नई प्रतिष्ठा प्रदान करने की क्षमता रखता है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में संस्कृति केवल किसी राष्ट्र की ऐतिहासिक धरोहर नहीं रह गई है, बल्कि वह अंतरराष्ट्रीय संवाद, पारस्परिक समझ और वैश्विक सहयोग का एक प्रभावी माध्यम बन चुकी है। इसी संदर्भ में रामायण पर्यटन सर्किट भारतीय सांस्कृतिक कूटनीति के एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभर रहा है। यह केवल धार्मिक पर्यटन की अवधारणा तक सीमित नहीं है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान, आध्यात्मिक परंपरा और मानवीय मूल्यों को विश्व समुदाय के समक्ष सार्थक रूप से प्रस्तुत करने का सशक्त माध्यम भी है। मर्यादा, सत्य, त्याग, करुणा, कर्तव्य और लोककल्याण जैसे रामायण के सार्वभौमिक जीवन-मूल्य आज भी विश्व के विविध समाजों में समान रूप से प्रासंगिक हैं। यही कारण है कि रामकथा ने भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए अनेक देशों की सांस्कृतिक चेतना में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। डिजिटल प्रौद्योगिकी ने इस सांस्कृतिक संवाद को अभूतपूर्व गति प्रदान की है। आज वेबसाइटों, डिजिटल संग्रहालयों, वर्चुअल प्रदर्शिनियों, मोबाइल अनुप्रयोगों, बहुभाषिक पोर्टलों, पॉडकास्ट, वेबिनार तथा सोशल मीडिया मंचों के माध्यम से रामायण से संबंधित ज्ञान-सामग्री विश्वभर में सहज रूप से उपलब्ध है। कोई भी शोधार्थी, पर्यटक अथवा जिज्ञासु व्यक्ति अपने देश में रहते हुए रामायण से जुड़े तीर्थस्थलों, ऐतिहासिक स्रोतों, सांस्कृतिक परंपराओं तथा लोककलाओं का अध्ययन कर सकता है। इस प्रकार डिजिटल मंचों ने ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करते हुए भारतीय सांस्कृतिक विरासत को वैश्विक स्तर पर अधिक सुलभ और संवादपरक बनाया है। सांस्कृतिक कूटनीति की दृष्टि से रामायण पर्यटन सर्किट भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया सहित अनेक देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

नेपाल, श्रीलंका, इंडोनेशिया, थाईलैंड, कंबोडिया, लाओस और मॉरीशस जैसे देशों में रामायण केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि लोकजीवन, साहित्य, नृत्य, रंगमंच और सांस्कृतिक उत्सवों की जीवंत परंपरा है। इन देशों के साथ संयुक्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों, अंतरराष्ट्रीय रामायण महोत्सवों, शैक्षणिक आदान-प्रदान, शोध-सहयोग तथा डिजिटल सांस्कृतिक परियोजनाओं के माध्यम से भारत वैश्विक सांस्कृतिक साझेदारी को और अधिक सुदृढ़ कर सकता है।इसके साथ ही डिजिटल मंचों ने सांस्कृतिक विरासत के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को भी गति दी है। अब ज्ञान केवल पुस्तकालयों और अभिलेखागारों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि प्रत्येक नागरिक की पहुँच में है। यह परिवर्तन नई पीढ़ी को भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं से जोड़ने के साथ-साथ विश्व समुदाय में भारत की सकारात्मक सांस्कृतिक छवि को भी सुदृढ़ करता है। तथापि यह आवश्यक है कि डिजिटल माध्यमों पर उपलब्ध सामग्री की प्रामाणिकता, सांस्कृतिक संवेदनशीलता तथा ऐतिहासिक विश्वसनीयता सुनिश्चित की जाए, ताकि विरासत का प्रस्तुतीकरण तथ्यपरक और संतुलित बना रहे।वैश्विक संवाद, सांस्कृतिक कूटनीति और डिजिटल मंचों का समन्वय रामायण पर्यटन सर्किट को केवल एक पर्यटन परियोजना नहीं रहने देता, बल्कि उसे अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक सहयोग, सभ्यताओं के संवाद और मानवीय मूल्यों के वैश्विक प्रसार का सशक्त माध्यम बना देता है। डिजिटल युग में यह पहल भारत की सांस्कृतिक विरासत को विश्व समुदाय से जोड़ने वाली एक जीवंत और दूरदर्शी सांस्कृतिक यात्रा के रूप में स्थापित हो रही है। डिजिटल युग में रामायण पर्यटन सर्किट भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, पर्यटन संवर्धन और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है। यद्यपि इस परियोजना ने अनेक नई संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त किया है, तथापि इसके समक्ष कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं, जिनका समुचित समाधान इसके दीर्घकालिक विकास के लिए आवश्यक है। प्रमुख चुनौती सांस्कृतिक प्रामाणिकता के संरक्षण की है। डिजिटल माध्यमों पर उपलब्ध सूचनाओं की प्रामाणिकता, ऐतिहासिक तथ्यों की विश्वसनीयता तथा धार्मिक आस्थाओं के संतुलित प्रस्तुतीकरण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

यदि ऐतिहासिक तथ्यों के स्थान पर अप्रमाणित या भ्रामक सामग्री का प्रसार होता है, तो इससे सांस्कृतिक विरासत की विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है। इसी प्रकार तीर्थस्थलों पर बढ़ती पर्यटकों की संख्या से पर्यावरणीय असंतुलन, भीड़-प्रबंधन, आधारभूत सुविधाओं पर दबाव तथा स्थानीय सांस्कृतिक परिवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका भी बनी रहती है। एक अन्य चुनौती स्थानीय समुदायों की प्रभावी सहभागिता सुनिश्चित करने की है। यदि पर्यटन विकास केवल अवसंरचना निर्माण तक सीमित रह जाए और स्थानीय जनजीवन, लोककला, हस्तशिल्प तथा पारंपरिक आजीविकाओं को पर्याप्त स्थान न मिले, तो सांस्कृतिक पर्यटन का मूल उद्देश्य अधूरा रह जाएगा। साथ ही डिजिटल असमानता भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी संसाधनों, इंटरनेट सुविधा और डिजिटल साक्षरता की सीमित उपलब्धता स्मार्ट पर्यटन की अवधारणा के समुचित क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न कर सकती है। इन चुनौतियों के बावजूद रामायण पर्यटन सर्किट की संभावनाएँ अत्यंत व्यापक और दूरगामी हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वर्चुअल रियलिटी, डिजिटल अभिलेखीकरण, बहुभाषिक सूचना प्रणाली तथा स्मार्ट पर्यटन सेवाओं के माध्यम से तीर्थयात्रा को अधिक ज्ञानवर्धक, सुरक्षित और सहभागी बनाया जा सकता है। इसके साथ ही स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी, पर्यावरण-अनुकूल पर्यटन, विरासत संरक्षण, शोध-सहयोग तथा अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित कर इस परियोजना को सतत विकास के आदर्श मॉडल के रूप में विकसित किया जा सकता है।रामायण पर्यटन सर्किट के विकास में तकनीकी नवाचार और सांस्कृतिक संवेदनशीलता के मध्य संतुलन स्थापित किया जाए। जब डिजिटल प्रौद्योगिकी, सांस्कृतिक विरासत, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व और स्थानीय सहभागिता एक-दूसरे के पूरक बनेंगे, तभी यह पहल भारतीय संस्कृति की वैश्विक प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करने के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी एक अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सुरक्षित रह सकेगी। रामायण भारतीय संस्कृति की वह अमूल्य धरोहर है, जिसने सहस्राब्दियों से मानव जीवन को नैतिकता, मर्यादा, करुणा और लोककल्याण के आदर्शों से आलोकित किया है।

वर्तमान डिजिटल युग में इन शाश्वत मूल्यों को नई पीढ़ी तथा विश्व समुदाय तक पहुँचाने में रामायण पर्यटन सर्किट एक सशक्त सांस्कृतिक माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया है। यह केवल तीर्थस्थलों को जोड़ने वाली पर्यटन परियोजना

नहीं है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत, आध्यात्मिक चेतना और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद का एक जीवंत सेतु है। डिजिटल प्रौद्योगिकी ने रामायण पर्यटन सर्किट को अधिक सुलभ, ज्ञानवर्धक और सहभागी बनाया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल अभिलेखीकरण, वर्चुअल भ्रमण, बहुभाषिक सूचना प्रणाली तथा स्मार्ट पर्यटन सेवाओं ने सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण और उनके वैश्विक प्रसार को नई दिशा प्रदान की है। इसके माध्यम से न केवल पर्यटकों और शोधार्थियों को प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हो रही है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिक सुदृढ़ हो रही है। साथ ही, यह पहल स्थानीय अर्थव्यवस्था, हस्तशिल्प, लोककला और पारंपरिक सांस्कृतिक गतिविधियों के संरक्षण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है। यद्यपि इस क्षेत्र में प्रामाणिकता, पर्यावरण संरक्षण, डिजिटल असमानता तथा स्थानीय समुदायों की सहभागिता जैसी चुनौतियाँ विद्यमान हैं, फिर भी दूरदर्शी नीतियों, सतत पर्यटन, तकनीकी नवाचार और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व के समन्वित प्रयासों से इनका प्रभावी समाधान संभव है। आवश्यक है कि विकास की प्रत्येक प्रक्रिया भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, ऐतिहासिक प्रमाणिकता और पर्यावरणीय संतुलन के साथ आगे बढ़े, ताकि पर्यटन केवल आर्थिक गतिविधि न रहकर सांस्कृतिक संरक्षण और मानवीय संवाद का माध्यम बन सके।डिजिटल युग में रामायण पर्यटन सर्किट भारतीय संस्कृति की वैश्विक प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करने, सांस्कृतिक कूटनीति को नई दिशा देने तथा विश्व समुदाय के साथ भारत के आत्मीय संबंधों को सशक्त बनाने की एक दूरदर्शी पहल है। परंपरा और आधुनिकता के सृजनात्मक समन्वय पर आधारित यह अवधारणा भविष्य में न केवल भारतीय पर्यटन को नई ऊँचाइयों तक ले जाएगी, बल्कि विश्व मानवता के समक्ष भारतीय जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक समन्वय और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को भी अधिक व्यापक और सार्थक रूप में प्रतिष्ठित करेगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. वाल्मीकि. (2019). श्रीमद् वाल्मीकि रामायण. पृष्ठ संख्या 67, गोरखपुर : गीता प्रेस।
2. तुलसीदास. (2021). श्रीरामचरितमानस. पृष्ठ संख्या 54,गोरखपुररू गीता प्रेस।
3. मिश्र, विद्यानिवास. (2018). भारतीय संस्कृति की खोज. पृष्ठ संख्या 98, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
4. वात्स्यायन, कपिला. (2017). भारतीय संस्कृति और कला. पृष्ठ संख्या 21, नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
5. शर्मा, रामशरण. (2019). भारतीय संस्कृति और परंपरा. पृष्ठ संख्या 62, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
6. पचौरी, सुधीश. (2020). नया मीडिया : नए मुद्दे. पृष्ठ संख्या 78, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
7. जोशी, सच्चिदानंद (सं.). (2022). भारतीय ज्ञान परंपरा, पृष्ठ संख्या 97, नई दिल्ली : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र।
8. देवी, गणेश एन. (2022). भारतीय भाषाएँ और डिजिटल भविष्य. पृष्ठ संख्या 88, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
9. मिश्र, राजेन्द्र. (2021). सांस्कृतिक पर्यटन : सिद्धांत और व्यवहार. पृष्ठ संख्या 73, नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन्स।
10. सिंह, अशोक कुमार. (2020). पर्यटन : अवधारणा, विकास और प्रबंधन. पृष्ठ संख्या 32, नई दिल्ली : पियर्सन इंडिया।

सहायक प्रोफेसर, कलिंग इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस, भुवनेश्वर

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

भारत और श्रीलंका- आर्थिक संबंध

डॉ. संगीता शर्मा

श्रीलंका भारत से महज 35-40 किलोमीटर दक्षिण में स्थित एक छोटा सा पानी की बूंद के आकार जैसा द्वीप है। दोनों देश एक ही समुद्री सीमा साझा करते हैं। भारत और श्रीलंका के संबंध सदियों या यों कहें की 2500 साल पुराने हैं। इसके सूत्र हमें रामायण और महाभारत काल के पहले से ही मिलते हैं। भारत का विशाल बाजार श्रीलंका की सामरिक व भौगोलिक स्थिति दोनों एक दूसरे के पूरक का काम करते हैं। प्राचीन काल से ही दोनों देशों की अर्थव्यवस्था मसाले, कीमती वस्त्रों, रत्नों, मोतियों के व्यापार द्वारा एक दूसरे को जोड़े रखा है। दक्षिण भारतीय क्षेत्र के चोल और पांड्य राजवंशों के समय से ही श्रीलंका के मुख्य बंदरगाह जैसे मानतई या महातिथ्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मुख्य केंद्र रहे हैं।

भारत और श्रीलंका का यह संबंध केवल व्यापारिक, ऐतिहासिक या राजनीतिक ही नहीं बल्कि भाषाई सांस्कृतिक, धार्मिक, राम के आदर्श परंपराओं के आदान-प्रदान और बौद्ध के विचारों से सींचे गए हैं। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी वहां मौजूद हैं। बौद्ध धर्म के मूल ग्रंथ त्रिपिटिक भी दोनों देशों की साझी संस्कृति संचयन का एक जीवंत प्रमाण है।

बौद्ध धर्म के शांति संदेश के साथ सम्राट अशोक ने तीसरी शताब्दी बीसी लगभग 250 ईसा पूर्व में अपने बेटे महेंद्र और बेटी संघमित्रा को बौद्ध धर्म के शांति संदेश के साथ श्रीलंका भेजा जिसे उस समय 'सिंहल द्वीप' कहा जाता था, वे अपने साथ महाबोधि वृक्ष की एक शाखा भी ले गए जिसे आज भी वहां "जयश्री महाबोधि" के नाम से श्रद्धापूर्वक पूजा जाता है।

इस ऐतिहासिक घटना के फलस्वरूप भारतीय भाषा, संस्कृति, कला, वास्तु कला और श्रीलंका के संस्कृति का बौद्ध विचारों के साथ बहुत गहराई से मेल मिलाप हुआ। यहीं से हमारे आर्थिक संबंधों की नींव मजबूत हुई। क्योंकि कला, संस्कृतियों के धार्मिक आदान-प्रदान के साथ-साथ व्यापारिक गतिविधियों को भी अभूतपूर्व गति मिली। सदियों बाद पांचवीं शताब्दी में फाहियान चीनी विद्वान ने जब श्रीलंका की यात्रा की तो भारत और श्रीलंका के बीच समुद्री व्यापार, वहां की संस्कृति, समृद्धि, वैभव, बौद्ध विहारों जैसे अनुराधापुर का अभयगिरि विहार का आंखों देखा विवरण विस्तार से अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक फो-कुआ-की में किया। जो भारतीय संस्कृति के गहन प्रभाव को प्रत्यक्ष प्रमाण है

औपनिवेशिक काल

सदियों तक श्रीलंका और भारत के संबंध शांतिपूर्ण ढंग से चलते रहे फिर औपनिवेशिक काल का आगमन हुआ। मनुष्य स्वभाव से ही एक जगह स्थिर नहीं रह सकता। अनादि काल से ही उसकी प्रवृत्ति घुमक्कड़ रही है सो इसी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के वशीभूत होकर पाश्चात्य देशों के लोग व्यापार के बहाने एक देश से दूसरे देश पहुंचे और वहां का वैभव वहां के लोगों की भलमनसाहत देख वहीं पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। इसी साम्राज्यवादी नीति के तहत भारत और श्रीलंका पर भी विदेशी ताकतों का नियंत्रण हुआ जिससे दोनों देशों के व्यापारिक संबंधों को पूरी तरह बदल दिया। तीन विदेशी शक्तियों ने श्रीलंका पर राज किया पहला पुर्तगाली फिर डच और अंत में ब्रिटिश इन शक्तियों ने जहां भी शासन किया वहां के संसाधनों का दोहन किया और उन देशों को अपनी ज़रूरतें अपनी आर्थिक लाभ के हिसाब से चलाया। अंग्रेजों ने श्रीलंका की पारंपरिक कृषि व्यवस्था को बदलकर नगदी फसलों यानी की कैश क्रॉप जैसे चाय, कॉफी, रबड़ के बड़े-बड़े बागानों में तब्दील किया

और इन बागानों में काम करने के लिए बड़ी संख्या में कुशल मजदूरों की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति के लिए दक्षिण भारत विशेष कर तमिलनाडु के लाखों तमिल मजदूरों को बंधुआ बनाकर श्रीलंका ले गए और इन्हीं कर्मठ मजदूरों ने श्रीलंका के चाय उद्योग को खड़ा किया। व्यापारियों ने समुद्री रास्ते से श्रीलंका के भीतरी स्थानों तक जिन रास्तों को खोजा उन्हीं व्यापारिक मार्गों पर चलकर बौद्ध भिक्षुओं और प्रचारकों को धन और सुरक्षा दी। बौद्ध विहारों और हिंदू मंदिरों का निर्माण भी करवाया। जिससे बौद्ध धर्म भारत से श्रीलंका पहुंचा और उसका प्रसार प्रचार हुआ यानी के आर्थिक मजबूती ने आध्यात्मिक केंद्र के रास्ते खोले। जिससे दोनों देशों के बीच आर्थिक संबंध का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

श्रीलंका ने अंग्रेजों से स्वतंत्रता संग्राम किया। काफी जद्दोजहद के बाद 4 फरवरी 1948 को श्रीलंका स्वतंत्र हुआ और भारत 15 अगस्त 1947 को। दोनों देशों के बीच व्यापार सीमित था। श्रीलंका स्वतंत्र तो हुआ परंतु उसकी आर्थिक स्थिति चुनौती पूर्ण थी, क्योंकि अंग्रेजों ने वहां कैश क्रॉप यानी केवल चाय कॉफी और रबर को बढ़ावा दिया। कृषि उत्पादन बिल्कुल नगण्य हो गया था। खाद्यान्न और अन्य बुनियादी आवश्यकता यहां तक की उनका प्रमुख आहार चावल भी बाहर से आयात होता था। अनाज पैदा करने की मजबूत व्यवस्था से वह वंचित थे। अंतरराष्ट्रीय बाजार में जब भी चाय या रबर के दाम घटते उन पर आर्थिक संकट आ जाता।

आंतरिक असंतोष और एलटीटीई :

स्वतंत्रता के बाद श्रीलंका की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों के साथ नीतियों में भी बदलाव हुए। 1956 में 'सिर्फ सिंहल' का कानून और विश्वविद्यालय में तमिल प्रवेश पर प्रतिबंध वाले भेदभावपूर्ण रवैए ने तमिल युवकों में राजनीतिक और सामाजिक असंतोष को जन्म दिया और इसी असंतोष के कारण वेलुपिल्ले प्रभाकरण ने लिबरेशन टाइगर्स ऑफ़ तमिल ईलम नाम की एक कट्टर गोरिल्ला सेना का गठन किया। जिसका मुख्य उद्देश्य श्रीलंका के उत्तर पूवी हिस्सों को अलग करके एक स्वतंत्र संप्रभु राष्ट्र 'तमिल ईलम' की स्थापना करना था। जुलाई 1987 में एलटीटीई द्वारा 13 सिंहली सैनिकों की निर्मम हत्या के बाद पूरे देश में तमिल विरोधी दंगे भड़क उठे और इन्हीं दंगों ने गृह युद्ध का रूप धारण कर लिया। प्रभाकरण की एलटीटीई सेना की हिंसक संघर्ष की आग में श्रीलंका वर्षो तक भभकता रहा। अंत में 2009 में श्रीलंका के एक बड़े और अंतिम सैन्य अभियान में प्रभाकरण की मौत के बाद इस संगठन का पूर्ण रूप से सफाया हो गया और इसी कारण भारत और श्रीलंका के द्विपक्षीय संबंधों में लंबे समय तक खटास और कड़वाहट बनी रही।

भारत द्वारा शुरुआती मदद

भारत में अच्छे पड़ोसी होने के नाते श्रीलंका में खाद्यान्न और जरूरी वस्तुओं की जब भी कमी हुई, भारत ने उनकी भरपूर सहायता की।

समझौते और तकनीकी सहयोग

दोनों देशों ने एक दूसरे का परस्पर सहयोग करते हुए समय-समय पर व्यापारिक समझौते किए जिससे कि श्रीलंका में जरूरत की वस्तुएं आसानी से मिल सके भारत ने श्रीलंका के बुनियादी ढांचे और तकनीकी विकास में भी सहयोग देना शुरू किया।

अर्थव्यवस्था का खुलना 1970 से 1990

जहां श्रीलंका ने 1970 के आखिर में और भारत में 1991 में अपने अर्थव्यवस्था का उदारीकरण किया यानी कि ग्लोबलाइजेशन किया तब पड़ोसी होने के नाते दोनों देशों ने आपस में व्यापार बढ़ाने की नीति पर जोर दिया।

आईएसएफटीए (ISFTA) साल 2000

1998 के उदारीकरण के बाद से ही श्रीलंका व्यापारिक घाटे से जूझ रहा है और आपसी व्यापारिक संबंधों कोई बढ़ाने की दिशा में 2000 में दोनों देशों के मध्य मुक्त व्यापार समझौते पर सहमति बनी। जिससे दोनों देशों के व्यापार को एक नई

दिशा मिली। यह भारत का किसी भी देश के साथ पहला एफटीए था। इस समझौते ने व्यापारिक ढांचे को संतुलित करने में मदद की। श्रीलंका का 60% से अधिक निर्यात भारत को होता है।

आर्थिक संकट में भारत की भूमिका

2022 में श्रीलंका भीषण आर्थिक संकट से गुजरा। विदेशी मुद्रा भंडार लगभग खत्म हो गया था। जिससे वाहन ईंधन यानी पेट्रोल डीजल दवाइयां रसोई गैस और खाद्यान्न सामग्री का गहरा संकट हो गया। कहावत है यदि कोई संकट आ जाए तो रिश्ते, रिश्तेदार बाद में पहुंचते हैं पहले काम पड़ोसी आते हैं पड़ोसी प्रथम यानी नेबरहुड फर्स्ट यानी इसी पड़ोसी धर्म के निर्वहन के तहत भारत ने इस भीषण आर्थिक संकट के समय में श्रीलंका की मानवीय सहायता की और उसका आर्थिक संबल बनते हुए एक सच्चे बड़े भाई का फर्ज निभाया। भारत ने संकट की घड़ी से उबरने के लिए श्रीलंका को लगभग ' चार अरब ' अमेरिकी डॉलर की वित्तीय सहायता दी। श्रीलंका पश्चिमी देशों और वैश्विक संस्थाओं की सहायता पर निर्भर था, भारत द्वारा श्रीलंका को हालिया आर्थिक संकट में दी जाने वाली सबसे बड़ी सहायता थी। वर्तमान में ग्रांट लोन ऑफ क्रेडिट और विकास परियोजनाओं जैसे घरों का निर्माण रेलवे ट्रैक का आधुनिकरण आदि। भारत ने चार अरब डॉलर राशि की कागजी मदद का आश्वासन ही नहीं दिया बल्कि आवश्यक सामग्रियों की आपूर्ति की, जिसमें ईंधन के टैंकर, जीवन रक्षक दवाएं, शिशु आहार यानी कि मिल्क पाउडर और लाखों टन अनाज (चावल) से मदद की, यही नहीं भारत ने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष आईएमएफ से श्रीलंका को आर्थिक राहत पैकेज में 2.9 बिलियन डॉलर का बेलआउट पैकेज दिलाने में वकालत ही नहीं दी बल्कि उसकी जमानत भी दी।

कनेक्टिविटी और व्यापार :

वर्तमान में दवाई समुद्री और डिजिटल कनेक्टिविटी के साथ-साथ दोनों देशों के बीच नौका सेवा यानी की फेरी सर्विसेज की शुरुआत की। यहां तक की हवाई संपर्क को भी बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि व्यापार और आसानी से हो सके। सबसे बड़ा आयाम ऊर्जा का है। भावी संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए भारत और श्रीलंका के बीच बिजली ग्रिड या इलेक्ट्रिसिटी ग्रिड को आपस में जोड़ने पर बातचीत चल रही है। इसी के साथ भारत श्रीलंका में नवीकरणीय ऊर्जा यानी सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा के प्रोजेक्ट पर भी काम कर रहा है।

श्रीलंका को डॉलर पर निर्भर न रहना पड़े। इसके लिए दोनों देश आर्थिक संबंधों को मजबूत करने हेतु स्थानीय मुद्राओं में द्विपक्षी व्यापार करने की संभावनाओं पर भी काम कर रहे हैं। श्रीलंका में भारत का यूपीआई सिस्टम भी शुरू किया गया है जिससे लेन देन बहुत आसान हो गया है।

वर्तमान में भारत श्रीलंका में श्रम बल की कार्य कुशलता बढ़ाने और आईटी सेक्टर के युवाओं को ट्रेनिंग भी दे रहा है।

ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग

भारत श्रीलंका और संयुक्त अरब अमीरात यह तीनों देश मिलकर त्रिंकामाली में एक एनर्जी हब को विकसित करने की दिशा पर काम कर रहे हैं क्षमता निर्माण कार्यक्रम के तहत प्रतिवर्ष 700 श्रीलंकाई नागरिकों को कौशल प्रशिक्षण दिया जाता है। डिजिटल प्रोद्योगिकी का भारत में यूनिक आइडेंटिटी परियोजना के अंतर्गत घोषणा की है।

इसी के चलते भारत श्रीलंका के बीच की परियोजनाएं जैसे इंटरग्रिड कनेक्टिविटी, दोनों देशों के मध्य महत्वपूर्ण मल्टी प्रोडक्ट पेट्रोलियम पाइप लाइन को स्थापित करने पर भी दोनों देशों में सहमति बनी।

INS ऐरावत - प्रधानमंत्री मोदी ने श्रीलंका के प्रमुख कोलंबो पोर्ट और हिंद महासागर के राजनीतिक मोर्चे पर विशालकाय भारतीय सैन्य जहाज INS Airawat (आईएनएस ऐरावत) को कोलम्बो पोर्ट पर तैनात किया।

INS, संशोधक – यह हाइड्रो ग्राफिक सर्वे जहाज जो की गहरे से गहराई में भी छिपी पनडुब्बी का पता लगा लेता है।

INS अग्रे (INS AGRAY) – यह एक एंटी सबमेरीन वारफेयर शिप है, जो उथले पानी में भी चीनी नौसेना को मात देने उनके जासूसी जहाजों के आने न देने के लिए कड़ा नियंत्रण रखते हैं। भारतीय नौसेना द्वारा घातक युद्ध पोतों के सैन्य प्रदर्शन से हिंद महासागर में चीन की घेराबंदी पूरी तरह से टूट भी चुकी है और अब उनमें खलबली मच गई है।

INS शारदा - जून 2026 के मध्य में भारत ने अपना ऑफशोर पेट्रोल वेसल श्रीलंका भेजा जिसने श्रीलंकाई सेना को $ 5.5 मिलियन के सैन्य हथियार और उपकरण सौंपे।

यही नही कोविड – 19 महामारी के दौरान भारत ने श्रीलंका को 500,000 वैक्सीन की खुराक भी भेजी थी।

अर्थव्यवस्था की रीढ़ -

विदेशी मुद्रा कमाने में पर्यटन श्रीलंका की अर्थव्यवस्था में रीढ़ की हड्डी माना जाता है।

भारतीय पर्यटकों का शीर्ष स्थान :

पूर्व से वर्तमान तक श्रीलंका के पर्यटन विकास प्राधिकरण के आंकड़ों को देखें तो श्रीलंका आने वाले विदेशी पर्यटकों में सबसे ज्यादा संख्या भारतीयों की होती हैं। भारतीय पर्यटक श्रीलंका के स्थानीय अर्थव्यवस्था को बहुत बड़ा संबल देते हैं जिसमें मुख्य रूप से लाभान्वित क्षेत्र है होटल, गाइड और परिवहन।

सांस्कृतिक और धार्मिक पर्यटन (रामायण ट्रेल)

पर्यटन को बढ़ावा देने अपने आर्थिक पक्ष को एक नई दिशा और सुंदरता प्रदान करने हेतु श्रीलंका ने रामायण ट्रेल जैसी बेहतरीन योजना बनाई है। जिसके तहत श्रीलंका से रामायण काल से जुड़े ऐतिहासिक और पवित्र स्थलों जैसे अशोक वाटिका, रावण एल आदि को विकसित किया जा रहा है जिससे भारतीय श्रद्धालु और पर्यटक भारी संख्या में श्रद्धापूर्वक पहुंचे और पर्यटन का भरपूर आनंद लें।

बौद्ध सर्किट

बौद्ध धर्म दोनों देशों को जोड़ता है भारत के बोध गया और सारनाथ ऐसे स्थान में जहां श्रीलंका पर्यटक बरबस ही खिंचे चले आते हैं और आर्थिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को मजबूत करते हैं। वैसे देखा जाए तो श्रीलंका की मुख्यतः अर्थव्यवस्था ऐतिहासिक रूप से पर्यटन पर निर्भर है और वर्तमान में भारत श्रीलंका के पर्यटन क्षेत्र को पुनर्जीवित करने में सबसे बड़ा साझेदार बनकर उभरा है।

भारत और श्रीलंका के संबंधों में समय के साथ विस्तार हुआ। भारत और श्रीलंका के संबंध केवल भौगोलिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक ही नहीं बल्कि आर्थिक हितों से भी एक दूसरे से सदियों से जुड़े हुए हैं। आधुनिक काल में वैश्विक पटल पर दक्षिण एशियाई राजनीतिक बदलते स्वरूप ने इन आर्थिक संबंधों का नया अध्याय शुरू किया। श्रीलंका की रणनीतिक स्थिति और भारत का विशाल बाजार, व्यापारिक रिश्तों ने दोनों देशों को एक दूसरे से जोड़े रखा।

हाल ही में कुछ माह पूर्व आए तूफ़ान ने श्रीलंका को तहस-नहस कर दिया और ऐसे में भारत का श्रीलंका की तरफ सहायता के लिए हाथ बढ़ाना नेबर हुड और बड़े भाई की भूमिका में अहम कदम है

28 नवंबर 2025 को श्रीलंका में भयंकर चक्रवातीय तूफान आया जिसने भारी तबाही मचाई। इस आपदा में भारत ने फर्स्ट रेस्पॉडर के रूप में ऑपरेशन सागर बंधु लॉन्च किया। जिसके तहत भारत ने 450 मिलियन यूएस डॉलर की मदद की। इसे दो भागों में बांटा 350 मिलियन यूएस अनुदान राशि जिसके तहत बेघरों को घर, शिक्षा, स्वास्थ्य, रेलवे, सड़कें, कृषि, पूल और बुनियादी ढांचे का पुनर्निर्माण।

आपदा के समय भारतीय वायुसेना और नौसेना ने मोर्चा संभाला राहत सामग्री पहुंचाई। बादुल्ला क्षेत्र में फील्ड हॉस्पिटल

में हजारों घायलों का इलाज और मुफ्त ऑपरेशन किया।

नौसेना इंजीनियरों ने वायुसेना की मदद से बेली ब्रिज बनाए।

आईएनएस विक्रांत और आईएनएस उदयगिरी आदि युद्ध पोतों ने राहत सामग्री पहुंचाई।

वहीं 100 मिलियन यूएस डॉलर अनुदान दिया।

इस तरह सदियों से श्रीलंका पर जब भी संकट आया भारत हमेशा उसका मददगार बनकर खड़ा रहा।

निष्कर्ष

देखा जाए तो इतिहास से लेकर वर्तमान तक भारत ने श्रीलंका के सच्चे हितैषी, (नेबरहुड फर्स्ट) पडोसी पहले और बड़े भाई की भूमिका बखूबी निभाई है। चाहे वह साल 2000 का मुक्त व्यापार समझौता हो या 2000 का भीषण आर्थिक संकट।

सामरिक और बाहरी चुनौतियां :

वर्तमान में हिंद महासागर में बढ़ते सामरिक और बढ़ती ताकतों की आर्थिक पैठ या यों कहें की चीन की ऋण जाल नीति के तहत श्रीलंका के बंदरगाह और भूमि अधिग्रहण जैसे चुनौती बनती जा रही है। ऐसे में भारत द्वारा श्रीलंका को दी जा रही आर्थिक स्थिरता और सुरक्षा दोनों देशों के साझा हितों के लिए सर्वोपरि है।

भविष्य की राह आर्थिक एकीकरण :

बिजली ग्रिड स्थानीय मुद्राओं में व्यापार यूपीआई डिजिटल भुगतान और रामायण ट्रेल जैसे पर्यटन परियोजनाएं दोनों देशों के आर्थिक संबंधों को एक नई ऊंचाई प्रदान कर रही है।

आपदा में हमेशा फर्स्ट रेस्पॉन्डर बन कर सहायता करना।

दोनों देशों का आर्थिक और सांस्कृतिक जुड़ाव देश के प्रगति का मार्ग प्रशस्त ही नहीं करता बल्कि पूरे दक्षिण एशिया में स्थिरता लाने और समृद्धि का एक बेहतरीन उदाहरण है।

संदर्भ सूची

- Srilanka - A country study
- Federal research division library of Congress
  Edited by - Russel R. Ross and Andrea matles avada oct- 1990
- History of Srilanka - K.M.Desilva
  CHurst and company London (University of California) press - 1981
- Assistance by India continue to address diverse needs to Srilanka - 2022 (press release)
  https://www.hcicolombo.gov.in
- भारत एवं श्रीलंका अंतरराष्ट्रीय संबंधों में एक अध्याय 1947-1987 बुंदेलखंड विश्वविद्यालय का पीएच.डी शोध प्रबंध कल्पना चतुर्वेदी - 1990
- Internet Archive.org - K.M.Desilva
- MEA - ministry of external affairs - 2000 -2001 https://www.mea.gov.in
- SLTDA -Srilanka Tourism and development authority
- Indo Srilanka free trade agreement
- Export inspection council https://www.eicdia.gov.n

पठनचेरू – हैदराबाद

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

संत रविदास के साहित्य पर बौद्ध चिंतन का प्रभाव

प्रो. राजमुनि

साहित्य और समाज का संबंध बहुत गहरा है। समाज में प्रत्येक समय में जो घटनाएं घटित होती हैं या जिन महापुरुषों के द्वारा समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत किए जाते हैं उनका कहीं ना कहीं तत्कालीन समय से लेकर आगे आने वाले समय तक साहित्य पर प्रभाव दिखाई देता है। रचनाकार समाज का अभिन्न अंग होता है इसलिए समाज में घटित होने वाली प्रत्येक घटना उसके रचनाकर्म को बहुत प्रभावित करती है। समाज की प्रत्येक स्थिति रचनाकार के लेखन की दशा और दिशा को प्रभावित करती है।

संत रविदास का साहित्य भी इससे अछूता नहीं है।

जब हम संत रविदास के साहित्य और बौद्ध चिंतन के संबंध को देखने का प्रयास करते हैं तो पाते हैं कि गौतम बुद्ध के चिंतन का प्रभाव संत रविदास के साहित्य पर बहुत गहरा पड़ा है। क्योंकि बौद्ध चिंतन के बाद ही निर्गुण संप्रदाय का प्रारंभ होता है। यहां हम कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर चर्चा करेंगे जो संत रविदास के साहित्य में भी मिलते हैं और बौद्ध चिंतन में भी।

जीवन में गुरु का महत्व

गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों के माध्यम से समाज में इस बात को बड़ी सहजता के साथ स्वीकार किया है कि जीवन की दशा और दिशा बदलने में गुरु का बड़ा महत्व होता है। गौतम बुद्ध के चिंतन के अनुसार गुरु को कल्याण मित्र, रास्ता दिखाने वाला और शास्ता कहा है। बुद्ध के यहां साधना करते हुए साधक अपनी इसी बात को प्रस्तुत करते हुए कहता है -हम सब आपकी शरण में आते हैं आप हमारे सर्वोत्तम गुरु हैं। संत रविदास ने भी जीवन में गुरु के महत्व को स्वीकार किया-

"गुरु ज्ञान दीपक दिया, बाती दयी जलाय।
रैदास हरि भगति कारने , जनम मरन विलमाय।।"[1]

इतना ही नहीं संत रविदास कहते हैं इस संसार रूपी सागर को पार करने के लिए गुरु ही सबसे अच्छी नाव है–"रैदास गुरु पतवार है,नाम नाव करि जान।"[2]

संत रविदास का मानना है कि सतगुरु ही हमको मार्ग दिखाने वाला है। सतगुरु के पास जाने से ही जन्म-जन्मातर के दुख, कलेश और पापों का नाश होता है। यदि हम ध्यान से देखें तो पाएंगे कि लगभग निर्गुण और सगुण सभी संतो ने और कवियों ने गुरु के महत्व को जीवन में स्वीकार किया है। लेकिन सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि निर्गुण संत कवियों ने गुरु के महत्व को सबसे ऊपर स्वीकार किया है उनके अनुसार गुरु के अलावा जितने भी लोग हैं वह सब झूठ और पाखंड है।

यहां एक बात स्पष्ट है कि निर्गुण संत कवियों ने अभिमानी और अहंकारी ब्राह्मण को संतों का गुरु नहीं माना। तभी तो सेन नाई ने वेद शास्त्र, धर्मशास्त्र, ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन सभी को झूठा कहते हैं–" वेदहि झूठा, शास्त्रहि झूठा भक्त कहां से पछानी।"[3]

कहने का भाव यह है कि संतों ने सत्य का मार्ग दिखाने वाले को ही गुरु माना है। असत्य और पाखंड का रास्ता दिखाने वाले को नहीं।

नरेंद्र नाथ उपाध्याय लिखते हैं कि "गुरु पद ही बुद्ध पद है।"[4] जहां तक राम नाम की बात है उसके संबंध में भी संत रविदास ने कहा है कि राम कोई दशरथ का बेटा नहीं वह तो प्रत्येक मानव मात्र के हृदय में निवास करता है ,उसका जन्म नहीं होता, अजन्मा है, उसके माता-पिता नहीं है वह तो सर्वव्यापी है।

संत रविदास और उनका सत्तनाम

इसके संबंध में डॉक्टर विद्यावती मालविका ने भी अपनी पुस्तक हिंदी संत साहित्य पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव में स्वीकार किया है कि पाली भाषा के सच्चनाम का हिंदी रूपांतरण ही सत्तनाम है। वह कहती हैं कि इस शब्द का प्रयोग सबसे अधिक भगवान बुद्ध के लिए हुआ है। यही बात संत रविदास ने भी स्वीकार की है—"रविदास सत्त एक नाम है आदि अंत सचु नाम।"[5]

संत रविदास और उनकी सहज समाधि

बौद्ध चिंतन की वज्रयान शाखा का जो अंतिम स्वरूप है वह सहजयान है। यह मनुष्य की वह अवस्था है जहां वह कर्म के बंधनों से मुक्त होकर शून्य एवं करुणा में चला जाता है। इसके पश्चात वह परिनिर्वाण को प्राप्त कर लेता है। यह बात संत रविदास अपने साहित्य में कहते हैं कि मन के स्थिर किए बिना किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त होना संभव नहीं है—

"मन थिर होई तो कोई न सूझै, जाने जाननहारा।
कहै रैदास विमल विवेक सुख, सहज सरूप संभारा।।"[6]

सहज भाव से इतर किसी भी प्रकार की भक्ति को संत रविदास कहते हैं वह मानव को भ्रमित करने वाली होती है।सत्य तक नहीं ले जा सकती।

संत रविदास बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि दीन दुखियों की सेवा करना ही सबसे बड़ी सहज साधना है या भक्ति है और कुछ नहीं-

"दीन दुखी करि सेब महि लागि रहयो रविदास।
निसि बासर की सेब सो प्रभु मिलन की आस।।"[7]

शून्यवाद और निर्वाण

बुद्ध और उनके शिष्यों ने जिस शून्यवाद की स्थापना की उसने पूरे भारतीय दर्शन को सबसे अधिक प्रभावित किया है। ऐसे समय रविदास का काव्य उससे अछूता कैसे रह सकता है? इस शून्यवाद का प्रतिपादन महान बौद्ध आचार्य नागार्जुन ने किया उनके अनुसार पूरे विश्व और उसकी सभी जड़- चेतन वस्तुएं किसी भी स्थित अचल तत्व से सर्वथा शून्य है जो उसको समझता है वही चारों आर्य शक्तियों को समझ सकता है। संत रविदास ने भी इसी शून्य बाद की बात अपनी कविता में कही है। निश्चित रूप से संत रविदास का सहज शून्य बौद्ध चिंतन का निर्वाण ही है इसके विषय में वह कहते हैं—

"सूनि सहज में दोऊ त्यागै राम कहो न खुदाई।।"[8]

संत रविदास कहते हैं कि शून्यवाद की इस अवस्था में ईश्वर और आत्मा दोनों से ऊपर उठ जाता है साधक। संत रविदास का मानना है कि जो सच्चा संत इसको समझ लेता है वही वास्तव में सबसे बड़ा ज्ञानी है जो परम ज्ञान को प्राप्त करता है।

संत रविदास के काव्य में मन का महत्व

भारत ही नहीं पूरे विश्व में अगर ध्यान से देखा जाए तो जितने भी कर्म और कुकर्म होते हैं, जितनी भी हत्याएं होती

हैं, जितने भी अच्छे कार्य होते हैं सब के सब मन के द्वारा संचालित होते हैं।

बुद्ध कहते हैं कि जब व्यक्ति के विचार अपवित्र होते हैं तो मन भी कलुषित हो जाता है इससे पूरे जीवन भर समस्त प्रकार के दुख उसके पीछे-पीछे चल देते हैं। इसके विपरीत जब मनुष्य के विचार पवित्र होते हैं तो मन भी पवित्र होता है उसके पूरे जीवन भर समस्त प्रकार के सुख और आनंद उसके पीछे-पीछे चलते रहते हैं। संत रविदास ने जीवन भर मन को नियंत्रित करने की बात कही। इसके विपरीत बाहरी आडंबर, पूजा, धूप जलाना, सेवा करना, स्नान करना, पत्थर पूजा और व्रत रखना यह सब पाखंड है। इससे सदैव दूर रहने के लिए मानव मात्र को सचेत किया। किस तरह से हम देखें तो पाएंगे कि संत रविदास की साधना का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र मन ही है जिस पर नियंत्रण करना अनिवार्य है। तभी तो वह कहते हैं—"मन ही पूजा, मन ही धूप, मन ही सेऊ सहज स्वरूप।"[9]

इसलिए वह कहते हैं कि मनुष्य तुझे अपने मन को नियंत्रित करना होगा।यदि ऐसा नहीं कर पता है तो तुझे जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जब तक तू बाहरी आडंबरों में फंसा रहेगा तेरा जीवन व्यर्थ बीत जाएगा-" रैदास खोजा नह मिल सक ई, जौ लौं मन शैतान।"[10]

तभी तो उन्होंने अपनी वाणी में कहा है कि मन चंगा तो कठौती में गंगा। इसका सीधा सा अर्थ है कि यदि हमारा मन पवित्र है तो हमें कहीं स्नान करने जाने की जरूरत नहीं। यदि हमारा मन पवित्र नहीं है तो करोड़ों स्नान भी हमको पवित्र नहीं कर सकते।

संत रविदास और पंचशील का संबंध

बौद्ध चिंतन के अनुसार पंचशील का बहुत महत्व है। माना जाता है कि बौद्ध चिंतन में पंचशील का जो स्थान है वह इस तरह से है जिस प्रकार इस्लाम में कलमा का, ईसाइयों में बत्तीसवां का है। जो बौद्ध चिंतन के अनुसार जीवन यापन करता है वह इन पांचो नियमों का पालन करता है। यह नियम इस प्रकार हैं— जीव हिंसा से दूर रहो , बिना दी हुई किसी वस्तु के ग्रहण करने से विरत रहो, कामवासना से विरत रहो, असत्य भाषण से दूर रहो और शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन से दूर रहो।

संत रविदास के साहित्य में भी यह पांचो नियम इस प्रकार दिखाई देते हैं—

"परानी वध नहीं कीजिए,जीवह बहम समान।
रविदास पाप नहिं छूटही,करोर गोनम करि दान।।"[11]

संत रविदास दूसरे शील के विषय में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को मेहनत के द्वारा कमाई गई सम्पत्ति से ही जीवन यापन करना चाहिए-

"रैदास सरम करि खाइए, जौ लौं पार बसाय।
नेक कमाई जो करें, कबहु न निहफल जाय।।"[12]

तीसरे शील के विषय में संत रविदास ने भी बौद्ध चिंतन के अनुसार आत्म संयम पर सबसे अधिक जोर दिया है। संत रविदास का मानना है कि सच्चा महापुरुष और संत वही है जो काम ,क्रोध, अहंकार एवं तृष्णा को पूर्ण रूप से त्याग दे और सुख-दुख में एक जैसा व्यवहार करे-

"जो बस राखे इंद्रियां, सुख दुख समझि समान।
सोउ अमरित पाइयो, कह रैदास बखान।।"[13]

चतुर्थ शील - संत रविदास ने भी अपने साहित्य में इस बात को बड़ी सहजता के साथ स्वीकार किया है कि सत्य ही मानव जीवन का आधार होता है। जो मनुष्य सत्य के अनुसार आचरण करता है तो उसके जीवन के समस्त क्लेश और पाप स्वयं नष्ट हो जाते हैं इसलिए सत्य का कभी भी दामन नहीं छोड़ना चाहिए-

"रविदास सत्त मति तिआगिए, जौ लौं घट मंहि प्रान।

जो नर सत्त न भाषहि रैदास न कीजहि बात।।"[14]

पंचम शील - संत रविदास ने अपने साहित्य में स्पष्ट रूप से कहा है कि उस मदिरा का पीना भी क्या पीना है जिसका नशा एक बार चढ़ने पर उतर जाता है यदि पीने का शौक है तो सत्य और प्रेम की मदिरा को पी लो जिसका नशा एक बार चढ़ने के बाद कभी नहीं उतरता-

"रैदास मदुरा का पीजिए, जो चढ़े- चढ़े उतराय।
नांव महारस पीजिए, जो चढ़े नहि उतराय।।"[15]

अष्टांगिक मार्ग और संत रविदास का साहित्य- संत रविदास से लगभग 2000 वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध ने सबसे पहले सर्वोत्तम अष्टांगिक मार्ग की स्थापना की। इन अष्टांगिक मार्ग को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया गया सबसे पहले प्रज्ञा, फिर शील और फिर समाधि। इसमें क- प्रज्ञा को दो भागों में बांटा गया है– 1- सम्यक् दृष्टि 2- सम्यक् संकल्प। इसी प्रकार सील को भी तीन भागों में बांटा गया है–1- सम्यक् वाणी 2- सम्यक् कर्मान्त 3- सम्यक् आजीविका द्य समाधि को भी तीन भागों में बांटा गया है 1- सम्यक् व्यायाम 2- सम्यक् स्मृति 3- सम्यक् समाधि। संत रविदास ने भी अपनी वाणी के माध्यम से इन्हीं अष्टांगिक मार्गो का जिक्र किया है। संत रविदास की अष्टांग साधना के बाहरी अंग शील के ही अंग हैं और आंतरिक अंग प्रज्ञा के क्योंकि संयम पूर्वक घर गृहस्थी में रहकर साधना करना, सेवा सत्संग में लीन रहना यह सब शील के ही अंग है तथा ज्ञान द्वारा नाम स्मरण, ध्यान एवं भक्ति के अनुरूप लीन होना संभव है।

सच में यदि निष्पक्षता के साथ गौर करें तो निर्गुण संतों की जो वाणी है वह भक्त की वाणी न हो कर मानव मुक्ति की वाणी है। अतः यह प्रज्ञा के अंग है और प्रेम एवं विलय की पूर्णता स्मृति तथा सहज समाधि में ही संभव है। जिस प्रकार तथागत बुद्ध ने कहा कि सम्यक् दृष्टि का अंतिम उद्देश्य है अविद्या का नाश अर्थात मनुष्य मिथ्या विश्वासों से मुक्त हो मनुष्य का मन आज़ाद हो और उसके विचार भी स्वतंत्र हो।

संत रविदास कहते हैं कि रुग्णता और मृत्यु मनुष्य को धर्म -अधर्म और विमुक्ति को समझने में सहायक होती है।इस सम्यक् दृष्टि और अदृष्टि का मंथन ही एकमात्र ज्ञान की कसौटी है–

"धरम अधरम मोछि नहिं बंधन, जरा मरन भव नाशा।
दृष्टि अदृष्टि गेय अरु गयाता एक मेक है रैदासा।।"[16]

सम्यक् संकल्प - इसका अर्थ यह है संत रविदास कहते हैं कि मानव का लक्ष्य ऊंचा होना चाहिए नीचा नहीं। आगे भी कहते हैं कि किसी साधक के लिए मानव सेवा और मानव प्रेम से बड़ा लक्ष्य और क्या हो सकता है–"रैदास पिय है बसि रहो मानव प्रेमहि माहि।।"[17]

सम्यक् वाणी - संत रविदास का कहना है कि मनुष्य सत्य बोले, सोच समझ कर बोले और सार्थक बोले। तभी तो संत रविदास कहते हैं–"रैदास बचन जो दे दियौ , ऊह न जाने पाय।"[18]

सम्यक् कर्मान्त - इसका सीधा सा अर्थ है कि प्रत्येक मानव का प्रत्येक कार्य ऐसा हो उससे किसी दूसरे मानव की भावना और अधिकारों का हनन न हो। संत रविदास राग, द्वेष,सुख- दुख सभी स्थिति में धैर्य के साथ सतकर्म की प्रेरणा देते हैं।

सम्यक् आजीविका- संत रविदास में समस्त मानव मात्र को संदेश दिया है कि उसे अपनी मेहनत से कमाए हुए धन का उपयोग करना चाहिए चाहे स्थिति कैसी भी हो। और यहां तक कहते हैं कि मेहनत से कमाया हुआ धन कभी व्यर्थ नहीं जाता।

सम्यक् व्यायाम - संत रविदास का मानना है कि मनुष्य को अपने मन को निर्मल बनाना चाहिए तभी हम दूसरे मानव के दुख दर्द को अनुभव कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि अविद्या का नाश करने का प्रथम प्रयास ही सम्यक् व्यायाम है।

सम्यक् स्मृति-

इसका सीधा सा अर्थ है प्रत्येक बात पर ध्यान देना। मन में जितने भी विचार उठते हैं सभी पर बराबर नजर रखना।

बुरे विचारों को त्यागना और अच्छे विचारों को स्वीकार करना। संत रविदास कहते हैं कि जो व्यक्ति सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक् व्यायाम और सम्यक् स्मृति को प्राप्त करना चाहता है उनके रास्ते में पांच सबसे बड़ी मुसीबतें आती हैं जो इस प्रकार हैं कामवासना, क्रोध, वासना, अहंकार और लोभ। इन पांचो की निरंतर उपेक्षा करने से ही साधक अपनी साधना को प्राप्त कर सकता है।

सम्यक् समाधि - इसका सीधा सा अर्थ है कि अपने मन को एकाग्र करना। संत रविदास ने भी बुद्ध की तरह अपने मन को एकाग्रचित करने के लिए इंद्रियों को अपने वश में करने का बार-बार प्रयास किया है। जब कोई मनुष्य अपनी इंद्रियों को अपने वश में कर लेता है तब वह मानव मात्र के कल्याण के लिए निरंतर कर्म करता है। मनुष्य के लिए अपनी इंद्रियों को अपने वश में करना ही सबसे बड़ा कठिन कार्य है जिससे संत रविदास जैसे महा मानव बड़े आराम से कर लेते हैं। बौद्ध चिंतन के अनुसार दस पारमिताएं मानव जीवन में सबसे बड़ा महत्व रखती हैं। यह इस प्रकार हैं - दान पारमिता - इसके विषय में संत रविदास ने स्पष्ट रूप से कहा है कि दूसरों की भलाई के लिए अपना तन ,मन और धन सब कुछ न्योछावर कर देना चाहिए। शील पारमिता - इसका सीधा सा अर्थ है नैतिकता की रक्षा करना। संत रविदास का मानना है कि मन, कर्म और वचन से नैतिकता की रक्षा करना चाहिए। आगे वह यह भी बताते हैं कि यहां तक पहुंचने के लिए कामवासना, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का त्याग करके ही जाया जा सकता है।

नैष्कर्म्य पारमिता - के विषय में संत रविदास अपनी वाणी में कहते हैं कि निष्काम कर्म ही मनुष्य को सारे बंधनों से मुक्त करता है—"रैदास करम ही धरम है, करम करहु निहकाम।"[19]

प्रज्ञा पारमिता - संत रविदास कहते हैं कि जिस मानव को सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह जन्म -मरण, सुख -दुख सारे बंधनों से मुक्त हो जाता है।

वीर्य पारमिता - संत रविदास कहते हैं की वही व्यक्ति विश्व विजेता बनता है जो दृढ़ संकल्प होकर अपना कर्म करता है। सत्य पारमिता - संत रविदास कहते हैं कि मनुष्य को सदैव सत्य बोलना चाहिए ऐसा करने से उसके सभी प्रकार के पापों का नाश होता है। अधिष्ठान पारमिता - संत रविदास लोगों से बार-बार कहते हैं कि मनुष्य को अपनी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहिए जिससे वह सुख- दुख की भावना से ऊपर उठ सके। मैत्री पारमिता - संत रविदास ने अपने साहित्य में इस बात पर विशेष जोर दिया है कि जाति, धर्म सभी से ऊपर उठकर सभी मनुष्यों से एक जैसा प्रेम करना चाहिए। संसार में सभी मनुष्य एक समान है।

उपेक्षा पारमिता - संत रविदास सुख -दुख से ऊपर उठकर अनासक्ति भावना से कर्म करने को सबसे महत्वपूर्ण माना है। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि संत रविदास ने बौद्ध चिंतन की विचारधारा को साथ लेकर जो मानवता का संदेश दिया वह वर्तमान में ही नहीं भविष्य में भी भारतीय समाज की एकता अखंडता के लिए सदैव प्रासंगिक रहेगा। आज 21वीं सदी में भी हमें संत रविदास के द्वारा बताए हुए मार्ग का अनुसरण करना चाहिए तभी हम एक बेगमपुरा शहर की कल्पना कर सकते हैं जैसे रविदास जी ने की।जहां किसी को कोई गम ना हो सभी मानव सुख और शांति के साथ जीवन जी सके। जहां लोकतंत्र सिर्फ कागजों पर नहीं मानव जीवन में भी दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. एन सिंह, रैदास ग्रन्थावली, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2003 (साखी-14), पृष्ठ संख्या- 138
2. वही, साखी-19, पृष्ठ संख्या- 139
3. इंद्र राज सिंह, संत रविदास, प्रशासन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1999।पृष्ठ संख्या -75
4. डॉ. रमेश चन्द, बौद्ध दर्शन की परंपरा और संत रविदास, कला प्रकाशन, न्यू सकेत नगर कॉलोनी वाराणसी। पृष्ठ संख्या -92

5. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, श्री गुरु रविदास संस्थान, 1973। चंडीगढ़, साखी -25, पृष्ठ संख्या- 27
6. डॉक्टर एन0सिंह, रैदास ग्रन्थावली,पद 11, पृष्ठ संख्या- 166
7. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, साखी-175, पृष्ठ संख्या -176
8. डॉ. एन0 सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पद -3, पृष्ठ संख्या- 161
9. वही, पद -39, पृष्ठ संख्या- 179
10. वही, साखी-111, पृष्ठ संख्या- 148
11. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, साखी -186, पृष्ठ संख्या -185
12. वही, साखी-115, पृष्ठ संख्या- 118
13. श्याम सिंह, संत रविदास की मूल विचारधारा, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2003।पृष्ठ संख्या -107
14. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, रविदास दर्शन, सखी -33 पृष्ठ संख्या- 341
15. डॉक्टर एन0सिंह, रविदास ग्रंथावली, साखी -75, पृष्ठ संख्या- 144
16. वही, पद 28, पृष्ठ संख्या-173
17. डॉ. एन. सिंह, रैदास ग्रन्थावली, साखी -59, पृष्ठ संख्या- 143
18. वही, साखी -192, पृष्ठ संख्या- 156
19. वही, साखी -138, पृष्ठ संख्या- 150

अध्यक्ष
हिंदी और अन्य भारतीय भाषा विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
(राज्य विश्वविद्यालय)
उत्तर प्रदेश (221002)
मो-7991576826

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

रामसेतु, रामेश्वरम्, अग्नि तीर्थ एवं धनुषकोडी का आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व

डॉ. अश्विनी सचिन सदावर्ते

सारांश

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में तीर्थस्थलों का विशेष स्थान है। दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य में स्थित रामेश्वरम्, रामसेतु, अग्नि तीर्थ तथा धनुषकोडी केवल धार्मिक आस्था के केंद्र ही नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, पुराण, साहित्य, पुरातत्त्व, समुद्री भूगोल तथा सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण आयाम भी हैं। इन स्थलों का उल्लेख वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस, स्कन्द पुराण, शिव पुराण, पद्म पुराण तथा अनेक क्षेत्रीय ग्रंथों में प्राप्त होता है। आधुनिक काल में उपग्रह चित्रों, समुद्री भूवैज्ञानिक अध्ययनों तथा पुरातात्त्विक अनुसंधानों ने भी इन स्थलों के प्रति वैश्विक जिज्ञासा को बढ़ाया है। प्रस्तुत अध्ययन इन चारों स्थलों के आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व का समन्वित विश्लेषण प्रस्तुत करता है। रामायण भारतीय सभ्यता का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है, जिसमें वर्णित "लंका" भारतीय सांस्कृतिक स्मृति का प्रमुख केंद्र है। परंपरागत रूप से इसे वर्तमान श्रीलंका से जोड़ा जाता है, किंतु आधुनिक इतिहास, पुरातत्त्व तथा भूगोल के क्षेत्र में इस विषय पर विभिन्न मत उपलब्ध हैं।

मुख्य शब्द : रामसेतु, रामेश्वरम्, अग्नि तीर्थ, धनुषकोडी, रामायण, तीर्थ, भारतीय संस्कृति, धार्मिक पर्यटन।

भूमिका

भारत की सांस्कृतिक परंपरा में तीर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठानों के स्थान नहीं हैं, बल्कि वे इतिहास, लोकस्मृति, संस्कृति, दर्शन तथा राष्ट्रीय एकता के प्रतीक भी हैं। रामायण परंपरा में रामेश्वरम्, रामसेतु, अग्नि तीर्थ तथा धनुषकोडी का विशेष महत्त्व है। इन स्थलों से भगवान श्रीराम की लंका-यात्रा, सेतु-निर्माण, रावण-वध के पश्चात प्रायश्चित्त तथा शिव-पूजन जैसी अनेक घटनाएँ जुड़ी हुई हैं।

आज ये स्थल धार्मिक पर्यटन, सांस्कृतिक अध्ययन, पुरातात्त्विक अनुसंधान तथा पर्यावरणीय संरक्षण की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

रामायण केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति, राजनीति, दर्शन तथा नैतिक मूल्यों का भी आधार है। रामायण में वर्णित लंका को रावण की राजधानी बताया गया है, जहाँ भगवान श्रीराम ने समुद्र पार कर युद्ध किया। भारतीय परंपरा सामान्यतः इस लंका को वर्तमान श्रीलंका मानती है, जबकि आधुनिक अकादमिक शोध इस पहचान को ऐतिहासिक रूप से अभी निर्णायक नहीं मानता। भारत और श्रीलंका का संबंध अनेक वर्षो से कहा जाता है। भारत के महाकाव्य रामायण में श्रीलंका का वर्णन सोने की लंका के रुप में किया गया है। कहा जाता है कि श्रीलंका भारत की उत्तरी सीमा पर आदम सेतु पर स्थित है। कहा जाता है कि यही वह सेतु है जिसे श्रीराम ने लंका में प्रवेश करने के उद्देश्य से बनाया था। दोनों

देशों के लोग इस स्थान को पवित्र स्थान मानते है। विद्वानों में इस स्थान के विषय में कुछ मतभेद अवश्य है। जिस लंका का राजा रावण को माना जाता था उसके बारे में लोगों में एकमत नहीं है।

रामेश्वरम् का आध्यात्मिक महत्त्व

रामेश्वरम् भारत के चार प्रमुख धामों में से एक माना जाता है तथा यह बारह ज्योतिर्लिंगों में भी विशेष स्थान रखता है।

मान्यता है कि रावण-वध के पश्चात भगवान श्रीराम ने ब्रह्महत्या दोष से मुक्ति हेतु भगवान शिव की पूजा यहीं की। माता सीता द्वारा निर्मित रेत के शिवलिंग की पूजा का उल्लेख अनेक धार्मिक ग्रंथों में मिलता है। यह स्थान वैष्णव एवं शैव परंपराओं के समन्वय का अद्वितीय उदाहरण है। चारधाम यात्रा में इसका विशेष स्थान है।

आध्यात्मिक रामायण के अनुसार रामेश्वरम की कथा लंका विजय और ब्रह्महत्या से जुडी हुई है। रावण के वध के बाद ब्रह्म(ब्राह्मण) के वध के पाप से मुक्ति के लिए श्री राम ने महर्षि अगस्त्य के परामर्श पर समुद्र तट पर बालू से एक शिवलिंग को निर्माण किया और उसकी पूजा-अर्चना की। भगवान राम ने अपने हाथों से शिवलिंग बनाया जो रामलिंग कहा गया। पूजा के लिए भगवान शिव के निवास कैलास से हनुमान जी एक दिव्य शिवलिंग लेकर आए। हनुमान के वहां पहुंचने से पहले ही पूजा संपन्न हो चुकी थी,यह देख हनुमान जी निराश हो गए। यह देख भगवान श्रीराम अपने प्रिय भक्त के द्वारा लाए गए शिवलिंग को भी वही स्थापित कर दिया और उसे विश्वलिंग का नाम दिया और साथ ही साथ यह आज्ञा दि कि रामलिंग से पहले विश्वलिंग की पूजा की जाएगी।

रामेश्वरम् भारतीय सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक लाखों श्रद्धालु यहाँ प्रतिवर्ष दर्शन के लिए आते हैं। यह स्थल भारतीय सांस्कृतिक समन्वय एवं धार्मिक सहिष्णुता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

रामसेतु का आध्यात्मिक महत्त्व

रामसेतु भारतीय धार्मिक परंपरा में धर्म, साहस, संगठन तथा सामूहिक प्रयास का प्रतीक माना जाता है।

वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड के अनुसार भगवान श्रीराम की सेना ने नल एवं नील के नेतृत्व में समुद्र पर सेतु का निर्माण किया, जिसके माध्यम से वानर सेना लंका पहुँची। रामसेतु बनाने की घटना मानवी जीवन असंभव को संभव बनाने की प्रेरण देती है। रामायण तथा भारतीय समस्त ग्रंथ मानव को धर्म की अधर्म पर विजय की गाथा सुनाती आ रही है। जैसे कहते है कि अगर पूरा समाज एक साथ आ जाए और कोई समाज में कोई नई क्रांति लाने का प्रयास करें सामूहिक श्रम तथा योग्य नेतृत्व के लिए भी रामसेतु की घटना को देखा जा सकता है। मानवी जीवन पर प्रकृति का अत्यंत गहरा प्रभाव देखा जा सकता है और इसी समन्वय को दर्शाने का संदेश भी रामसेतु के निर्माण में नजर आता है। रामसेतु केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक स्मृति का भी महत्वपूर्ण अंग है।

अग्नि तीर्थ का आध्यात्मिक महत्त्व

अग्नि तीर्थ रामेश्वरम् के समुद्र तट पर स्थित प्रमुख तीर्थस्थल है। धार्मिक मान्यता के अनुसार भगवान श्रीराम ने रावण-वध के पश्चात यहाँ स्नान किया तथा यहीं से शिव-पूजन की प्रक्रिया प्रारम्भ की। अग्नितीर्थ के कारण ही हमारे देश में मानवी जीवन में पाप से मुक्ति के लिए पवित्र स्नान का महत्व बताया गया है। अग्नि तीर्थ को पूर्वजों के श्राध्द तथा तर्पण के लिए अत्यंत पवित्र स्थान मान गया है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार कई धार्मिक अनुष्ठानों का प्रारंभ अग्नि तीर्थ स्नान से होता है। अग्नि तीर्थ भारतीय जल-पूजा परंपरा, तीर्थ-संस्कृति तथा धार्मिक अनुष्ठानों का जीवंत उदाहरण है।

धनुषकोडी का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

धनुषकोडी भारतीय धार्मिक परंपरा में अत्यंत पवित्र स्थल माना जाता है। कहा जाता है कि लंका में प्रवेश करने के

लिए समुद्र पार करना एक बहुत बडी चुनौति थी। भगवान श्रीराम ने समुद्र से प्रार्थन की कि लंका तक जाने के लिए समुद्र उनके लिए रास्ता बनाने में उनकी मदद करें परंतु समुद्र की अपनी कुछ सीमाएं थी जिस कारण वे मार्ग नहीं दे पाए परंतु उन्होंने भगवान श्रीराम से कहा कि वे समुद्र पर सेतु बनाने में उनकी सहायता करेंगे। सेतु बनाने में अनेक कहानियां विख्यात हुई जिनमें से गिलहरी की कहानी भी बताई जाती है हालाकि इस कहानी के अंश अधिक रुप से कहीं नहीं पाए गए।

रामसेतु बनाने में गिलहरि ने भी अपना सूक्ष्म योगदान दिया। उसके इस योगदान पर सब लोगों ने उसका मजाक उडाया परंतु श्रीराम ने उसकी प्रशंसा करते हुए उसकी पीठ पर अपना हाथ घुमाया जिस कारण तीन रेखाएं नजर आती है।

मान्यता है कि विभीषण के अनुरोध पर भगवान श्रीराम ने अपने धनुष के अग्रभाग से रामसेतु के एक भाग को स्पर्श कर समुद्री मार्ग को सामान्य बनाया। इसी घटना के कारण इस स्थान का नाम "धनुषकोडी'' पड़ा।

समुद्री पुरातत्त्व तथा भूवैज्ञानिक अध्ययनों में भारत और श्रीलंका के मध्य उथले शैल-क्रम (shoal chain) का उल्लेख मिलता है। विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों ने इसकी भौगोलिक संरचना, प्रवाल भित्तियों तथा समुद्री अवसादों का अध्ययन किया है। इन अध्ययनों से इसकी प्राकृतिक एवं भूवैज्ञानिक विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है, जबकि इसके धार्मिक एवं ऐतिहासिक अर्थों पर विद्वानों के बीच विविध मत विद्यमान हैं। प्राचीन एवं मध्यकाल में यह क्षेत्र भारत एवं श्रीलंका के मध्य समुद्री व्यापार, तीर्थयात्रा तथा सांस्कृतिक संपर्क का महत्वपूर्ण मार्ग था।

निष्कर्ष

रामेश्वरम्, रामसेतु, अग्नि तीर्थ एवं धनुषकोडी भारतीय सभ्यता के ऐसे सांस्कृतिक केंद्र हैं जहाँ धर्म, इतिहास, साहित्य, पुराण, लोकविश्वास तथा भूगोल का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। इन स्थलों का महत्त्व केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि वे भारतीय सांस्कृतिक निरंतरता, राष्ट्रीय एकता तथा सभ्यतागत स्मृति के महत्वपूर्ण प्रतीक हैं।

संदर्भ सूची

1. महर्षि वाल्मीकि – वाल्मीकि रामायण (युद्धकाण्ड)।
2. गोस्वामी तुलसीदास – रामचरितमानस (लंकाकाण्ड)।
1. रामविलास शर्मा – भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य।
2. वासुदेवशरण अग्रवाल – भारतीय कला एवं संस्कृति।
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी – भारतीय संस्कृति की रूपरेखा।

सहायक प्राध्यापक

सौंदर्या इन्स्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेन्ट एंड सायंस, बेंगलूरु

मो- 9900442695

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

स्त्री मुक्ति का आख्यान : थेरीगाथा

डॉ. नीतू बंसल

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति एक समृद्ध और विविधतापूर्ण सांस्कृतिक परम्परा है। इसमें अनेक धर्मों, संस्कृतियों का अद्‌भुत समन्वय है। बौद्ध धर्म इसी सांस्कृतिक परम्परा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व भारत में उत्पन्न हुआ। महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों व सिद्धांतों के माध्यम से मानव जीवन के उद्देश्य एवं समाज सुधार की भावना पर बल दिया। उन्होंने न केवल धार्मिक दृष्टि से वरन सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक दृष्टि से भारतीय जीवन को प्रभावित किया। यह धर्म एक नई आस्था के साथ उभरा साथ ही इसने भारतीय समाज की धार्मिक धारा को एक नया मोड़ दिया। ऐसे समय में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को धार्मिक समानता का सिद्धान्त दिया और उन्हें संघ में प्रवज्या देकर उनके लिए ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। थेरीगाथा उन्हीं प्रवज्या प्राप्त स्त्रियों के जीवनानुभूति की सुकोमल भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति है।

बौद्ध धर्म एक परिचय

भारतीय संस्कृति में बौद्ध धर्म का विशेष महत्त्व है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अग्रदूत थे। उनका जन्म कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी नामक वन में 563 ईसा पूर्व हुआ था। जन्म के सातवें दिन उनकी माता का देहांत हो गया। उनका पालन-पोषण उनकी मौसी महाप्रजापति गौतमी ने किया। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। इनका विवाह यशोधरा नाम की युवती से हुआ। उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया। एकबार भ्रमण के दौरान एक वृद्ध, रोगी, मृतक व सन्यासी को देखकर उनके भीतर वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी और एक दिन अपनी पत्नी और पुत्र को सोता छोड़कर सत्य की खोज में निकल पड़े। उन्होंने अपने उपदेशों व सिद्धांतों के माध्यम से जीवन के उद्देश्य, दुःखों से मुक्ति एवं आचरण पर विशेष बल दिया। इन शिक्षाओं ने भारतीय समाज में जातिवाद, वर्ण व्यवस्था, धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठायी और समाज में समानता करुणा एवं अहिंसा पर बल दिया।

बौद्ध धर्म मुख्य रूप से तीन संप्रदायों में बंटा हुआ है। थेरवाद, महायान, वज्रयान

थेरवाद/हीनयान- इसे वरिष्ठों का संप्रदाय कहा जाता है। इसे बोद्ध धर्म का सबसे रूढ़िवादी रूप माना जाता है और इसके अनुयायी मुख्य रूप से दक्षिण पूर्व एशिया में विशेषकर थाईलेंड,म्यामार और श्रीलंका में हैं। विपश्यना आंदोलन इसका आधुनिकीकरण है। इसे दक्षिणी बोद्ध धर्म कहा जाता है।

महायान- यह एक दार्शनिक आंदोलन है जिसने सार्वभौमिक मोक्ष की संभावना का प्रचार किया और साधकों को बोधिसत्व कहलाने वाले करुणामय प्राणियों के रूप में सहायता प्रदान की। इसका लक्ष्य सभी सचेतन प्राणियों के लिए बुद्धत्व की संभावना को खोलना था। इसके समकालीन अनुयायी मुख्य रूप से चीन, जापान, कोरिया में हैं।

वज्रयान- इसे मंत्रयान भी कहा जाता है। यह महायान की एक शाखा के रूप में तांत्रिक बोद्ध धर्म की उत्पत्ति प्राचीन

हिन्दू और वैदिक प्रथाओं से भी जुड़ी हुई है, जिसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने के लिए रचित गूढ अनुष्ठान ग्रंथ भी शामिल हैं। वज्रयान बोद्ध धर्म को मुख्य रूप से तिब्बती धर्म से जोड़ता है।

बौद्ध साहित्य में त्रिपिटिक एक प्रमुख और प्राचीन धर्मग्रंथ है जिसे पालि भाषा में लिखा गया है। इसे तीन टोकरियाँ भी कहा जाता है। इसके तीन भाग हैं —

1. सुत्त पिटक 2.विनय पिटक 3.अभिधम्म पिटक

1. सुत्त पिटक पाँच निकायों में विभक्त है— दीर्घ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुददक निकाय। खुद्दक निकाय में 15 ग्रंथ हैं— खुद्दकपाठ, धम्मपाठ, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिमग्गसंभिदाभग्ग, अपदान, बुद्धवंश, चरियापिटक,
2. विनय पिटक- महावग्ग, चुल्लवग्ग, पाराजिक, पाचीत्तीय, परिवार।
3. अभिधम्मपिटक — घम्मसंगणि, विभङ्ग, धातुकथा, पुग्गलपज्श्रति, कथावत्थु, यमक।

वैदिक साहित्य के पश्चात बौद्ध साहित्य पर प्रकाश डाला जाए तो थेरीगाथा त्रिपिटिक साहित्य का एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। 'थेरीगाथा' जिसमें थेरी का अर्थ वरिष्ठ भिक्षुणियाँ और गाथा का अर्थ श्लोक है। इसमें भगवान गौतम बुद्ध के जीवन काल में ज्ञान प्राप्त कर चुकी वरिष्ठ भिक्षुणियों द्वारा पालि भाषा में 73 कविताओं का संग्रह है, जिन्हें 16 अध्यायों में विभक्त किया गया है। अध्यायों को प्रत्येक कविता में छंदों की संख्या के अनुसार विभाजित किया गया है। इसमें 524 छंद हैं। अंतिम अध्याय में सबसे अधिक छंद हैं और इसे महान अध्याय कहा गया है। यह गीत काव्य का एक अनुपम संग्रह है।

स्त्री मुक्ति का आख्यान : थेरीगाथा

महात्मा बुद्ध द्वारा स्त्रियों का संघ में प्रवेश की अनुमति एक युगांतकारी घटना थी। प्रवज्या प्राप्त ये स्त्रियाँ थेरी कहलायीं। 'थेरीगाथा' तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति को समझने का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। इसके धार्मिक, आध्यात्मिक महत्त्व के अलावा इसे भारत में स्त्रियों द्वारा रचित कविताओं का सबसे प्राचीन संग्रह भी माना जाता है जो बोद्ध धर्म की थेरवाद परंपरा में बुद्ध की शिक्षाओं का अभिलेखन है। इसे पालि बोद्ध धर्मग्रंथ के संग्रह के रूप में संकलित किया गया है। ये कवितायें प्राचीन काल में महिलाओं के अनुभवों की अद्भुत झलक प्रस्तुत करती हैं, जो आज भी पाठक को प्रभावित करती हैं।

ये कविताएं उस समय के भारतीय समाज में नारी प्रकृतिजन्य संवेदनशीलता, जीवनानुभूति के संघर्षो, बौद्ध मार्ग की ओर उनके आकर्षण और अंतिम मुक्ति प्राप्त करने से पहले भिक्षुणी के रूप में उनके द्वारा तय की गई लंबी या छोटी यात्रा के बारे में बताती हैं साथ ही ज्ञान प्राप्त कर चुकी वरिष्ठ भिक्षुणियों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि पर भी प्रकाश डालती हैं। यहाँ नारी मन की सुकोमल भावनाएँ अभिव्यक्त हैं। संगीतात्मक, आत्माभिव्यंजक, गीतिकाव्य शैली में जीवनानुभवों को व्यक्त करते हुए भिक्षुणियों ने अपने जीवन काव्य को गाया है। इस संग्रह में राजकुमारियाँ, श्रेष्ठ कन्याएँ, सेनापति कन्याएँ, गणिकाएँ एवं सामान्य वर्गों की स्त्रियाँ थेरियों के रूप में हैं। ये स्त्रियाँ समाज के विभिन्न वर्गो से आयीं हैं। इन सबका दुःख भी एक जैसा नहीं है। विभिन्न कारणों से इन्होंने प्रवज्या ली। इनमें से कुछ बौद्ध भिक्षुणियों की आत्माभिव्यक्ति निम्नवत है—

अंबपाली- वैशाली के राजोपवन में आम के पेड़ के नीचे जन्म होने के कारण इसका नाम अंबपाली रखा गया। युवावस्था में अतिशय सुंदर होने से वैशाली के राजकुमारों में उससे विवाह करने की प्रतिस्पर्धा होने लगी। पंचायत ने इसके निवारण के लिए उसे सबकी नगरवधू होने की घोषणा कर दी। एक बार महात्मा बुद्ध अपने अंतिम दिनों में वैशाली की ओर गए तो अंबपाली के उपवन में ठहरे। अंबपाली ने भगवान बुद्ध के चरणों की पूजा की और भोजन के लिए निमंत्रित किया। भोजन के बाद उपदेश ग्रहण किया और अपना उपवन बुद्ध संघ को दान कर दिया। साधना करते हुए अंबपाली ने अपने प्रव्रजित

पुत्र विमल कौड्न्य से प्रवज्या ग्रहण की। वृद्धावस्था में अपने शरीर के परिवर्तनों को देखकर अंबपाली ने बुद्ध वचनों की सत्यता प्रतिफलित होते देख उसे संसार की सभी वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान हुआ। अपने निरंतर जर्जरित होते शरीर को देखकर वह कहती है–

"काले भौरें के रंग के समान, जिनके अग्र भाग घुँघराले हैं, ऐसे किसी समय मेरे बाल थे,
वही आज जरावस्था में जीर्ण सन के समान हैं–सत्यवादी(बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।।"[1]

वह शरीर के सभी अंगों की शिथिलता का वर्णन करती हुए कहती है कि जो अंग युवावस्था में सुकोमल और व्यवस्थित थे, वे आज वृद्धावस्था में अत्यंत शिथिल हो गये हैं। मानव शरीर दुःखों का घर है। जिसप्रकार बिना लिपा पुताई के घर गिर जाता है ठीक उसी प्रकार वृद्धावस्था में यह शरीर भी शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा। इसप्रकार अंबपाली शरीर की नश्वरता पर सूक्ष्मता से प्रकाश डालती है। स्त्री मन की ऐसी स्वतंत्र अभिव्यक्ति आधुनिक स्त्री की सोच को वितान देती है और स्त्री की देह से परे उसके मस्तिष्क की तर्कशीलता को प्रमुखता देती है।

पटाचारा- धनी सेठ की कन्या पटाचारा की कथा अत्यंत मार्मिक है। पति एवं पुत्रों की मृत्यु होने व माता-पिता और भाई की एकसाथ मृत्यु के आघात से वह विक्षप्त हो जाती है। भगवान बुद्ध के प्रवचनों से अनित्य का बोध होने पर वह दीपशिखा भांति पूर्ण निवृत्त रूप में अपने उद्‌गार व्यक्त करती है–

"यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा
तं कुतो चागलं सत्तं, मम पुत्रों ति रोदसि।।"[2]

अर्थात् वह किस पथ से आया, किस पथ से चला गया! इतना तक जिसके विषय में तू नहीं जानती, तब उसके लिए जो तेरे पास कुछ समय के लिए था, तू मेरा पुत्र! मेरा पुत्र! कह कहकर क्यों रोदन करती है।

पटाचारा पारिवारिक जीवन में मृत्यु के सम्बन्ध में उपर्युक्त श्लोक में अपने विचार व्यक्त करती है साथ ही जीवन की क्षणभंगुरता को गहराई से चित्रित करती है।

"हल से भूमि को जोत कर मनुष्य उसमें बीज बोते हैं,
इस प्रकार अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन करते हुए वे धन उपार्जन करते हैं।
तो फिर क्यों न मैं साधिका निर्वाण को प्राप्त कर पाती?
मैं, जो कि शील से सम्पन्न हूँ, अपने शास्ता के शासन को करने वाली हूँ। अप्रमादिनी हूँ, अचंचल और विनीत हूँ।"[3]

इस तरह वह आध्यात्मिकता की ओर अपनी दृढ़ आस्था रखती है।

पूर्णिका – श्रावस्ती में यह सेठ अनाथपिंडिक के घर दासी पुत्री के रूप में कार्य करती थी। एक दिन जल से शुद्धि मानने वाले एक ब्राह्मण को विशुद्धि के मार्ग पर उपनीत किया। इससे अनाथपिंडिक की दासी पुत्री में श्रद्धा हो गई। दासत्व से मुक्ति पाकर वह भिक्षुणी संघ में प्रविष्ट हुई। इसने अपने जीवनानुभवों को संगीतात्मक, आत्माभिव्यंजक शैली में व्यक्त किया है–

"मैं पनिहारिन थी। सदा पानी भरना ही मेरा काम था;
स्वामिनी के दंड के भय से,
उनके क्रोध भरे कुवाच्यों से पीड़ित होकर,
मुझे कड़ी सदी में भी सदा पानी में उतरना पड़ता।।

ब्राह्मण! तू किस भय से भयभीत होकर, इस कड़ी सदी में गहरी नदी में उतरता है और निरंतर सदी की कठिन पीड़ा को सहता है?"[4] आगे कहती है–

"सग्ग नून गमिस्सन्ति, सब्बे मण्डूककच्छपा।
नागा च सुसुमारा च, ये चन्ने उदके चरा।।"[5]

यदि जल से ही शुद्धि होती तो मेढ़क, कछुए, सर्प, मगरमच्छ भी स्वर्ग जाते। इस तरह यह भिक्षुणी उसके भ्रम का निवारण

करती है। दासत्व से मुक्ति पाकर यह भिक्षुणी आध्यात्मिकता के उच्चतम शिखर पर पहुँचती है और स्त्री मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।

मुत्ताथेरी, सुमंगलमाता – ये दोनों बौद्ध भिक्षुणियाँ अपने पारिवारिक जीवन के कष्टों से मुक्त होने की बात करती हैं। मुत्ताथेरी कहती है–

"सुमुत्ता साधुमुत्ताम्हि, तीहि खुज्जेहि मुत्तिया।
उदुक्खलेन मुसलेन पतिना खुज्जकेन च।
मुत्ताम्हि जातिमरणा भवनेति समहताति।"[6]

अर्थात् मैं सुमुक्त हो गयी, भली प्रकार से विमुक्त होगयी। ओखली से, मूसल से और अपने कुबड़े स्वामी से, मैं भली प्रकार से मुक्त हो गयी। किन्तु इससे भी एक और महान मुक्ति मुझे मिल गयी, मैं आज जरा और मरण से भी मुक्त हो गयी।

सुमंगलमाता भी अपने पारिवारिक जीवन का दुःखद वर्णन करते हुए कहती है–

सुमुत्तिका सुमुत्तिका, साधुमुत्तिकाम्हि मुसलस्स।
अहिरिको मे छत्तकं वा पिता, उक्खलिका मे देड्डुभं वाति।।"[7]

अर्थात्– अहो! मैं मुक्त नारी! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है! पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी, आज उससे मुक्त हुई। मेरी दरिद्रतावस्था के वे छोटे-छोटे खाना पकाने के बर्तन, जिनके बीच में मैं मैली-कुचली बैठती थी और मेरा निर्लज्ज पति मुझे छातों से भी तुच्छ समझता था, जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था।

यहाँ स्त्रियों ने अपने पूर्व जीवन के अनुभवों को बहुत सुंदर तरह से भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। इन्होंने अपने पूर्व जीवन के दुःख को स्वीकार कर, बुद्ध का आश्रय ग्रहण कर गंभीर, उदात्त एवं शांत सुख को अनुभूत किया है। इन स्त्रियों के अतिरिक्त रोहिणी, चापा, सुंदरी, सुभाकम्मारधीता, सुभाजीवकम्बवनिका, जयंती, चित्रा, मित्रा, सुमना, श्यामा, उत्तमा, सोमा, उत्पलवर्णा, शुभा, ऋषिदासी, सुमेधा जैसी असंख्य बौद्ध भिक्षुणियाँ हुईं, जिन्होंने अपनी आत्माभिव्यक्ति थेरीगाथा के माध्यम से की। "थेरियों ने अपने सामाजिक जीवन को, अपने पारिवारिक जीवन को, नारी के रूप में समाज में उनके स्थान को तत्कालीन सामाजिक धार्मिक मान्यताओं को अच्छी तरह काव्यमय शैली में किया है।"[8] ये स्त्रियाँ साधनारत रहकर पुरुषों की भी शिक्षिका बनीं। उन्होंने बुद्ध दर्शन के चार आर्य सत्यों के आधार पर जीवन के दुःखों से मुक्ति प्राप्त की।

आधुनिक समय में स्त्री स्वातंत्र्य, समानता के अधिकारों की चर्चा व्यापक रूप से हो रही है। आदिकाल से लेकर अब तक स्त्रियों की स्थिति में बहुत परिवर्तन हुए हैं। समाज में उन्हें कभी मानवीय तो कभी अमानवीय दृष्टि से देखा गया जिसका प्रभाव उनकी शिक्षा, विवाह, परिवार, संपत्ति, सत्ता संबंधी अधिकारों पर पड़ा। समाज में स्त्री का स्थान और स्वरूप जानने के लिए दीर्घ जीवन परम्पराओं को देखना आवश्यक है। इसके लिए उपलब्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों, दस्तावेजों व साहित्यिक रचनाओं को आधार बनाया जा सकता है। थेरीगाथा सम्पूर्ण पालि साहित्य में इसी क्रम की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसके प्रकाश में किसी भी समाज में स्त्री की सामान्य स्थिति को परखा जा सकता है। बौद्ध परंपरा की यह दृष्टि जिसने बहुत पहले ही यह सिद्ध कर दिया था कि स्त्री भी ज्ञान साधना और आध्यात्मिक उपलब्धि में पुरुष के समान सक्षम है, यह अत्यंत प्रासंगिक है। स्त्री शक्ति और आध्यात्मिक स्वातंत्र्य का विशेष महत्त्व है। जिसप्रकार वर्तमान समय में सम्पूर्ण समाज में तमाम विसंगतियाँ फैल रही हैं। ऐसे समय में बौद्ध दार्शनिक चिंतन परंपरा के व्यावहारिक मूल्यों पर चलने वाली 'थेरीगाथा' न केवल स्त्री मुक्ति का आख्यान है, वरन सम्पूर्ण समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ है।

निष्कर्ष

वस्तुतः 'थेरीगाथा' के माध्यम से बौद्धकालीन स्त्रियों ने स्वयं अपनी मुक्ति की गाथा लिखी जो आज की स्त्री के लिए प्रेरणा स्रोत है। स्त्री मुक्ति की छटपटाहट हर युग में देखने को मिलती है। हर युग में स्त्री को जब भी अवसर प्राप्त हुआ, उसने अपनी पीड़ा व्यक्त की है। 'थेरीगाथा' इसी पीड़ा और प्रतिरोध की निर्मिति है। 'थेरीगाथा' में मुक्ति की आकुल उत्कंठा

ही थेरियों के काव्य सृजन की प्रेरणा है। यह आज के स्त्री चिंतन की भी प्रेरणा है। वस्तुतः कहा जा सकता है कि स्त्री मुक्ति का यह आख्यान 'थेरीगाथा' आधुनिक स्त्री के लिए मील का पत्थर है जिसने स्त्रियों के लिए नवीन संभावनाओं के द्वार खोले हैं।

सन्दर्भ

1. उपाध्याय, भरत सिंह, थेरी गाथाएँ, सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन, 1950, पृष्ठ 71
2. कश्यप, जगदीश भिक्षु, खुद्दकनिकाये, नव नालंदा महाविहार, बिहार, 2017, पृष्ठ 422
3. उपाध्याय, भरत सिंह, थेरी गाथाएँ, सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन, 1950, पृष्ठ 39
4. वही, पृष्ठ 68
5. कश्यप, जगदीश भिक्षु, खुद्दकनिकाये, नव नालंदा महाविहार, बिहार, 2017, पृष्ठ 414
6. वही, पृष्ठ 405
7. वही, पृष्ठ 407
8. विमलकीर्ति, थेरीगाथा, भूमिका, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2018

सहायक आचार्या (हिन्दी विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सेक्टर 11, चंडीगढ़

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

'अपने-अपने राम' : 'कंब-रामायण' के संदर्भ में

डॉ. करुणा शर्मा

शताब्दियों से भारतीय संस्कृति के कण-कण में व्याप्त 'राम' अब केवल भारत के ही ऐतिहासिक, धार्मिक अथवा पौराणिक पात्र बनकर नहीं रह गए हैं अपितु अब वे वैश्विक मानस की सामुहिक चेतना के उज्ज्वल प्रतीक बनकर जन-जन के तन-मन को प्रफुल्लित, चकित, आकर्षित तो कर ही रहे हैं साथ ही वे इतिहास, दर्शन, संस्कृति, मनोविज्ञान, राजनीति, नैतिकता और अध्यात्म के केंद्र में उपस्थित होकर अपने स्वरूप को और अधिक रहस्यमय बना रहे हैं। हर किसी के अपने राम हैं, जो व्यक्ति के अंतर्मन की आवश्यकता के अनुरूप रूपांतरित होते रहते हैं, इस बात को प्रमाणित किया है विश्व भर में प्रचलित विविध रामायणों में अभिव्यक्त 'राम' ने, चाहे वह थाईलैंड की 'रामाकियन' हो, मलेशिया की 'हिकायत सरी' हो, मयन्मार की 'रामवत्थु' हो, कंबोडिया की 'रामकरेति' हो, इंडोनेशिया की 'रामककविन' हो, फिलीपिंस की 'महाराजा लावण' हो और चाहे तमिल की 'इरामावतारम' अथवा 'कंब-रामायण' हो अथवा तेलगू की 'रंगनाथ रामायण' हो। यहाँ पर हम बात करने जा रहे हैं तमिल की 'कंब-रामायण' में विविध पात्रों के मनोनुरूप प्रस्तुत अपने-अपने 'राम' के बारे में।

'कंब-रामायण' तमिल साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति एवं बृहत् गंथ है। 'कविच्चक्रवर्ती' के रूप में प्रसिद्ध कंबन ने आदिकवि वाल्मीकि की रामायण को आधार बनाकर 'कंब-रामायण' की रचना की जिसमें दस हजार से अधिक श्लोक हैं तथा जो छह कांडों में विभक्त है। यद्यपि 'कंब-रामायण' कथानक की दृष्टि से वाल्मीकि-रामायण पर आधारित है, तथापि उसमें तमिल संस्कृति और लोकाचार को आधार बनाकर मूल ग्रंथ की घटनाओं में सैंकड़ों परिवर्तन किए गए हैं तथा परिस्थितियों को उपस्थित करने में, पात्रों के संभाषण में, प्रार्कतिक दृश्यों के उपस्थापन में एवं पात्रों की मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति में कवि की पर्याप्त मौलिकता, कवित्व-शक्ति की पराकष्ठा, भाषा की ओजस्विता और आलंकारिकता देखी जा सकती है। कवि की इस प्रतिभा को देख तमिल, हिंदी, अंग्रेजी आदि साहित्यों के प्रसिद्ध विद्वान श्री वी. वी. एस. अय्यर ने लिखा है, 'यह (कंब-रामायण) विश्व साहित्य में उत्तम कृति है, 'इलियड' और 'पैराडाइज लॉस्ट' और 'महाभारत' से ही नहीं, वरन् मूलकाव्य वाल्मीकि रामायण की तुलना में यह अधिक सुंदर कृति है। यह केवल आनंदातिरेक से कही गई उक्ति नहीं है वरन् अनेक वर्षों तक किए गए गहन अध्ययन से धीरे-धीरे पुष्ट हुआ विचार है।'

जब कंबन ने 'कंब-रामायण' का लेखन प्रारंभ किया तो उनके समक्ष एक द्विविधा थी कि अपने महाकाव्य का वर्ण्य-विषय 'वाल्मीकि रामायण' के मनुष्य के रूप में जीवन व्यतीत करने वाले, बाद में महामानव के रूप में प्रतिष्ठित 'राम' को बनाया जाए या वाल्मीकि के बाद की शताब्दियों में हुए अत्यधिक लोकप्रिय, दिव्य और उत्कृष्ट गुणों के कारण मंदिरों में स्थापित भगवान के रूप में पूज्य 'राम' को। वैष्णव होने के कारण कंबन तमिल भक्त आलवारों से अत्यंत प्रभावित थे क्योंकि उनके अनुसार, ईश्वर का इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में अवतरित होना, स्वर्ग में विराजमान देवता के अमूर्त स्वरूप से कहीं अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है और मनुष्य में अपार क्षमता निहित है जिसे सही ढंग से उपयोग करने पर वह देवत्व प्राप्त कर सकता है। आलवारों के इन सभी विचारों का प्रभाव ग्रहण करते हुए जन्मजात कवि और प्रतिभाशाली रचनाकार कंबन ने 'राम' के रूप में ऐसे व्यक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया जिसने मनुष्य की तरह अनेक भावनात्मक समस्याओं और अस्तित्व

संबंधी दुविधाओं का सामना किया तथा अंत में उन सभी पर विजय प्राप्त की। उनकी कुशल और दक्ष प्रस्तुति के कारण उस समय प्रचलित दोनों संप्रदायों-शैव (नयनमार) और वैष्णव (आलवार) के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बना रहा, साथ ही 'कंब-रामायण' का आदर भी हुआ, इसे प्रमाणित करती हैं प्रो. टी. पी. मीनाक्षिसुंदरम् की ये पंक्तियाँ, 'कंब रामायण' केवल वैष्णव संप्रदाय का ग्रंथ नहीं है। ग्रंथारंभ में तथा प्रत्येक कांड के आदि में मंगलाचरण के जो पद्य हैं, उनसे यह तथ्य प्रकट होता है। कवि ने परमात्मा का वर्णन शिव और विष्णु के रूप से भी अधिक केवल सृष्टिकर्ता के रूप में किया है किंतु रामचंद्र को उस परमात्मा का अवतार ही माना है।' उन्होंने अपने महाकाव्य में किसी भी सांप्रदायिक देवता का उल्लेख नहीं किया बल्कि उस एक सत्ता को प्रणाम किया जो निरंतर सृष्टि का सृजन, संरक्षण और संहार करती है।

कंबन ने राम से संबंधित अपनी समस्त भावनाओं का प्रगटीकरण अपने पात्रों के माध्यम से इसप्रकार किया है कि कभी तो राम आम जन की तरह आचरण करते हुए दिखाई देते हैं तो कभी वे ज्ञानमार्गी के लिए पूर्ण ब्रह्म, सत्य, सार्वभौमिक चेतना तथा आनंद का प्रतीक बन जाते हैं। जहाँ वेदांत के साधकों को वे संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त दिखाई देते हैं तो वहीं भक्तों को वे प्रेम के प्रतीक के रूप में। किसी को वे त्याग की मूर्ति तो किसी को लोकमंगल का आधार दिखाई देते हैं। कहने का अर्थ सिर्फ इतना है–

'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।'

कंब-रामायण' के सभी पात्रों के अपने-अपने राम हैं। कोई सीमित दायरा नहीं। अब हमारे लिए यह जानना अत्यंत रोचक होगा कि 'कंब-रामायण' के कवि सहित विभिन्न पात्र अपने 'राम' को कैसी-कैसी दृष्टि से देखते हैं जैसे-

स्वयं कवि की दृष्टि में राम-ग्रंथ के आरंभ में कवि कंबन समस्त लोकों के सर्जक, रक्षक और विनाशक ईश्वर के शरणागत होकर स्वीकारते हैं कि उस परमात्मा को पूर्ण रूप से जानना मेरे जैसे (मंदबुद्धि) के लिए असंभव है, फिर भी त्रिमूर्ति के रूप में से प्रथम गुण के रूप में (विष्णु) भगवान के कल्याणकारक गुणों के सागर में गोते लगाना ही उत्तम है। उनके राम सर्वव्यापक हैं जिसे कहीं वे आदि ब्रह्म कहते हैं, कहीं उसे उत्पत्ति और विकारों से युक्त नाना प्रकार के रूपों (वस्तुओं) में लय देखते हैं। कहीं वे विस्मित हो कह उठते हैं कि क्या जिस परमात्मा के दर्शन से सारा भ्रम मिट जाता है, उसी ब्रह्म ने अपने हाथ में धनुष धारण कर लंका में युद्ध किया! युद्धकांड तक आते-आते वे उसके बारे में बस यही कह पाते हैं कि यदि उसे एक कहो, तो वह एक है और यदि अनेक कहो तो वह अनेक है। किसी वस्तु के जैसा नहीं है तो वह वैसा नहीं है। वह अमुक जैसा है तो वह वैसा ही है। यदि 'नहीं' है कहा जाए तो वह नहीं है। यदि 'है' कहा जाए तो वह है।

इसप्रकार कवि कंबन के 'राम' वही 'ईश्वर' हैं जिनके नाम को ज्ञानी जन जपते रहते हैं तथा जो धर्म को स्थापित करने के लिए सर्पशैया को छोड़कर इस धरती पर अवतीर्ण हुए हैं। 'महाकवि कंबन राम को त्रिमूर्तियों से भी श्रेष्ठ समझता है क्योंकि राम ने रावण को पराजित किया था। प्रलयकाल में समस्त लोकों का विनाश करने वाला एक ही होता है।' भाव यह है कि भगवान जैसे तत्व को समझना किसी के लिए भी असंभव है।

आम जन के रूप में राम-'कंब-रामायण' में राम का आचरण कहीं-कहीं सामान्य मनुष्य की तरह दिखाई देता है। पहली बार जनकपुरी में सीता को देखने पर राम का आम युवक की तरह सोचना, 'लगता है कि कोई बिजली मेघ से अलग होकर सुंदर नारी के रूप में आकर उपस्थित हो गई है!' और उसके बाद सीता के सौंदर्य की भाँति-भाँति की कल्पना करते हुए काम-भाव में डूब जाना, काम भाव को उद्दीप्त करने वाले सीता के अंग-प्रत्यंगों का उनके सामने नर्तन-सा करने लगना युवावस्था की एक सामान्य मनोदशा को व्यक्त करता है।

सीता के हरण हो जाने पर विशाल जल सरोवर के पास पहुँचने पर वहाँ उपस्थित बालहंसों, कमलपुष्पों आदि को देखने पर राम को सहज ही सीता की याद आना और विरह-वेदना की पीड़ा में रोने लगना, वर्षा ऋतु में राम का काम भाव से संतप्त होना, अत्यंत विरही राम का लक्ष्मण से अपनी मनोव्यथा कहना 'सीता के बिना उनका जीवित रहना असंभव है', सीता के विरह में राम का बार-बार मूर्च्छित होना और सुग्रीव के सांत्वना देने पर उनका इस तरह सचेत हो उठना कि मानो उनमें नए प्राण आ गए हों, एक आम जन की मनःस्थिति का द्योतक है।

दक्षिण दिशा में गए हुए वानरों के लौटकर आने का समाचार पाकर राम का सामान्य जन की तरह द्वंद्वग्रस्त होना, हनुमान के लौटकर आने पर उनका दुख शांत होना तथा सीता के प्रति उनका प्रेम उमड़ना, सीता की दी गई चूड़ामणि को देखकर उनके शरीर और मन का ताप दूर होना, हनुमान द्वारा सीता के मारे जाने का समाचार सुनकर उनका संज्ञाशून्य होना आदि आचरण भी आम जन जैसे ही हैं।

इसप्रकार के व्यवहार को देख आम व्यक्ति के मन में उनके अलौकिकत्व को लेकर भ्रम होना स्वाभाविक है। आमजन के रूप में इसप्रकार का वर्णन कवि के मनोवैज्ञानिक ज्ञान को दर्शाता है, साथ ही यह भी बताता है कि जब सामान्य जन अपने सद्‌गुणों को अपने आचरण में उतारता है तो ईश्वरत्व को प्राप्त करना असंभव नहीं होता।

अयोध्यावासियों की दृष्टि में राम-अयोध्या पहुँचने पर राम के वियोग में संतप्त माताओं के पास पहुँच कर उनका लाड़ले बछड़े के समान बन जाना, अपने उत्तम अनुजों की आँखों की पुतली बन जाना, सबको दर्शन देकर व्याधिग्रस्त शरीर से निकले हुए प्राणों को पुनः लौटाना जैसे व्यवहार अयोध्यावासियों के प्रति राम के प्रेम को व्यक्त करते हैं। वे दीन प्राणियों के लिए माँ के समान, भक्तों के लिए अलभ्य अमृत के समान और उत्तम मुनियों के लिए व्यक्त परमात्मा के समान बन जाते हैं। उनके आगमन से पुरुषों तथा टिकोरे जैसी आँखों वाली स्त्रियों की ऐसी दशा हो जाती है जैसे चित्रस्थ प्रतिमाएँ चौतन्य पाकर सजीव हो गई हों। कहने का अर्थ इतना ही है कि अपने प्रति अनन्य प्रेम से भरे अयोध्यावासियों के लिए वे साक्षात् प्रेम की मूर्ति बन गए। चहुँ ओर प्रेम ही प्रेम बरस रहा था।

सभासदों की दृष्टि में राम-सभासदों की दृष्टि उनके सद्‌गुणों पर ही रहती है। उनके लिए राम दानशील, धर्मशील, सच्चरित्र, उत्तम ज्ञान से भरपूर, महात्माओं की संगति करने की सदिच्छा आदि सब सद्‌गुणों से परिपूर्ण हैं।

विराध की दृष्टि में राम-जब विराध राम के चरणों को सब लोकों में व्याप्त देखता है तो वह आश्चर्य से कहता है कि उनके अन्य अंग कहाँ और कैसे रहते होंगे? उसे वे कभी परमपद में स्थित मुक्त जीवात्मा के समान तो कभी परमात्मा के अवतार दिखते हैं। वह उन्हें अज्ञेय मानते हुए कहता है कि तुम लोगों को स्वयं को पहचानने की शक्ति प्रदान करो। राम को अंतर्यामी मानते हुए भी वह भ्रमित है कि जब विशाल लोक की चर-अचर सब वस्तुएँ वही परमात्मा हैं, तो भी वह उनसे पृथक एक मनुष्य के रूप में अवतीर्ण हुआ है! कहने का भाव है कि 'राम' अथवा ईश्वर को व्यक्त करना असंभव है।

इंद्र की दृष्टि में राम-राम की अलौकिकता को लेकर इंद्र का कभी उन्हें ज्योति कहना तो कभी उसका यह कहना कि राम का न तो कोई शत्रु है, न ही कोई मित्र तथा उनके लिए प्रकाश और अंधकार का, यौवन और बुढ़ापे का, आदि, मध्य और अंत का भी कोई महत्व नहीं है। ईश्वर के संबंध में भ्रमित दृष्टि वाला इंद्र कभी उन्हें एक कहता है तो कभी अनेक मानता है।

हनुमान की दृष्टि में राम-राम को अलौकिक कर्ता मानने वाले हनुमान के लिए राम देव, असुर, दिग्गज, दिव्यपालक, मुनि में से कोई भी नहीं हैं, वे समस्त भूतल पर राज्य करने के लिए उत्पन्न एक चक्रवर्ती के कुमार हैं; वेदों तथा धर्मग्रंथों में प्रतिपादित सत्यधर्माकार पुरुष हैं; देवताओं के रक्षक तथा सृष्टि के आदिकारणभूत हैं, जो शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा के रूप में न होकर हाथ में धनुष धारण करके दुर्जनों का विनाश तथा सत्पुरुषों के कष्टों को दूर करने के लिए अयोध्या में जन्मे हैं।

विभीषण की दृष्टि में राम-राम का दर्शन करने पर विभीषण को राम कालमेघ के समान लगते हैं। फिर वे अचानक भ्रमित हो सोचते हैं कि क्या यह क्या कोई अरुण नयनों वाला अंजन पर्वत है? या कोई कालमेघ कमल-पुष्पों से भरा है? अवश्य ही यह विष्णु है। अहो! क्या अपूर्व करुणा एवं धर्म का आकार भी काले रंग का होता है?

वरुण की दृष्टि में राम-वरुण को राम जल, अग्नि, समस्तभूत, समस्त लोक तथा उन लोकों में स्थित संपूर्ण प्राणियों के रूप में दिखाई देते हैं। सारी सृष्टि को प्रकट करने वाले, उसकी रक्षा करने वाले तथा प्रलयाग्नि में उसे विनष्ट करने वाले, एक ही तीक्ष्ण बाण में सब लोकों को जलाने वाले, साथ ही माता- पिता, भूत-भविष्य, पतन-उत्थान आदि सभी स्वरूपों में उन्हें वही राम दिखते हैं। कुछ भी स्पष्ट न होने के कारण वे राम से ही पूछते हैं कि मैं तुम्हें कैसे समझूँ?

अंगद की दृष्टि में राम-अंगद रावण को अपना परिचय राम के उस गौरवपूर्ण स्वरूप के बारे में बताकर देते हैं कि मैं

सब भूतों के नायक, जल से आवृत्त पृथ्वी के नायक, पुष्प से भी अधिक कोमल सीता देवी के नायक, देवों के नायक, तुम जो वेद पढ़ते हो, उन वेदों के नायक तथा विधि के नायक श्री राम का दूत हूँ।

रावण की दृष्टि में राम-राम द्वारा शस्त्रविहीन रावण को करुणापूर्वक छोड़ दिए जाने पर अत्यंत लज्जित वेद-शास्त्रों का ज्ञाता रावण विस्मित होकर बूढ़े माल्यवान से कहता है कि युद्धक्षेत्र में भी वह क्रोधशून्य था, उसके बाण तन-मन को झुलसाने में सक्षम थे, पर मैं उन शरों की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। उसके शर-संधान के बारे में देवता भी नहीं जान पा रहे थे, शिव, इंद्र और विष्णु की सहस्र भुजाएँ भी उसकी एक अंगुली के समान बलशाली नहीं थीं।

वे वीरों के भी वीर हैं। मेरे विनाश के समय के आ जाने के कारण ही मुझे इंद्र, ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु से भी अधिक पराक्रमी शत्रु मिला है। अंत में इतना पराक्रमी और विद्वान रावण भी यही कहता है कि वह शिव, चतुर्मख ब्रह्मा, विष्णु, महान् तपस्वी आदि में कोई भी नहीं है। वह वेदों का आदिकारणभूत परमपुरुष है।

गरुड़ की दृष्टि में राम-नागपाश में बँधे लक्ष्मण को देखकर अत्यंत दुखी राम अपने प्राणों को त्यागने की बात करते हैं, तब भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ को लगता है कि राम वास्तव में दुखी नहीं है, वे केवल लीला कर रहे हैं क्योंकि राम तो नित्य यौवन में स्थित रहकर चौदह लोकों की रक्षा करते हैं, भक्तों को अलभ्य आनंद के साथ ही मोक्ष प्रदान करते हैं। वे दुखी हो ही नहीं सकते। यह केवल उनकी माया है जिसे कोई नहीं जान सकता? वेदों द्वारा स्तुत्य, प्राणियों को जीवन देने वाले, अविनाशी होकर भविष्य में स्थित रहने वाले राम आत्मा की आत्मा हैं। अनुपम शब्दरूप तथा शब्द के अर्थ स्वरूप राम सर्वत्र और सब जीवों में हैं। सारी सृष्टि को एकीकृत करने वाले राम कैसे दुखी हो सकते हैं!

देवताओं की दृष्टि में राम-लक्ष्मण को मृत समझकर रोने वाले राम को देखकर देवतागण भ्रमित होकर यही सोचते हैं कि क्या वे हमारे लिए अभिनय कर रहे हैं अथवा वास्तव में दुख भोग रहे हैं। देवता कहते हैं कि सृष्टि के तत्व को तथा भूत, भविष्य और वर्तमान को जानने की समझ हम में नहीं है। राम तो सारे ब्रह्मांड के प्राणियों को अपने उदर के भीतर और बाहर अवस्थित रखते हैं, निगल जाते हैं, उगल देते हैं, नापते हैं, धारण करते हैं, उनका न आदि है, न मध्य है और न ही अंत है।

जांबवान की दृष्टि में राम बहुतों के लिए ज्ञेय भी हैं, किंतु किसी-किसी के लिए अज्ञेय भी हैं। फिर वे उन्हीं से पूछते हैं कि क्या वे स्वयं को नहीं पहचानते?

राक्षसों की दृष्टि में राम-युद्धक्षेत्र में राम की माया से अभिभूत से राक्षस समझ नहीं पाते कि राम आगे हैं या पीछे हैं, मुख पर हैं या अंतर में हैं, पार्श्व में हैं, सिर पर हैं, धरती पर हैं, गगन में हैं, सामने हैं, हमारे अंतर में ही नहीं अपितु हमारे बाहर भी हैं। राम एक हैं अथवा अनेक हैं, इसप्रकार भ्रमित राक्षस एक दूसरे को राम समझ कर परस्पर प्राण हर लेते हैं। उन्हें राम एक मुख नहीं लगते क्योंकि उनके अनुसार यह संभव नहीं है कि सहस्त्र समुद्र राक्षसों के सब कार्य एक मुख देख पाए। अतः राम के असंख्य मुख हैं।

ब्रह्मा की दृष्टि में राम अति पुरातन सूर्यकुल में उत्पन्न एक मनुष्य मात्र नहीं हैं, वे चारों वेदों द्वारा प्रतिपादित एकमात्र सत्य हैं। उनका मानना है कि सदैव स्थिर रहने वाले; सारी सृष्टि के आदि कारण; उस मूल प्रकृति के विकार से उत्पन्न तत्व तथा उन तत्वों से परे सबके लिए दुर्ज्ञेय पुरुष; जन्म और मृत्यु से परे; पंच तत्वों को स्वयं में लय करने वाले तथा सृष्टि का निर्माण, पालन और विनाश करने वाले राम ही हैं।

दशरथ की दृष्टि में राम एक उत्कृष्ट कोटि के पुत्र हैं जिनके कारण वे स्वयं को बहुत गौरवान्वित अनुभव करते हैं। उन्हीं के कारण वे दुर्लभ उत्तम लोक प्राप्त कर अमित यश के भागी बने हैं। राम जैसे पुत्र के कारण ही अब देवता उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं और वे ब्रह्मा के समान होकर ब्रह्मांड से भी ऊपर स्थित लोक विशेष में रहते हैं।

निष्कर्ष-'कंब-रामायण' के संदर्भ में जब हम उसके पात्रों के 'अपने-अपने राम' का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि उनके पात्रों के राम उपनिषदों में कहे गए इस वाक्य से बहुत समानता रखते हैं कि वह इतना विराट है कि मन उसकी कल्पना नहीं कर सकता। वह इतना सूक्ष्म है कि परमाणु, अणु और इलैक्ट्रान भी बड़े लगते हैं। वही परम सत्ता प्रत्येक जीव के भीतर

प्रकाशमान है। जो उसे अपने से दूर मानता है, उसके लिए वह अत्यंत दूर प्रतीत होता है किंतु जो उसे अपने हृदय में अनुभव करता है, उसके लिए वह सबसे निकट है। वह हमारे अस्तित्व, हमारी चेतना और हमारे हृदय की गहराइयों में हमेशा विद्यमान है। परमात्मा न तो देखा जा सकता और न ही व्यक्त किया जा सकता है।

इसप्रकार एक ही सत्य अनके दृष्टियों से अनेक दिखाई देता है और यही विराटता का स्वीकार्य है। 'कंब-रामायण' के पात्रों के अपने-अपने राम हैं जैसे सूर्य एक है, पर उसकी किरणें अनंत हैं, सागर एक है, पर उसकी लहरें असंख्य हैं, उसी प्रकार राम एक हैं, पर उन्हें अनुभव करने के मार्ग अनंत हैं। इसलिए उनके प्रत्येक पात्र का राम उसका निजी अनुभव है जो किसी ग्रंथ या प्रतिमा में नहीं उसके अपने अंतर्मन में सर्वदा विराजमान है। डॉ चंद्रकांत तिवारी के शब्दों में कहा जा सकता है–

जिसने जैसा भाव सँजोया, वैसा पाया राम।
ज्ञान-दीप में ब्रह्म प्रकाशित भक्ति में घनश्याम।
अपने-अपने भावलोक में, एक सनातन धाम।
अंतस की अयोध्या में विराजित अपने-अपने राम।

बी1-1002, अंतरिक्ष नेचर अपार्टमैंट्स,
नोएडा (201301)
मो- 9911103787

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार तथा श्रीलंकाई बौद्ध परंपरा में थेरवाद : बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक भूमिका

वाघ सचिन कैला

प्रस्तावना- बौद्ध धर्म विश्व के प्रमुख धर्मों में से एक है जिसने एशिया की सभ्यता, संस्कृति तथा दर्शन को गहराई से प्रभावित किया है। श्रीलंका उन देशों में अग्रणी है जहाँ बौद्ध धर्म ने लगभग तेईस शताब्दियों से निरंतर अपनी उपस्थिति बनाए रखी है। परंपरागत ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में सम्राट अशोक के पुत्र अरहंत महिंद थेर ने श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया, जिसके परिणामस्वरूप यह द्वीप थेरवाद बौद्ध धर्म का प्रमुख केंद्र बन गया। महाविहार परंपरा ने बौद्ध शिक्षाओं के संरक्षण तथा प्रसार में केंद्रीय भूमिका निभाई।

यह शोध-पत्र श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रचार, थेरवाद परंपरा के विकास तथा उसके सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

1. श्रीलंका में बौद्ध धर्म के आगमन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन।
2. थेरवाद बौद्ध परंपरा के विकास का विश्लेषण।
3. पालि त्रिपिटक के संरक्षण में श्रीलंका की भूमिका का मूल्यांकन।
4. श्रीलंकाई समाज एवं संस्कृति पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का अध्ययन।
5. वैश्विक स्तर पर थेरवाद के प्रसार में श्रीलंका के योगदान का विश्लेषण।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन मुख्यतः ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक (Historical and Descriptive) अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में प्राथमिक स्रोतों के रूप में दीपवंस, महावंस, चूलवंस तथा पालि त्रिपिटक का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में आधुनिक शोध-पत्र, पुस्तकें तथा बौद्ध इतिहास संबंधी अकादमिक अध्ययन सम्मिलित हैंश्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार तथा श्रीलंकाई बौद्ध परंपरा में थेरवाद बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक भूमिका।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म का आगमन

महावंस और दीपवंस के अनुसार सम्राट अशोक के शासनकाल में तृतीय बौद्ध संगीति के पश्चात विभिन्न देशों में धर्मदूत भेजे गए। इसी क्रम में महिंद थेर को श्रीलंका भेजा गया। राजा देवानम्पियतिस्स ने महिंद थेर के उपदेशों को स्वीकार किया और बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। इसके बाद महाविहार की स्थापना हुई, जिसने थेरवाद परंपरा की आधारशिला रखी।

महिंद थेर की बहन संघमित्ता थेरि द्वारा श्री महा बोधि वृक्ष की शाखा श्रीलंका लाई गई, जिसने बौद्ध धार्मिक जीवन को और अधिक सुदृढ़ बनाया।

महाविहार और थेरवाद परंपरा का विकास

अनुराधपुर स्थित महाविहार श्रीलंका का सबसे प्राचीन बौद्ध शिक्षण एवं साधना केंद्र था। यह संस्था थेरवाद बौद्ध धर्म के शुद्ध स्वरूप की प्रतिनिधि मानी जाती थी। महाविहार के भिक्षुओं ने विनय, सुत्त तथा अभिधम्म की परंपरा को संरक्षित रखा।

चौथी और पाँचवीं शताब्दी में आचार्य बुद्धघोष ने श्रीलंका आकर सिंहली अट्ठकथाओं के आधार पर पालि टीकाओं की रचना की। उनका ग्रंथ विशुद्धिमग्ग थेरवाद दर्शन का महत्वपूर्ण आधार बन गया।

6. पालि त्रिपिटक का संरक्षण।

श्रीलंका का सबसे महत्वपूर्ण योगदान पालि त्रिपिटक का संरक्षण है। पहली शताब्दी ईसा पूर्व में राजा वट्टगामणी अभय के शासनकाल में आलुविहार में त्रिपिटक को पहली बार लिखित रूप में संकलित किया गया। इस कार्य ने बौद्ध साहित्य को नष्ट होने से बचाया तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित किया इस ऐतिहासिक घटना के कारण श्रीलंका को थेरवाद बौद्ध साहित्य का प्रमुख संरक्षक माना जाता है।

7. श्रीलंकाई संस्कृति पर बौद्ध धर्म का प्रभाव।

7.1 शिक्षा

बौद्ध विहार प्राचीन काल से शिक्षा के केंद्र रहे हैं। उन्होंने धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ भाषा, साहित्य और दर्शन के विकास में योगदान दिया।

7.2 साहित्य

पालि तथा सिंहली साहित्य का विकास बौद्ध धर्म के प्रभाव में हुआ। महावंस, चूलवंस तथा अनेक अट्ठकथाएँ इसका उदाहरण हैं।

7.3 कला और स्थापत्य

अनुराधपुर, पोलोन्नरुवा तथा कण्डी काल में स्तूप, विहार, प्रतिमाएँ तथा भित्तिचित्र विकसित हुए, जो बौद्ध संस्कृति के प्रतीक हैं।

7.4 सामाजिक नैतिकता

पञ्चशील, करुणा, मैत्री तथा अहिंसा जैसे बौद्ध सिद्धांतों ने श्रीलंकाई समाज की नैतिक संरचना को प्रभावित किया।

8. दक्षिण-पूर्व एशिया में थेरवाद का प्रसार।

श्रीलंका ने म्यांमार, थाईलैंड, लाओस और कंबोडिया में थेरवाद परंपरा के पुनरुत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विभिन्न कालों में श्रीलंका से भिक्षु इन देशों में गए तथा उपसम्पदा परंपरा का पुनर्स्थापन किया गया। इससे थेरवाद बौद्ध धर्म का अंतरराष्ट्रीय विस्तार संभव हुआ।

9. समकालीन श्रीलंका और थेरवाद बौद्ध धर्म।

आज भी बौद्ध धर्म श्रीलंका की राष्ट्रीय पहचान का महत्वपूर्ण अंग है। धार्मिक उत्सव, विहार, शिक्षा संस्थान तथा सामाजिक सेवा कार्य बौद्ध मूल्यों पर आधारित हैं। आधुनिक युग में भी थेरवाद परंपरा समाज के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का मार्गदर्शन कर रही है।

10. निष्कर्ष- श्रीलंका में बौद्ध धर्म का इतिहास केवल एक धार्मिक परंपरा का इतिहास नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक, शैक्षिक और सामाजिक विकास की एक व्यापक प्रक्रिया का इतिहास है। महिंद थेर के आगमन से प्रारंभ हुई यह परंपरा महाविहार, पालि त्रिपिटक के संरक्षण तथा आचार्य बुद्धघोष जैसे विद्वानों के योगदान से सुदृढ़ हुई। श्रीलंका ने न केवल थेरवाद

बौद्ध धर्म को संरक्षित किया, बल्कि उसे दक्षिण-पूर्व एशिया तथा विश्व के अन्य भागों तक पहुँचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अतः यह कहा जा सकता है कि श्रीलंका थेरवाद बौद्ध धर्म की वैश्विक विरासत का प्रमुख संरक्षक और संवाहक रहा है।

संदर्भ

1. Mahavahasa.
2. Dipavahasa.
3. Vinaya Pihaaka.
4. Buddhaghosa, Visuddhimagga.
5. Geiger, Wilhelm. Mahavamsa.
6. Gombrich, Richard. Theravada Buddhism: A Social History.
7. Rahula, Walpola. History of Buddhism in Ceylon.
8. Malalasekera, G.P. Dictionary of Pali Proper .

At post Loni, Jamner, Jalgaon,
Maharastra, India 424207
Mob. 91 9372459241

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

हिन्दी लोक साहित्य में रामकथा और सिंहली लोक-सांस्कृतिक परंपरा में बुद्ध कथा : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. दीप्ति अग्रवाल

सारांश- बचपन से श्रीलंका का नाम सुनते आई हूँ और सौभाग्य से मुझे दो बार श्रीलंका जाने का अवसर मिला एक बार पर्यटन के लिए दूसरी बार एक कॉन्फ्रेंस में भागीदारी करने के लिए। दोनों बार यही लगा कि दोनों के बीच हिन्द महासागर बांहे पसारे खड़ा है और संस्कृति और इतिहास दोनों देशों के बीच सेतु का काम कर रहे हैं। चाहे भौगोलिक रूप से दोनों अलग देश हैं, लेकिन दोनों की सांस्कृतिक स्मृतियों के अनेक सूत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक ओर रामायण की कथा में लंका का महत्वपूर्ण स्थान है, दूसरी ओर भारत में जन्मा बौद्ध धर्म श्रीलंका पहुँचा और वहाँ की धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना का प्रमुख आधार बना। भारतीय लोकमानस में रामकथा जिस प्रकार धार्मिक आख्यान से आगे बढ़कर रामायण-पाठ, कथा-वाचन, लोकगीत, रामलीला, पर्व-त्योहार और दैनिक जीवन का हिस्सा बनी, उसी प्रकार श्रीलंका की सिंहली बौद्ध संस्कृति में बुद्ध की शिक्षाएँ, जातक कथाएँ, पाली बौद्ध साहित्य, धर्मोपदेश, वेसाक-पोसोन जैसे पर्व तथा दृश्य और गायन परंपराएँ सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित करती रही हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में मुख्यतः रामचरितमानस, थेरगाथा और थेरीगाथा को आधार बनाते हुए दोनों परंपराओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भाषा-शैली, धार्मिक दर्शन, स्त्री-अनुभव, लोक प्रदर्शन और सांस्कृतिक स्मृति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से सीता, शबरी, कौशल्या तथा दूसरी ओर मुक्ता, सोमा, पटाचारा और सुभा जैसी स्त्रियों के माध्यम से स्त्री की भक्ति, दुःख, निर्णय, सामाजिक स्थिति और आध्यात्मिक मुक्ति के भिन्न रूपों को समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही गिरमिट देशों में रामकथा से जुड़े मेरे अपने शोध-अनुभव को भी 'ग्रंथ से लोक और लोक से सांस्कृतिक स्मृति' की प्रक्रिया के अंतर्गत देखा गया है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि रामचरितमानस और पाली बौद्ध गाथाओं के दर्शन एवं साहित्यिक संरचना में मूलभूत अंतर होने के बावजूद करुणा, आत्मसंयम, दुःख, नैतिक आचरण और मानव-कल्याण जैसे प्रश्न इन्हें संवाद के एक साझा धरातल पर लाते हैं।

बीज शब्द : रामकथा, बुद्ध कथा, रामचरितमानस, थेरगाथा, थेरीगाथा, सिंहली संस्कृति, श्रीलंका, पाली साहित्य, लोक चेतना, स्त्री-विमर्श, सांस्कृतिक स्मृति, लोक प्रदर्शन।

प्रस्तावना : बचपन की कथाओं से लोक चेतना तक

हम सब पंचतंत्र की कहानियाँ, जातक कथाएँ, राम कथा और राम, सीता, कौशल्या, शबरी, श्रवण कुमार तथा अंगुलिमाल, यशोधरा जैसे पात्रों की कथाएँ पढ़ते-सुनते बड़े हुए हैं। रामायण की चौपाइयों का स्वर हो अथवा 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि'—ये केवल धार्मिक ग्रंथों में लिखे शब्द नहीं रहे, हमने समूह में ये सब बड़े होने तक खूब गाया है 'होई वही जो राम रचि राखा' और 'अप्प दीपो भव' मैंने अपने जीवन के मंत्र बनाए हुए हैं। अतः धीरे-धीरे ये हमारी

भाषा, संस्कार और सामूहिक स्मृति का हिस्सा बन गए।

मेरे लिए राम और बुद्ध केवल दो धार्मिक व्यक्तित्व नहीं हैं। दोनों भारतीय उपमहाद्वीप की ऐसी बड़ी सांस्कृतिक स्मृतियाँ हैं जिनकी कथाएँ अपने मूल भूगोल, समय और भाषा से बहुत आगे निकल चुकी हैं। राम भारतीय लोकमानस में मर्यादा, कर्तव्य, संबंध, त्याग और आदर्श के प्रतीक बने, तो बुद्ध करुणा, विवेक, अहिंसा, आत्मानुशासन और आत्मबोध के। दोनों की जीवन-दृष्टि अलग है, उनके दार्शनिक आधार भी अलग हैं, लेकिन दोनों मनुष्य को अपने भीतर और अपने समाज की ओर देखने की दृष्टि देते हैं।

भारत और श्रीलंका के संदर्भ में यह अध्ययन और भी रोचक हो जाता है। रामायण की कथा में लंका उपस्थित है, जबकि श्रीलंका के ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विकास में बौद्ध धर्म की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। श्रीलंका के आधिकारिक ऐतिहासिक विवरण के अनुसार राजा देवानाम्पिय तिस्स के शासनकाल में अरहंत महिंद द्वारा तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म का आगमन श्रीलंकाई इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में माना जाता है ("Country Overview")। इस प्रकार भारत और श्रीलंका का संबंध केवल दो पड़ोसी देशों का संबंध नहीं है; यह कथा, धर्म, भाषा, स्मृति और संस्कृति का भी संबंध है।

अध्ययन का उद्देश्य और पद्धति- इस अध्ययन का उद्देश्य रामचरितमानस और थेरगाथा को समान प्रकृति के ग्रंथ सिद्ध करना नहीं है। दोनों की रचना-परिस्थिति, साहित्यिक संरचना, भाषा और दर्शन अलग हैं। रामचरितमानस एक विस्तृत भक्तिपरक आख्यान है, जबकि थेरगाथा वरिष्ठ बौद्ध भिक्षुओं और थेरीगाथा वरिष्ठ भिक्षुणियों से संबद्ध पद्यों के संग्रह हैं। तुलनात्मक अध्ययन का अर्थ केवल समानता ढूँढ़ लेना भी नहीं है। कई बार अंतर ही हमें किसी साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा की वास्तविक प्रकृति को अधिक स्पष्ट रूप से समझने में सहायता करता है। प्रस्तुत आलेख में तुलनात्मक, पाठ-विश्लेषणात्मक और सांस्कृतिक अध्ययन-पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन मुख्यतः तीन स्तरों पर आगे बढ़ता है। पहला स्तर ग्रंथ और दर्शन का है—रामचरितमानस, थेरगाथा और थेरीगाथा में व्यक्त नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि। दूसरा स्तर पात्र और अनुभव का है—विशेषकर स्त्री के दुःख, निर्णय, भक्ति, वैराग्य और मुक्ति का। तीसरा स्तर ग्रंथ से लोक की यात्रा का है—अर्थात कोई धार्मिक-साहित्यिक पाठ किस प्रकार पाठ, गायन, कथा, उत्सव और प्रदर्शन के माध्यम से सामूहिक सांस्कृतिक स्मृति में परिवर्तित होता है।

मेरे अपने शोध का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र गिरमिट देशों में हिन्दी, रामायण और भारतीय सांस्कृतिक स्मृति रहा है। इसलिए इस आलेख में पुस्तकीय अध्ययन के साथ अपने क्षेत्रीय अनुभव को भी सहायक सांस्कृतिक सामग्री के रूप में जोड़ा गया है।

थेरगाथा और थेरीगाथा : सिंहली नहीं, पाली परंपरा के ग्रंथ- यहाँ एक तथ्यात्मक सावधानी आवश्यक है। थेरगाथा को सीधे 'सिंहली साहित्य का ग्रंथ' कहना उचित नहीं होगा। यह पाली बौद्ध कैनन के सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय में संकलित ग्रंथ है। इसी प्रकार थेरीगाथा भिक्षुणियों से संबद्ध पद्यों का संग्रह है। इनका श्रीलंका से संबंध इनकी मूल भाषा के कारण नहीं, बल्कि श्रीलंका की थेरवाद बौद्ध परंपरा में पाली कैनन की केंद्रीय भूमिका के कारण बनता है (Therigatha Norman)। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन में 'सिंहली लोक-सांस्कृतिक परंपरा में बुद्ध कथा' से आशय किसी एक सिंहली भाषा के ग्रंथ से नहीं है। यहाँ उस व्यापक बौद्ध सांस्कृतिक संसार की बात है जिसमें पाली साहित्य, बुद्ध की शिक्षाएँ, जातक कथाएँ, मठीय परंपरा, धर्मोपदेश, धार्मिक पर्व और लोक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ परस्पर जुड़ती हैं।

भारत और श्रीलंका : संस्कृति की यात्रा- भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंध बहुत पुराने हैं। श्रीलंकाई परंपरा में महिंद के आगमन और राजा देवानाम्पिय तिस्स द्वारा बौद्ध धर्म को संरक्षण देने का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है ('Country Overview')। संघमित्रा द्वारा बोधिवृक्ष की शाखा श्रीलंका ले जाने की परंपरा भी भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंध का शक्तिशाली प्रतीक बन गई। यह केवल धर्म की यात्रा नहीं थी। धर्म के साथ ग्रंथ गए, ग्रंथों के साथ भाषा गई, भाषा के साथ दर्शन गया और दर्शन के साथ स्मृति तथा सांस्कृतिक व्यवहार भी यात्रा करते गए।

रामकथा के संदर्भ में भी यही प्रक्रिया एक दूसरे रूप में दिखाई देती है। संस्कृत की वाल्मीकि रामायण से निकलकर रामकथा ने तमिल, अवधी, बंगला, असमिया, मराठी और अनेक भारतीय भाषाओं में अलग-अलग रूप ग्रहण किए। तुलसीदास

की रामचरितमानस इसी यात्रा का अत्यंत महत्वपूर्ण पड़ाव है। कथा वही रहती है, लेकिन लोक उसे अपनी भाषा और अपने सांस्कृतिक अनुभव के अनुसार फिर से रचता है।

रामचरितमानस : ग्रंथ से लोक की ओर- गोस्वामी तुलसीदास द्वारा सोलहवीं शताब्दी में अवधी में रचित रामचरितमानस हिन्दी क्षेत्र की सर्वाधिक प्रभावशाली साहित्यिक कृतियों में से एक है। सात कांडों में विभाजित इस ग्रंथ में राम के जीवन के माध्यम से भक्ति, धर्म, कर्तव्य, परिवार, समाज, आदर्श शासन और मानवीय मूल्यों का विस्तृत चित्र उपस्थित होता है। तुलसीदास का योगदान केवल यह नहीं है कि उन्होंने राम की कथा कही। महत्वपूर्ण यह भी है कि उन्होंने इसे संस्कृत के स्थान पर लोक के अधिक निकट भाषा अवधी में इसे प्रस्तुत किया। यही कारण है कि रामचरितमानस लिखित ग्रंथ से आगे बढ़कर पाठ, कथा, गायन और अभिनय की परंपरा में गहराई से प्रवेश कर सका (Lutgendorf)।

"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥"

(रामचरितमानस 7.41)

यहाँ भक्ति केवल ईश्वर की आराधना तक सीमित नहीं रहती। वह दूसरे मनुष्य के हित से जुड़ जाती है। 'परहित' धर्म का आधार बनता है और 'परपीड़ा' अधर्म की कसौटी। इसी प्रकार "सीय राममय सब जग जानी'' जैसी पंक्ति संसार को ईश्वरीय उपस्थिति के साथ देखने की समावेशी दृष्टि देती है। ये चौपाइयाँ केवल पुस्तक में बंद नहीं रहीं। मानस-पाठ, रामकथा, प्रवचन, भजन और सामान्य जनभाषा में बार-बार दोहराए जाने के कारण वे सांस्कृतिक स्मृति का हिस्सा बन गईं।

Philip Lutgendorf ने The Life of a Text में इसी तथ्य को विस्तार से समझाया है कि रामचरितमानस को केवल लिखित पाठ के रूप में नहीं समझा जा सकता। औपचारिक पाठ, मौखिक व्याख्या, गायन और नाटकीय प्रदर्शन ने उसे 'जीवित पाठ' बनाया (Lutgendorf)।

थेरगाथा : छोटी गाथा में बड़ा अनुभव- थेरगाथा की साहित्यिक प्रकृति इससे बिल्कुल अलग है। यहाँ एक नायक की क्रमबद्ध जीवनकथा नहीं है। अनेक भिक्षुओं के अनेक स्वर हैं। कोई संसार की अनित्यता को समझता है, कोई अपने मन को अनुशासित करता है, कोई वन और प्रकृति में साधना का आनंद अनुभव करता है। कई बार कुछ पंक्तियों में ही व्यक्ति के पूरे मानसिक परिवर्तन की झलक मिल जाती है। सुभूति की आरंभिक गाथा में साधक अपनी सुरक्षित कुटिया और स्थिर चित्त के साथ वर्षा का स्वागत करता है (Theragatha 1.1)। यहाँ वर्षा केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं है। बाहरी अस्थिरता के बीच आंतरिक स्थिरता का प्रतीक है। रामचरितमानस और थेरगाथा की यही भिन्नता साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत रोचक है। रामचरितमानस में दर्शन कथा और पात्रों की लंबी यात्रा से होकर आता है। थेरगाथा में वही दर्शन कभी-कभी एक क्षण, एक प्राकृतिक दृश्य या एक साधक के निजी अनुभव में प्रकट हो जाता है। लेकिन दोनों में एक साझा बात है—मनुष्य अपने मन को कैसे साधता है।

भक्ति और बोध : दो अलग आध्यात्मिक मार्ग- रामचरितमानस मूलतः सगुण भक्ति का काव्य है। राम सगुण भक्ति के परिचायक हैं, ईश्वर के साकार स्वरूप हैं और भक्त का संबंध उनके साथ प्रेम, श्रद्धा तथा समर्पण का है। राम का आदर्श संसार के भीतर है, वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे पुत्र हैं, भाई हैं, पति हैं, मित्र हैं और राजा हैं। इसलिए रामकथा व्यक्ति को संसार से बाहर नहीं ले जाती; वह संबंधों के भीतर धर्म और मर्यादा स्थापित करने का प्रयास करती है। बौद्ध परंपरा की दिशा इससे अलग है। यहाँ चार आर्य सत्य दुःख, उसके कारण, उसके निरोध और निरोध के मार्ग की व्याख्या करते हैं। तृष्णा, अनित्यता, आत्मानुशासन और निर्वाण इसके केंद्रीय तत्व हैं। प्रारंभिक बौद्ध साहित्य को 'निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना' के रूप में परिभाषित करना उचित नहीं है। बौद्ध गाथाओं का केंद्रीय प्रश्न किसी निराकार ईश्वर की आराधना नहीं, बल्कि दुःख और उससे मुक्ति का है। इसलिए दोनों के बीच अंतर 'सगुण और निर्गुण भक्ति' का नहीं, बल्कि अधिक सही रूप में भक्ति-समर्पण और साधना-बोध के मार्ग का है।

स्त्री-दृष्टि : रामचरितमानस से थेरीगाथा तक- दोनों साहित्यिक परंपराओं की तुलना में स्त्री का प्रश्न मेरे लिए विशेष

रूप से महत्वपूर्ण है। रामचरितमानस में सीता, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, मंदोदरी और शबरी जैसी स्त्रियाँ हैं। दूसरी ओर थेरीगाथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भिक्षुणियों से संबद्ध आध्यात्मिक अनुभव अनेक स्थानों पर प्रथम-पुरुष वाणी में सामने आते हैं। Charles Hallisey ने Therigatha: Poems of the First Buddhist Women में इन पदों को प्रारंभिक बौद्ध स्त्रियों की आवाज से जुड़ी महत्वपूर्ण काव्यात्मक सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया है (Hallisey)। Alice Collett भी प्रारंभिक बौद्ध भिक्षुणियों के अध्ययन में canonical text और बाद की जीवनी/टीका परंपरा को सावधानी से अलग-अलग पढ़ने पर बल देती हैं (Collett)।

सीता : संबंधों के भीतर निर्णय और प्रतिरोध- सीता को केवल 'आदर्श पत्नी' कह देना उनके चरित्र को सीमित कर देता है। वनवास के प्रसंग में राम उन्हें वन के कष्ट बताते हैं, फिर भी सीता उनके साथ जाने का निर्णय करती हैं। आगे रावण के सामने वे सत्ता, भय और प्रलोभन—तीनों को अस्वीकार करती हैं। अशोक वाटिका में सीता के पास कोई राजनीतिक सत्ता नहीं है, लेकिन उनका निर्णय स्पष्ट है। रावण उन्हें बंदी बना सकता है, उनकी स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सकता।

शबरी : भक्ति द्वारा आध्यात्मिक गरिमा- शबरी का प्रसंग सामाजिक और स्त्री—दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। शबरी स्वयं अपनी सामाजिक स्थिति और स्त्री होने को लेकर अत्यंत संकोच व्यक्त करती हैं। इसके उत्तर में राम का कथन है—

"कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥"

(रामचरितमानस 3.35)

"प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥"

(रामचरितमानस 3.35)

राम शबरी की जाति, कुल, धन अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा को भक्ति की पात्रता का आधार नहीं बनाते। यह प्रसंग इसलिए महत्वपूर्ण है कि यहाँ धार्मिक गरिमा सामाजिक प्रतिष्ठा से ऊपर जाती दिखाई देती है।

थेरीगाथा : जब स्त्री स्वयं बोलती है— थेरीगाथा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि यहाँ स्त्री केवल किसी पुरुष की पत्नी, माता या पुत्री नहीं है। वह स्वयं साधिका है और अनेक पदों में अपनी आध्यात्मिक यात्रा की वक्ता भी। इस दृष्टि से यह स्त्री-अनुभव का बहुत प्राचीन और असाधारण साहित्यिक दस्तावेज है (Hallisey- Collett)।

मुक्ता थेरी : घरेलू बंधन से आध्यात्मिक मुक्ति

"Sumutta sadhumuttamhi,
tihi khujjehi muttiya."

(Therigatha 1.11)

मुक्ता का छोटा-सा पद अत्यंत प्रभावशाली है। वह अपनी मुक्ति की घोषणा करती हैं और गृहस्थ जीवन से जुड़े तीन 'टेढ़े' बंधनों—ओखली, मूसल और पति—का उल्लेख करती हैं। गाथा का आशय केवल घर के श्रम से मुक्त होना नहीं है। आगे वही मुक्ति तृष्णा तथा जन्म-मरण के चक्र से बाहर आने की बड़ी आध्यात्मिक मुक्ति में बदलती है। सीता और मुक्ता को साथ रखें तो एक रोचक अंतर सामने आता है। मुक्ता गृहस्थ संबंध से बाहर निकलकर आध्यात्मिक मुक्ति खोजती हैं, जबकि सीता गृहस्थ संबंध के भीतर अपने निर्णय और दृढ़ता को व्यक्त करती हैं।

सोमा और शबरी : सामाजिक पहचान से आगे आध्यात्मिक क्षमता

"Itthibhavo kih kayira,

cittamhi susamahite."

(Therigatha 3.8)

भाव यह है कि यदि चित्त पूर्णतः एकाग्र है तो स्त्री होना आध्यात्मिक उपलब्धि में बाधा क्यों बने। इसे शबरी के साथ रखकर पढ़ें तो एक सुंदर समानता दिखाई देती है। शबरी की सामाजिक पहचान के सामने राम 'भक्ति' को निर्णायक बनाते हैं। सोमा अपने लिंग के सामने 'समाहित चित्त' को निर्णायक बनाती हैं। दोनों परंपराएँ अलग धार्मिक भाषा में यह संभावना खोलती हैं कि आध्यात्मिक क्षमता जन्म अथवा सामाजिक पहचान से बड़ी हो सकती है।

सीता और सुभा : पुरुष-दृष्टि और स्त्री का 'ना'- थेरीगाथा में जीवक के आम्रवन की सुभा से जुड़ा प्रसंग आधुनिक स्त्री-विमर्श की दृष्टि से अत्यंत रोचक है। एक पुरुष उनका मार्ग रोककर उनके शारीरिक सौंदर्य, विशेष रूप से आँखों, के आधार पर उन्हें आकर्षित करने का प्रयास करता है। सुभा उसकी इच्छा को स्वीकार नहीं करतीं। वे शरीर की अनित्यता और अपने चुने हुए आध्यात्मिक जीवन पर दृढ़ रहती हैं (Therigatha 14.1)। इसे अशोक वाटिका की सीता के साथ पढ़ने पर एक महत्त्वपूर्ण समानता दिखाई देती है। रावण सीता को अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त करना चाहता है और सुभा को एक पुरुष उनके सौंदर्य के आधार पर परिभाषित करना चाहता है। दोनों स्त्रियाँ 'ना' कहती हैं, लेकिन दोनों की भाषा अलग है। सीता का प्रतिरोध दाम्पत्य निष्ठा, धर्म और मर्यादा की भाषा में आता है; सुभा का प्रतिरोध वैराग्य, शरीर की अनित्यता और स्वतंत्र आध्यात्मिक पहचान से आता है।

सीता और पटाचारा : दुःख के दो उत्तर- पटाचारा की कथा बौद्ध स्त्री परंपरा की अत्यंत मार्मिक कथाओं में से एक है। यहाँ शोध की दृष्टि से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पति, बच्चों और माता-पिता की मृत्यु से जुड़ी विस्तृत कथा का बड़ा भाग बाद की जीवनी और टीका-परंपरा से भी आता है। अतः उसे बिना भेद किए पूरा का पूरा थेरीगाथा का मूल पाठ नहीं कहा जाना चाहिए (Collett)।

"Padipasseva nibbana,
vimokkho ahu cetaso."

(Therigatha 5.10)

थेरीगाथा 5.10 में पटाचारा के अनुभव का अत्यंत सुंदर दृश्य मिलता है। वे पैरों का पानी बहते देखती हैं, ध्यान करती हैं और बाद में दीपक की लौ का बुझना उनके लिए मानसिक मुक्ति का बिंब बनता है। सीता भी अत्यधिक दुःख से गुजरती हैं—वनवास, अपहरण, अशोक वाटिका का एकांत और अनिश्चितता। लेकिन उनकी प्रतिक्रिया अलग है। सीता दुःख के बीच संबंध और निष्ठा बनाए रखती हैं, जबकि पटाचारा दुःख के अनुभव को अनासक्ति और बोध में रूपांतरित करती हैं।

कौशल्या और मातृत्व का दुःख- रामचरितमानस में कौशल्या मातृत्व की संवेदना का महत्त्वपूर्ण स्वर हैं। राम के वनवास का समाचार उनके लिए केवल राजनीतिक घटना नहीं है; वह पुत्र से वियोग की व्यक्तिगत पीड़ा है। लेकिन कौशल्या का दुःख केवल रोदन तक सीमित नहीं रहता। उसमें धर्म, पुत्र-प्रेम और परिस्थितियों की विवश स्वीकृति—तीनों साथ चलते हैं। बौद्ध स्त्री परंपरा में मातृत्व का दुःख कई बार अनित्यता और आसक्ति के प्रश्न से जुड़ जाता है। पटाचारा तथा उनसे जुड़ी भिक्षुणियों के पदों में संतान-वियोग के अनुभव को शोक से बोध की दिशा में ले जाने का प्रयास दिखाई देता है (Therigatha 6.1)।

स्त्री का स्वायत निर्णय : सरल निष्कर्ष से बचना- इन स्त्रियों की तुलना करते समय एक बड़ी सावधानी आवश्यक है। रामचरितमानस की स्त्रियों को केवल 'पितृसत्ता में बंधी' और थेरीगाथा की स्त्रियों को केवल 'पूर्णतः स्वतंत्र' कहना अत्यधिक सरल निष्कर्ष होगा। सीता रावण को अस्वीकार करती हैं—यह उनका निर्णय है। शबरी भक्ति के माध्यम से अपनी आध्यात्मिक गरिमा प्राप्त करती हैं—यह भी एक निर्णय है। मुक्ता गृहस्थ जीवन के बंधनों को छोड़ती हैं—यह स्वायत निर्णय का दूसरा रूप है। सोमा स्त्री की आध्यात्मिक क्षमता पर उठे प्रश्न का प्रतिवाद करती हैं। सुभा अपने शरीर को पुरुष-दृष्टि द्वारा परिभाषित किए जाने को अस्वीकार करती हैं। अंतर इस बात का है कि उनका निर्णय किस सामाजिक और धार्मिक

ढाँचे के भीतर व्यक्त होता है।

भाषा और शैली : लोक तक पहुँचने की शक्ति- तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना अवधी में की। दोहा, चौपाई और सोरठा जैसे छंदों ने इस रचना को लय, स्मरणीयता और गायन की क्षमता दी। भारत में मेरे जैसे अनेक ऐसे लोग हैं जो रामचरितमानस की चौपाइयाँ जानते हैं लेकिन कभी पूरा ग्रंथ बैठकर नहीं पढ़ा। उन्होंने उन्हें कथा में सुना, रामलीला में सुना, माता-पिता या दादा-दादी से सुना अथवा मंदिर में सामूहिक पाठ में सुना। यानी साहित्य स्मृति में प्रवेश कर गया और आगे भी हम चाहते हैं कि आने वाली पीढ़ियाँ इस आदर्श कथा को जाने।

थेरगाथा और थेरीगाथा की संरचना अलग है। यहाँ कई गाथाएँ छोटी और आत्मानुभवपरक हैं। बहुत बड़े दार्शनिक सत्य कभी-कभी अत्यंत संक्षिप्त पद में व्यक्त हो जाते हैं। रामचरितमानस आख्यान की स्मृति निर्मित करता है, बौद्ध गाथाएँ अनुभव की स्मृति। लेकिन दोनों में लय और मौखिकता की संभावना उनके प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

लोक प्रदर्शन : जब ग्रंथ समाज के बीच उतरता है

किसी कथा की वास्तविक लोक-स्वीकृति मुझे तब सबसे अधिक दिखाई देती है जब वह पुस्तक से निकलकर गीत, संगीत, अभिनय, चित्र, उत्सव और सामुदायिक अनुष्ठान का हिस्सा बन जाती है। रामचरितमानस इसका अत्यंत सुंदर उदाहरण है।

रामचरितमानस और रामलीला- रामलीला रामकथा के लोक प्रदर्शन का सबसे प्रसिद्ध रूप है। UNESCO रामलीला को रामायण की ऐसी पारंपरिक प्रस्तुति के रूप में वर्णित करता है जिसमें गीत, कथावाचन, पाठ और संवाद शामिल होते हैं ('Ramlila')। रामलीला में कथा केवल सुनाई नहीं जाती—वह सामूहिक रूप से घटित होती है। राम वन जाते हैं तो दर्शक दशरथ और कौशल्या के दुःख को भी अनुभव करता है। भरत राम की खड़ाऊँ लेकर लौटते हैं तो सत्ता, त्याग और भ्रातृ-प्रेम दृश्य रूप ग्रहण करते हैं। राम-रावण युद्ध में अहंकार, अन्याय, मर्यादा और धर्म के प्रतीक मंच पर आ जाते हैं। ये सभी प्रसंग रामलीला के माध्य म सेहमारे मन में रचे बसे हैं। UNESCO के विवरण में रामलीला की सामुदायिक प्रकृति पर भी बल दिया गया है। गीत, पाठ, अभिनय और स्थानीय सहभागिता के कारण यह केवल 'लोगों के लिए किया गया प्रदर्शन' नहीं रहती, बल्कि अनेक स्थानों पर 'लोगों द्वारा किया गया प्रदर्शन' भी बन जाती है ('Ramlila')। Lutgendorf भी रामचरितमानस के सामाजिक जीवन को समझने के लिए अनुष्ठाणिक पाठ, मौखिक व्याख्या और रंगमंचीय प्रस्तुति को महत्वपूर्ण मानते हैं।

श्रीलंका में बुद्ध कथा और लोक-सांस्कृतिक प्रदर्शन- इसके सामने श्रीलंका की बौद्ध लोक-संस्कृति का स्वरूप अलग है। यह कहना प्रमाणिक नहीं होगा कि रामलीला की तरह थेरगाथा अथवा थेरीगाथा का व्यापक लोकनाट्य-मंचन श्रीलंका में होता है। इन ग्रंथों की भूमिका अधिक प्रत्यक्ष नाटकीय न होकर पाली पाठ, धर्मोपदेश, आध्यात्मिक परंपरा और व्यापक थेरवाद सांस्कृतिक चेतना में समझी जानी चाहिए। श्रीलंका में बुद्ध कथा का दृश्य और सामुदायिक रूप जातक कथाओं, वेसाक, पोसोन, धर्मदेशना, भक्ति-गायन, लालटेन और कथात्मक पंडाल जैसी परंपराओं में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए यहाँ 'थेरगाथा का लोक प्रदर्शन' कहने की अपेक्षा 'पाली बौद्ध विचार और बुद्ध कथा का लोक-सांस्कृतिक रूपांतरण' कहना अधिक उपयुक्त है। रामलीला में कथा मुख्यतः अभिनय, संवाद और गीत द्वारा दृश्य बनती है, जबकि श्रीलंकाई बौद्ध उत्सवों में कथा चित्र, प्रकाश, धर्मोपदेश, गायन तथा धार्मिक-सामुदायिक अनुष्ठान द्वारा अनुभव बनती है।

ग्रंथ से प्रदर्शन और प्रदर्शन से स्मृति- इस पूरी प्रक्रिया को एक सूत्र में समझा जा सकता है—ग्रंथ - पाठ - प्रदर्शन - सामूहिक स्मृति। रामचरितमानस की चौपाई पढ़ी जाती है, फिर गाई जाती है, मंच पर अभिनीत होती है और अंततः समुदाय की स्मृति का हिस्सा बन जाती है। पाली बौद्ध परंपरा की शिक्षाएँ मठीय पाठ, धर्मोपदेश और कथा के माध्यम से लोक तक पहुँचती हैं और वहाँ उत्सव, गीत, दृश्य प्रतीक और सामुदायिक व्यवहार का रूप ग्रहण करती हैं।

'परहित' पुस्तक में एक विचार है; रामलीला में वह किसी पात्र के व्यवहार के रूप में दिखाई देता है। 'अनित्यता' दर्शन

का सिद्धांत है; पटाचारा के बहते पानी अथवा बुझते दीपक के अनुभव में वह दृश्य और मानसिक अनुभूति बन जाती है। इसलिए लोक प्रदर्शन साहित्य का केवल मनोरंजनात्मक विस्तार नहीं है। वह दर्शन को लोक तक पहुँचाने की सांस्कृतिक पद्धति है।

गिरमिट देशों में रामकथा : मेरा शोध-अनुभव- यहाँ अपने शोध-अनुभव को जोड़ना मुझे विशेष रूप से आवश्यक लगता है। मेरे शोध का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र गिरमिट देशों में भारतीय संस्कृति, हिन्दी और सांस्कृतिक स्मृति रहा है। मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम, फ़ीजी और अन्य प्रवासी समाजों के अध्ययन के दौरान मैंने बार-बार यह अनुभव किया कि रामायण वहाँ केवल धार्मिक पुस्तक नहीं रही। वह भारत की स्मृति बनी, घर की स्मृति बनी, भाषा की स्मृति बनी और अनेक परिस्थितियों में वैश्विक सामूहिक सांस्कृतिक पहचान का आधार बनी।

गिरमिटिया मजदूर 'काले पानी' के पार जाते समय अपने 'जहाज़ी बंडल' में बहुत अधिक भौतिक वस्तुएँ नहीं ले जा सके, लेकिन लोकगीत, चौपाइयाँ, रामकथा, देवी-देवताओं की स्मृतियाँ, भोजपुरी-अवधी शब्द, विवाह गीत और धार्मिक विश्वास उनके साथ गए। नए देश में यही अमूर्त सांस्कृतिक पूँजी अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई। रामायण पाठ ने समुदाय को एकत्र किया। चौताल और भजन ने भाषा तथा स्मृति को जीवित रखा। रामलीला और रामनवमी जैसे आयोजन अगली पीढ़ी को कथा से जोड़ते रहे।

इस संदर्भ में रामचरितमानस केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं रहा; वह भाषा, स्मृति और भारतीय सांस्कृतिक पहचान का माध्यम बन गया। भारत से श्रीलंका गई बौद्ध परंपरा और भारत से गिरमिट देशों की ओर गई रामकथा के बीच एक व्यापक सांस्कृतिक समानता दिखाई देती है। दोनों की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ पूरी तरह अलग हैं—एक प्राचीन धार्मिक-सांस्कृतिक प्रसार की प्रक्रिया है और दूसरी औपनिवेशिक काल में बाध्य श्रम-प्रवास से जुड़ी सांस्कृतिक स्मृति। फिर भी दोनों हमें यह बताते हैं कि कथाएँ मनुष्य के साथ यात्रा करती हैं।

लोक साहित्य और सांस्कृतिक स्मृति

लोक साहित्य को केवल अलिखित साहित्य समझ लेना पर्याप्त नहीं है। कई बार लिखित ग्रंथ भी लोक जीवन में प्रवेश करके स्वयं लोक-संस्कृति का हिस्सा बन जाते हैं। रामचरितमानस इसका सुंदर उदाहरण है। वह लिखित ग्रंथ है, लेकिन उसकी चौपाई जब किसी वृद्ध महिला की स्मृति में रहती है, गाँव की रामलीला में बोली जाती है, मंदिर में सामूहिक रूप से गाई जाती है अथवा प्रवासी समाज में बच्चों को सिखाई जाती है, तब वह लोक-सांस्कृतिक व्यवहार में बदल जाती है।

इसी प्रकार पाली कैनन शास्त्रीय धार्मिक साहित्य है, लेकिन बुद्ध की शिक्षा जब धर्मोपदेश, जातक-कथा, उत्सव, गायन अथवा दृश्य प्रस्तुति में आती है तो वह लोक-अनुभव का हिस्सा बन जाती है। मैं इस प्रक्रिया को 'ग्रंथ से लोक की यात्रा' कहना चाहूँगी। इस यात्रा में भाषा बदल सकती है, प्रदर्शन बदल सकता है, नए स्थानीय प्रतीक जुड़ सकते हैं, लेकिन सांस्कृतिक स्मृति के कुछ मूल सूत्र बने रहते हैं।

समानताएँ और भिन्नताएँ

तुलनात्मक अध्ययन में समानताओं के साथ अंतर को पहचानना अत्यंत आवश्यक है। दोनों परंपराएँ नैतिक आचरण और आत्मसंयम को महत्व देती हैं। दोनों में करुणा महत्वपूर्ण है। दोनों मनुष्य के भीतर परिवर्तन की संभावना को स्वीकार करती हैं। दोनों की शिक्षाएँ ग्रंथ से बाहर निकलकर सामुदायिक स्मृति में प्रवेश करती हैं।

लेकिन इन समानताओं के कारण दोनों को एक जैसा नहीं कहा जा सकता। रामचरितमानस सगुण भक्ति पर आधारित है; थेरगाथा ईश्वर-भक्ति का ग्रंथ नहीं है। रामकथा सामाजिक और पारिवारिक संबंधों के बीच धर्म और मर्यादा की स्थापना करती है; बौद्ध गाथाएँ संसार की अनित्यता, वैराग्य और निर्वाण की ओर अधिक स्पष्ट रूप से जाती हैं। रामचरितमानस में केंद्रीय नायक और विस्तृत आख्यान है; थेरगाथा और थेरीगाथा में अनेक व्यक्तिगत स्वर हैं।

स्त्री के स्तर पर भी यही अंतर दिखाई देता है। सीता मुख्यतः संबंधों के भीतर अपनी शक्ति खोजती हैं। मुक्ता संबंधों के बाहर निकलकर अपनी मुक्ति की घोषणा करती हैं। शबरी भक्ति में गरिमा प्राप्त करती हैं। सोमा साधना के सामने स्त्री-पुरुष भेद को अप्रासंगिक बताती हैं। सीता पुरुष की अनचाही इच्छा के सामने निष्ठा और निर्णय पर अडिग रहती हैं। सुभा पुरुष-दृष्टि के सामने अपनी स्वतंत्र आध्यात्मिक पहचान स्थापित करती हैं। समानता का अर्थ यहाँ एकरूपता नहीं है। यही तुलनात्मक अध्ययन की वास्तविक सुंदरता है।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

आज दुनिया तकनीकी दृष्टि से अत्यधिक विकसित है, लेकिन हिंसा, युद्ध, धार्मिक कट्टरता, नस्लवाद, पर्यावरण संकट, सामाजिक असमानता, अकेलापन और मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ भी हमारे सामने हैं। ऐसे समय में इन प्राचीन साहित्यिक परंपराओं को केवल धार्मिक ग्रंथ मानकर छोड़ देना उचित नहीं होगा। रामकथा हमें कर्तव्य, संबंध, उत्तरदायित्व, परहित और नेतृत्व पर विचार करने का अवसर देती है। बुद्ध की शिक्षाएँ करुणा, आत्मनिरीक्षण, अनित्यता, संयम और अहिंसा पर विचार करने की प्रेरणा देती हैं।

आधुनिक शिक्षा में भी इनका उपयोग धार्मिक उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और आलोचनात्मक संवाद के रूप में किया जा सकता है। सीता और सुभा को साथ पढ़ाकर स्त्री के निर्णय पर चर्चा की जा सकती है। शबरी और सोमा के माध्यम से जन्म, लिंग और आध्यात्मिक योग्यता पर संवाद हो सकता है। सीता और पटाचारा के माध्यम से दुःख के दो अलग सांस्कृतिक उत्तरों को समझा जा सकता है। रामलीला और श्रीलंका के बौद्ध उत्सवों के तुलनात्मक अध्ययन से यह समझा जा सकता है कि समाज अपनी सांस्कृतिक स्मृति को प्रदर्शन के माध्यम से अगली पीढ़ी तक कैसे पहुँचाता है।

निष्कर्ष

हिन्दी लोक साहित्य में रामकथा और सिंहली लोक-सांस्कृतिक परंपरा में बुद्ध कथा का तुलनात्मक अध्ययन हमें केवल दो धार्मिक परंपराओं को समझने का अवसर नहीं देता, बल्कि एशिया की दो बड़ी सांस्कृतिक धाराओं के बीच संवाद को समझने की दृष्टि भी देता है। रामचरितमानस, थेरगाथा और थेरीगाथा की साहित्यिक संरचना, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और दर्शन में मूलभूत अंतर हैं। एक विस्तृत भक्ति आख्यान है, तो दूसरी ओर व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभवों से निर्मित गाथाएँ हैं।

इसलिए इनकी तुलना समान ग्रंथों के रूप में नहीं, बल्कि अपने-अपने समाज में नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित करने वाली परंपराओं के रूप में अधिक सार्थक है। रामकथा हमें परिवार, समाज, कर्तव्य और मर्यादा की ओर ले जाती है। बौद्ध गाथाएँ हमें अपने भीतर देखने, दुःख को पहचानने, तृष्णा को समझने और मुक्ति की दिशा खोजने की प्रेरणा देती हैं।

स्त्री-दृष्टि से देखें तो सीता, शबरी और कौशल्या संबंधों के भीतर स्त्री की शक्ति, दुःख और भक्ति के विविध रूप सामने लाती हैं। दूसरी ओर मुक्ता, सोमा, पटाचारा और सुभा स्त्री की ऐसी आध्यात्मिक वाणी प्रस्तुत करती हैं जिसमें वह स्वयं अपने जीवन, शरीर, दुःख और मुक्ति के बारे में बोलती है। इन दोनों को साथ पढ़ने पर स्त्री-अनुभव की कहीं अधिक विस्तृत तस्वीर हमारे सामने आती है।

एक और बात मेरे शोध-अनुभव में बार-बार सामने आती रही है। भारत में कही गई रामकथा गिरमिटिया मजदूरों के साथ समुद्र पार मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम, फिजी और दूसरे देशों तक पहुँची। दूसरी ओर भारत में जन्मी बुद्ध की शिक्षाएँ सदियों पहले श्रीलंका पहुँचीं और वहाँ की सांस्कृतिक चेतना का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गईं। दोनों यात्राओं की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ बिल्कुल अलग हैं, लेकिन दोनों एक महत्वपूर्ण सत्य की ओर संकेत करती हैं—संस्कृति की यात्रा राजनीतिक सीमाओं से नहीं रुकती।

मनुष्य के साथ कथा चलती है। कथा के साथ भाषा चलती है। भाषा के साथ स्मृति चलती है। और स्मृति के साथ

पहचान। देश बदलता है, भाषा बदलती है, पीढ़ियाँ बदलती हैं और प्रदर्शन के रूप बदलते हैं, लेकिन कथा में निहित मूल मानवीय प्रश्न जीवित रहते हैं। शायद इसीलिए राम आज भी मर्यादा के प्रश्न पर हमारे सामने उपस्थित होते हैं और बुद्ध करुणा के प्रश्न पर। आज के वैश्वीकरण के समय में ऐसे तुलनात्मक अध्ययन यह बताते हैं कि भिन्न रहते हुए भी संवाद संभव है। अपने सत्य और अपनी सांस्कृतिक जड़ों को सँजोते हुए दूसरे की परंपरा को समझना और उसका सम्मान करना—यही लोक साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति है।

संदर्भ सूची

- Collett, Alice. Lives of Early Buddhist Nuns: Biographies as History. Oxford UP, 2016.
- Collett, Alice, editor. Women in Early Indian Buddhism: Comparative Textual Studies. Oxford UP, 2013.
- Country Overview. Government of Sri Lanka, Government of Sri Lanka. Accessed 9 Aug. 2026.
- Hallisey, Charles, translator. Therigatha: Poems of the First Buddhist Women. Murty Classical Library of India, Harvard UP, 2015.
- Lutgendorf, Philip. The Life of a Text: Performing the Ramcaritmanas of Tulsidas. U of California P, 1991.
- Norman, K. R., translator. Elders' Verses I: Theragatha. Pali Text Society, 1969.
- Norman, K. R., translator. Elders' Verses II: Therigatha. Pali Text Society, 1971.
- Pali Text Society. Theragatha and Therigatha. Pali Text Society.
- Ramlila, the Traditional Performance of the Ramayana. Intangible Cultural Heritage, UNESCO. Inscribed 2008. Accessed 9 Aug. 2026.
- Ramcharitmanas. Indian Institute of Technology Kanpur, IIT Kanpur. Devanagari digital edition. Accessed 9 Aug. 2026.
- Sujato, Bhikkhu, translator. Therigatha: Verses of the Senior Nuns. SuttaCentral, 2019. Accessed 9 Aug. 2026.
- Therigatha. SuttaCentral. Canonical Pali text. Accessed 9 Aug. 2026.
- तुलसीदास, गोस्वामी. श्रीरामचरितमानस. गीता प्रेस, गोरखपुर.

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

कंब रामायण में नारी चेतना के विविध आयाम

वीरेन्द्र कुमार, डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

शोध-सारांश

तमिल के महान कवि कंबन द्वारा रचित 'कंब रामायण' अथवा 'रामावतारम्' भारतीय रामकथा-परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट रूपांतरण है। कंबन ने वाल्मीकि रामायण की मूल कथा को यथावत् प्रस्तुत करने के स्थान पर उसे तमिल सांस्कृतिक परिवेश, लोकजीवन, भक्ति, मानवीय संवेदना तथा तत्कालीन सामाजिक दृष्टि के अनुरूप पुनर्सृजित किया। इस पुनर्सृजन में नारी पात्रों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कंब रामायण में नारी केवल पुरुष-केंद्रित कथा की सहायक उपस्थिति नहीं है, बल्कि वह कथा के नैतिक, भावात्मक, सामाजिक और राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाली सक्रिय शक्ति के रूप में दिखाई देती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में कंब रामायण की प्रमुख स्त्री-पात्रों—सीता, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मंथरा, शूर्पणखा, तारा, मंदोदरी, त्रिजटा, शबरी तथा अहल्या—के माध्यम से नारी चेतना के विविध रूपों का विश्लेषण किया गया है। सीता में स्वाभिमान, प्रेम, धैर्य, नैतिक दृढ़ता और निर्णय-क्षमता; कौशल्या में मातृत्व एवं नैतिक विवेक; कैकेयी में राजनीतिक अधिकार-बोध और निर्णय-क्षमता; सुमित्रा में त्याग एवं कर्तव्य-चेतना; शूर्पणखा में इच्छा और अस्मिता; तारा में राजनीतिक दूरदर्शिता; मंदोदरी में विवेकपूर्ण प्रतिरोध तथा त्रिजटा में स्त्री-सहानुभूति और मानवीय संवेदना के स्वर दिखाई देते हैं।

इस अध्ययन का मूल प्रतिपाद्य यह है कि कंबन के यहाँ नारी-चेतना एकरेखीय नहीं है। वह आदर्श, त्याग और पतिव्रत के पारंपरिक प्रतिमानों के साथ-साथ स्वायत्तता, विरोध, राजनीतिक हस्तक्षेप, इच्छा, विवेक और आत्मसम्मान जैसे आधुनिक विमर्शों के लिए भी पर्याप्त आधार प्रस्तुत करती है। अतः कंब रामायण का नारी-पक्ष परंपरा और प्रतिरोध, मर्यादा और स्वतंत्रता तथा कर्तव्य और स्वत्व के बीच निरंतर संवाद स्थापित करता है।

बीज-शब्द : कंब रामायण, कंबन, नारी चेतना, सीता, कैकेयी, शूर्पणखा, मंदोदरी, तारा, स्त्री-अस्मिता, तमिल साहित्य।

1. प्रस्तावना

भारतीय साहित्यिक परंपरा में रामकथा का स्थान अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। वाल्मीकि रामायण से प्रारंभ होकर यह कथा भारतीय भाषाओं तथा विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक रूपों में पुनर्सृजित हुई। प्रत्येक रचनाकार ने अपने समय, समाज, संस्कृति और जीवन-दृष्टि के अनुरूप रामकथा को नया अर्थ दिया। तमिल साहित्य में कंबन का 'रामावतारम्', जिसे सामान्यतः 'कंब रामायण' कहा जाता है, इसी सृजनात्मक परंपरा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

कंब रामायण को केवल वाल्मीकि रामायण का भाषांतर मानना उचित नहीं होगा। कंबन ने कथा को तमिल संवेदना और काव्यात्मक कल्पना से समृद्ध किया। आधुनिक अध्ययनों में भी इसे स्वतंत्र काव्यात्मक पुनर्सृजन माना गया है। कंब रामायण छह कांडों में विभाजित है और इसमें लगभग 11,000 पद्य माने जाते हैं।

कंब रामायण के चरित्र-विधान की सबसे बड़ी विशेषताओं में से एक यह है कि यहाँ पात्र केवल अच्छाई और बुराई

के स्थिर प्रतीक नहीं हैं। वे भावनाओं, इच्छाओं, द्वंद्वों, विवेक और निर्णयों से निर्मित जीवंत चरित्र हैं। यही विशेषता स्त्री-पात्रों को भी विशिष्ट बनाती है। कंबन की स्त्रियाँ केवल करुणा, त्याग और पतिव्रत की मूर्तियाँ नहीं हैं; वे अनेक अवसरों पर कथा की दिशा निर्धारित करती हैं।

इसी संदर्भ में 'नारी चेतना' की अवधारणा महत्त्वपूर्ण हो जाती है। नारी चेतना से आशय स्त्री के अपने अस्तित्व, अधिकार, अस्मिता, निर्णय, अनुभव, सामाजिक स्थिति तथा आत्मसम्मान के प्रति जागरूकता से है। मध्यकालीन काव्य को आधुनिक नारीवादी सिद्धांतों से पढ़ते समय ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखना आवश्यक है। अतः कंब रामायण की स्त्रियों को सीधे आधुनिक अर्थों में 'नारीवादी' कहना उचित नहीं होगा; बल्कि यह देखना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उनके चरित्रों में स्त्री-अनुभव और स्त्री-स्वर किस प्रकार अभिव्यक्त होते हैं। यह अध्ययन "2022 में International Research Journal of Tamil"[1] में प्रकाशित हुआ।

2. कंब रामायण और नारी-दृष्टि

कंब रामायण में स्त्री-चरित्रों का संसार अत्यंत विस्तृत है। राजमहल से लेकर वन, आश्रम और लंका तक स्त्रियाँ कथा के प्रत्येक स्तर पर उपस्थित हैं। वे माँ, पत्नी, प्रेमिका, रानी, सलाहकार, विरोधी, पीड़िता, सहचरी और नैतिक चेतना की प्रतिनिधि के रूप में दिखाई देती हैं।

कंबन का महत्त्व इस बात में है कि वे स्त्री को एक ही नैतिक साँचे में नहीं रखते। सीता और कौशल्या जहाँ आदर्श एवं धैर्य का रूप हैं, वहीं कैकेयी और मंथरा कथा में राजनीतिक इच्छा और निर्णय की शक्ति का परिचय देती हैं। शूर्पणखा स्त्री की दबी हुई इच्छा और अस्वीकार के बाद उत्पन्न संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है। तारा और मंदोदरी पुरुष सत्ता के बीच विवेकपूर्ण स्त्री-स्वर का निर्माण करती हैं।

इस प्रकार कंब रामायण में स्त्री-चेतना के अनेक स्तर हैं—व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और भावनात्मक।

3. सीता : नारी-अस्मिता और आत्मनिर्णय का स्वर

कंब रामायण की नारी-चेतना का सबसे व्यापक और प्रभावशाली रूप सीता के चरित्र में दिखाई देता है। सीता को प्रायः भारतीय साहित्य में आदर्श पत्नी के रूप में देखा गया है, परंतु कंबन की सीता केवल पति का अनुसरण करने वाली स्त्री नहीं है। उसके व्यक्तित्व में प्रेम के साथ आत्मसम्मान, संवेदना के साथ दृढ़ता और समर्पण के साथ निर्णय-क्षमता दिखाई देती है।

माता सीता कहती हैं, "आप मेरे प्रति कृपाहीन और प्रेमहीन होकर मुझे छोड़कर जाने की बात कह रहे हैं। (आपके विरह में उत्पन्न होने वाली) इस ताप के सामने प्रलयकालीन सूर्य का ताप भी कुछ नहीं होगा। वह विशाल अरण्य, क्या आपके विरह से भी अधिक तापजनक है।"[2]

राम के वनगमन का समाचार मिलने पर सीता का वन जाने का निर्णय केवल वैवाहिक कर्तव्य का पालन नहीं है। यह उनके अपने जीवन के संबंध में लिया गया निर्णय भी है। वह राजमहल की सुरक्षित सुविधाओं की अपेक्षा पति के साथ कठिन जीवन को स्वीकार करती हैं। इस निर्णय में उसके व्यक्तित्व की दृढ़ता दिखाई देती है।

सीता की चेतना का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष संकट में उसकी मानसिक शक्ति है। लंका में रहते हुए वह रावण की सत्ता, भय और प्रलोभन के सामने अपने नैतिक निर्णय से विचलित नहीं होती। अशोक वाटिका में उसकी स्थिति बाह्य रूप से असहाय दिखाई दे सकती है, किंतु मानसिक स्तर पर वह स्वतंत्र बनी रहती है।

कंबन सीता की भावनात्मक गहराई को भी विशेष महत्त्व देते हैं। उनके चरित्र में प्रेम और आत्मसम्मान का संतुलन है। आधुनिक दृष्टि से देखें तो सीता का चरित्र स्त्री की उस आंतरिक स्वतंत्रता का प्रतीक है जिसमें बाहरी परिस्थितियाँ उसकी आत्मचेतना को समाप्त नहीं कर पातीं।

कंब रामायण के सुंदरकांड में सीता और हनुमान का संवाद विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ सीता अपनी स्थिति का वर्णन करती है, राम के प्रति अपने संबंध को स्पष्ट करती है और हनुमान के प्रस्तावों पर स्वयं निर्णय देती है। कंबन की सीता भावनात्मक रूप से अत्यंत सजग स्त्री के रूप में उभरती है। उनके चरित्र की इसी भावात्मक बुद्धिमत्ता पर आधुनिक व्याख्याओं में भी बल दिया गया है।

4. कौशल्या : मातृत्व और नैतिक चेतना

कौशल्या का चरित्र कंब रामायण में मातृत्व की गरिमा से जुड़ा हुआ है। राम के वनवास का समाचार उसके लिए अत्यंत पीड़ादायक है, लेकिन उसका दुःख केवल निजी नहीं रहता। वह राजधर्म, पति की मर्यादा और पुत्र के कर्तव्य के बीच उत्पन्न संकट को समझती है।

कौशल्या के चरित्र में मातृत्व और नैतिक विवेक का द्वंद्व दिखाई देता है। एक ओर वह पुत्र को रोकना चाहती है, दूसरी ओर राम के धर्मबोध और दशरथ की प्रतिज्ञा के सामने स्वयं को नियंत्रित करती है। कंबन ने इस मनःस्थिति को अत्यंत मार्मिक रूप दिया है।

कौशल्या ने राम से कहा, "हे पुत्र! चक्रवर्ती की आज्ञा का निषेध करना तुम्हारा धर्म नहीं है। इस आज्ञा को अपने लिए हितकर समझकर तुम अपने भाई भरत को राज्य दे दो और उसके साथ एक होकर चिरकाल तक जियो।"[3]

कंब रामायण के अयोध्या कांड में कौशल्या की स्थिति को विशेष विस्तार मिलता है। कौशल्या के माध्यम से कंबन यह स्थापित करते हैं कि स्त्री की शक्ति केवल बाहरी सत्ता में नहीं, बल्कि भावनात्मक और नैतिक धैर्य में भी निहित होती है।

5. कैकेयी : राजनीतिक चेतना और निर्णय-क्षमता

कंब रामायण में कैकेयी का चरित्र सबसे अधिक विवादास्पद होने के साथ-साथ सबसे अधिक राजनीतिक भी है। परंपरागत दृष्टि से वह राम के वनवास की कारणभूत स्त्री के रूप में देखी जाती है, लेकिन नारी चेतना की दृष्टि से उसका चरित्र स्त्री की राजनीतिक भूमिका और निर्णय-क्षमता को समझने का अवसर प्रदान करता है।

कैकेयी राजा दशरथ से अपने पूर्वप्राप्त वरदानों की माँग करती है। वह केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं देती, बल्कि सत्ता-संरचना के भीतर उपलब्ध अधिकार का उपयोग करती है। उसका निर्णय नैतिक रूप से कितना उचित या अनुचित है, यह अलग प्रश्न है; किंतु यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि वह राजसत्ता के निर्णय में सक्रिय हस्तक्षेप करती है।

"कैकेयी ने उन वरों में से एक में राम को वन-गमन की आज्ञा देने के लिए तथा दूसरे में अपने पुत्र भरत को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने का.....[3] आग्रह किया है।"[4]

कंब रामायण के अयोध्या कांड में मंथरा की योजना और कैकेयी की रणनीति को स्वतंत्र प्रसंगों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मुथुचेल्वी के अध्ययन में भी कैकेयी, मंथरा और शूर्पणखा को रूढ़ स्त्री-प्रतिमान से भिन्न सक्रिय स्त्री-पात्रों के रूप में देखा गया है।

इस प्रकार कैकेयी को केवल 'खल स्त्री' के रूप में पढ़ना उसके चरित्र की राजनीतिक जटिलता को सीमित कर देता है। वह पितृसत्तात्मक सत्ता-व्यवस्था के भीतर अपने प्रभाव का उपयोग करने वाली स्त्री है।

6. मंथरा : हाशिये की स्त्री का राजनीतिक हस्तक्षेप

मंथरा राजमहल की केंद्रीय सत्ता की स्वामिनी नहीं है। वह दासी है, किंतु कथा की दिशा बदलने में उसकी भूमिका अत्यंत प्रभावशाली है। उसकी स्थिति यह संकेत देती है कि सत्ता के औपचारिक केंद्र से बाहर स्थित व्यक्ति भी सत्ता के निर्णयों

को प्रभावित कर सकता है। जिसका उदाहरण कंब रामायण के अयोध्याकांड में मिलता है, जिसमें वह कैकेयी से कहती दिखती है, कि तुम——

"उन दो वरों में से, एक से राज्य को तुम अपना बना लो और दूसरे से, चौदह वर्ष के लिए राम को देश छोड़कर अरण्य में भेजने का उपाय करो। इससे सारी समृद्ध पृथ्वी तुम्हारे पुत्र के अनुकूल हो जाएगी।"[5]

मंथरा का प्रभाव कैकेयी पर पड़ता है और कैकेयी के माध्यम से वह राजसत्ता के केंद्र तक पहुँचता है। इस दृष्टि से मंथरा का चरित्र स्त्री के अप्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभाव का उदाहरण है।

मंथरा को केवल षड्यंत्रकारी मानना भी पर्याप्त नहीं है। उसके चरित्र में सामाजिक स्थिति, असुरक्षा, राजनीतिक समझ और स्वार्थ का मिश्रण दिखाई देता है। कंबन ने उसे कथा के एक निर्णायक मोड़ से जोड़ा है।

7. सुमित्रा : कर्तव्य, विवेक और मातृत्व

सुमित्रा का चरित्र अपेक्षाकृत शांत है, किंतु उसकी नैतिक शक्ति अत्यंत प्रभावशाली है। लक्ष्मण के राम के साथ वन जाने के प्रसंग में सुमित्रा का दृष्टिकोण मातृत्व की ऐसी परिभाषा प्रस्तुत करता है जिसमें पुत्र का निजी सुख नहीं, बल्कि उसके कर्तव्य और आदर्श को प्राथमिकता मिलती है——-

तब सुमित्रा ने लक्ष्मण के प्रति ये वचन कहे, "वन तुम्हारे जाने के लिए अयोग्य नहीं है। वह वन ही तुम्हारे लिए अयोध्या नगर होगा। तुम पर गाढ़ा अनुराग रखने वाले राम ही तुम्हारे लिए दशरथ हैं, पुष्पालंकृत केशों वाली सीता ही तुम्हारे लिए वे माताएँ हैं, जिन्होंने राम के राज्य त्यागकर वन जाने पर भी अपने प्राण नहीं त्यागे। इस प्रकार का विचार रखकर तुम राम के संग वन जाओ। अब तुम्हारा यहाँ रहना अपराध होगा।"[6]

सुमित्रा अपने पुत्र को राम की सेवा के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार वह केवल पुत्र को विदा करने वाली माँ नहीं, बल्कि उसके नैतिक व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली मार्गदर्शिका बन जाती है।

यहाँ मातृत्व नारी-चेतना का सक्रिय रूप ग्रहण करता है। सुमित्रा के माध्यम से कंबन यह बताते हैं कि स्त्री पारिवारिक नैतिकता की केवल अनुयायी नहीं, बल्कि उसकी निर्माता भी हो सकती है।

8. शूर्पणखा : इच्छा, अस्मिता और प्रतिरोध

शूर्पणखा का चरित्र नारी चेतना की दृष्टि से अत्यंत जटिल है। वह अपनी इच्छा को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। वह पुरुष के सामने अपनी भावनाओं को छिपाती नहीं। इस दृष्टि से वह पारंपरिक 'संकोची स्त्री' के प्रतिमान को चुनौती देती है।

"उस समय, कामना से पूर्ण हृदयवाली उस (शूर्पणखा) ने (राम का) वदन देखा। अपने अरुण करों से उनके चरणों का स्पर्श किया। फिर अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण नेत्ररूपी शूलों को उन पर फेंककर, कटाक्षपात करती हुई और हरिणी के समान लज्जा-सी दिखाती हुई, एक ओर खड़ी रही।"[7] आगे वह राम को अपना परिचय देते हुए कहती है——

"कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (पुलस्त्य) के कुमार (विश्रवा) की मैं पुत्री हूँ। त्रिपुर-दाह करने वाले वृषभ-वाहन (शिव) के मित्र रक्त करों वाले (कुबेर) की भगिनी हूँ। दिग्गजों का बल चूर-चूर करके रजत पर्वत को उठाने वाले, त्रिलोक पर शासन करने वाले रावण की कनिष्ठा (बहन) हूँ। मैं कामवल्ली कहलाती हूँ।"[8]

उसकी इच्छा अस्वीकार होती है और इसके बाद कथा में संघर्ष उत्पन्न होता है। आधुनिक स्त्री-विमर्श की दृष्टि से शूर्पणखा के प्रसंग में इच्छा, स्त्री-स्वायत्तता, पुरुष-प्रधान सामाजिक मानदंड और स्त्री की देह के प्रति दृष्टि जैसे प्रश्न उठते हैं।

हालाँकि शूर्पणखा को आदर्श स्त्री के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है, लेकिन उसका चरित्र यह प्रश्न अवश्य उपस्थित करता है कि समाज स्त्री की इच्छा और स्वतंत्र अभिव्यक्ति को किस सीमा तक स्वीकार करता है।

आधुनिक शोध में भी कैकेयी, मंथरा और शूर्पणखा को कंब रामायण की ऐसी स्त्रियों के रूप में देखा गया है जो पारंपरिक स्त्री-प्रतिमानों से अलग व्यवहार करती हैं।

9. तारा : राजनीतिक दूरदर्शिता और स्त्री-विवेक

तारा कंब रामायण की अत्यंत विवेकशील स्त्री है। वह परिस्थितियों को समझने और भविष्य के परिणामों का अनुमान लगाने में सक्षम दिखाई देती है। वाली और सुग्रीव के संघर्ष के प्रसंग में उसका राजनीतिक विवेक उल्लेखनीय है।

तारा ने बाली से कहा, "हे प्रभु! अपने हितचिंतक लोगों से मैंने सुना है कि राम नामक व्यक्ति उस (सुग्रीव) का प्राण-मित्र बन गया है। अब वही तुम्हारे प्राणहरण करने के लिए आया है।"[9]

तारा का चरित्र यह प्रमाणित करता है कि स्त्री को केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता। वह राज्य, सत्ता, संघर्ष और राजनीतिक परिणामों पर विचार करने की क्षमता रखती है।

उसकी चेतावनियाँ पुरुष सत्ता द्वारा हमेशा स्वीकार नहीं की जातीं। इस बिंदु पर तारा का चरित्र स्त्री की बुद्धि और पुरुष-प्रधान निर्णय व्यवस्था के बीच के तनाव को भी उजागर करता है।

10. मंदोदरी : विवेकपूर्ण प्रतिरोध

लंका की रानी मंदोदरी का चरित्र नारी चेतना का एक और महत्त्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत करता है। वह रावण के निकट होते हुए भी उसके प्रत्येक निर्णय का समर्थन नहीं करती। सीता-हरण के बाद वह रावण को उसके निर्णय के संभावित परिणामों से सावधान करती है।

मंदोदरी की चेतना नैतिक और राजनीतिक दोनों है। वह जानती है कि शक्ति और विजय का अहंकार अंततः विनाश का कारण बन सकता है। उसकी दृष्टि में स्त्री केवल पति के निर्णय को स्वीकार करने वाली नहीं, बल्कि उसे सही और गलत का बोध कराने वाली सहचरी भी है।

मंदोदरी का विवेक कंबन की उस दृष्टि को सामने लाता है जिसमें स्त्री पुरुष सत्ता के भीतर रहते हुए भी उसके निर्णयों की आलोचना कर सकती है।

11. त्रिजटा : स्त्री-सहानुभूति और मानवीय चेतना

अशोक वाटिका में त्रिजटा का चरित्र विशेष महत्त्व रखता है। वह राक्षसी समाज का हिस्सा होने के बावजूद सीता के प्रति सहानुभूति रखती है। उसके स्वप्न और व्यवहार के माध्यम से कंबन स्त्री-सहानुभूति को एक व्यापक मानवीय मूल्य में परिवर्तित करते हैं।

त्रिजटा सत्ता के पक्ष में खड़ी होने के बजाय पीड़ित स्त्री के साथ संवेदना का संबंध स्थापित करती है। इस कारण उसका चरित्र स्त्री-समुदाय के भीतर पारस्परिक सहानुभूति और मानवीयता का प्रतिनिधित्व करता है।

12. शबरी और अहल्या : सामाजिक एवं आध्यात्मिक आयाम

शबरी और अहल्या के प्रसंग स्त्री-चेतना को सामाजिक तथा आध्यात्मिक धरातल प्रदान करते हैं। शबरी सामाजिक रूप से हाशिये पर स्थित स्त्री है, किंतु उसकी भक्ति उसे आध्यात्मिक गरिमा प्रदान करती है। उसके माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा की अपेक्षा आत्मिक समर्पण की महत्ता सामने आती है।

अहल्या का प्रसंग स्त्री की सामाजिक स्थिति, पुरुष-निर्णय और पुनर्स्थापन के प्रश्नों से जुड़ा हुआ है। उसका चरित्र इस बात पर विचार करने का अवसर देता है कि समाज स्त्री के नैतिक आचरण का मूल्यांकन किस प्रकार करता है।

इन दोनों पात्रों के माध्यम से कंबन का नारी संसार राजमहल की स्त्रियों से बाहर निकलकर समाज के अपेक्षाकृत हाशिये

पर स्थित स्त्रियों तक पहुँचता है।

13. नारी चेतना के प्रमुख आयाम

कंब रामायण की स्त्री-पात्रों के समग्र अध्ययन से नारी चेतना के निम्न प्रमुख आयाम सामने आते हैं–

13.1 आत्मनिर्णय का आयाम

सीता का वनगमन, कैकेयी का वरदान माँगना और शूर्पणखा का अपनी इच्छा व्यक्त करना स्त्री के निर्णय लेने की क्षमता को सामने लाते हैं।

13.2 मातृत्व का आयाम

कौशल्या और सुमित्रा के माध्यम से मातृत्व केवल भावनात्मक संबंध नहीं, बल्कि नैतिक एवं सामाजिक दायित्व के रूप में सामने आता है।

13.3 राजनीतिक चेतना

कैकेयी, मंथरा और तारा स्त्री की राजनीतिक समझ और सत्ता पर उसके प्रभाव को रेखांकित करती हैं।

13.4 नैतिक चेतना

सीता, कौशल्या और मंदोदरी के चरित्रों में नैतिक विवेक का स्वर प्रमुख है। वे परिस्थितियों के दबाव में भी अपने नैतिक निर्णय को बनाए रखती हैं।

13.5 आत्मसम्मान

सीता का रावण के समक्ष दृढ़ रहना स्त्री के आत्मसम्मान का सशक्त उदाहरण है। उसका शरीर बंधन में है, पर उसकी चेतना स्वतंत्र है।

13.6 प्रतिरोध की चेतना

शूर्पणखा, कैकेयी और मंदोदरी के चरित्र अलग-अलग प्रकार के प्रतिरोध को सामने लाते हैं। इनमें किसी का प्रतिरोध व्यक्तिगत इच्छा का है, किसी का सत्ता में हस्तक्षेप का और किसी का अन्यायपूर्ण निर्णय के विरुद्ध नैतिक विरोध का।

13.7 सहानुभूति और स्त्री-समुदाय

त्रिजटा का चरित्र बताता है कि स्त्री की चेतना केवल व्यक्तिगत अधिकार तक सीमित नहीं है। वह दूसरी स्त्री के दुःख को समझने और उसके पक्ष में खड़े होने की मानवीय क्षमता भी रखती है।

14. परंपरा और आधुनिक नारी-विमर्श के बीच कंब रामायण

कंब रामायण का नारी-पक्ष पढ़ते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कंबन मध्यकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में रचना कर रहे थे। अतः उनकी स्त्री-दृष्टि को आधुनिक समानता और स्वतंत्रता की अवधारणाओं के साथ यांत्रिक रूप से नहीं मिलाया जा सकता।

फिर भी कंब रामायण में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनसे आधुनिक स्त्री-विमर्श के प्रश्न विकसित किए जा सकते हैं। सीता के माध्यम से आत्मसम्मान और निर्णय, कैकेयी के माध्यम से राजनीतिक अधिकार-बोध और निर्णय-क्षमता, शूर्पणखा के माध्यम से स्त्री की इच्छा, तारा के माध्यम से स्त्री-विवेक तथा मंदोदरी के माध्यम से सत्ता-विरोधी नैतिक चेतना जैसे विषय आज भी विचारणीय हैं।

इसीलिए कंब रामायण का नारी-पक्ष न तो पूर्णतः परंपरावादी कहा जा सकता है और न ही आधुनिक अर्थ में पूर्णतः नारीवादी। इसकी वास्तविक शक्ति इसी जटिलता में है। कंबन की स्त्रियाँ अपने समय की सामाजिक सीमाओं के भीतर रहते हुए भी उन सीमाओं में प्रश्न, द्वंद्व और विकल्प उत्पन्न करती हैं।

15. निष्कर्ष

कंब रामायण में नारी चेतना बहुआयामी और अंतर्विरोधपूर्ण है। कंबन ने स्त्री को केवल सौंदर्य, प्रेम और त्याग की प्रतिमा बनाकर नहीं छोड़ा, बल्कि उसे कथा की सक्रिय शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। सीता के व्यक्तित्व में आत्मसम्मान और दृढ़ता, कौशल्या में मातृत्व और नैतिक विवेक, सुमित्रा में कर्तव्यबोध, कैकेयी में राजनीतिक सक्रियता, मंथरा में अप्रत्यक्ष सत्ता-प्रभाव, शूर्पणखा में इच्छा और अस्मिता, तारा में दूरदर्शिता, मंदोदरी में विवेकपूर्ण प्रतिरोध तथा त्रिजटा में सहानुभूति का स्वर मिलता है।

संदर्भ-सूची

1. International Research Journal of Tamil, 2002. पृष्ठ 89–94
2. महाकवि कंब, (अनुवादक न. वी. राजगोपालन), कंब रामायण भाग-1, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण 1884, अयोध्याकांड से, पृष्ठ 224
3. वही पृष्ठ 201
4. वही पृष्ठ 210
5. वही पृष्ठ 187
6. वही पृष्ठ 217
7. वही, अरण्यकांड से, पृष्ठ 226
8. वही पृष्ठ 227
9. वही, किष्किंधा कांड से, पृष्ठ 460

शोध निर्देशिका, असिस्टेंट प्रोफेसर

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, आर.बी.एस. कॉलेज, आगरा

(मो0 नं0 8475924814)

हिन्दी विभाग, आर.बी.एस. कॉलेज, आगरा।

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

कबीर की धार्मिक चेतना का आधुनिक संदर्भ

फर्नांडो, डब्ल्यू. सी. एम.

सारसंक्षेप- हिंदी साहित्य के भक्ति काल की 'निर्गुण भक्ति' परंपरा के अंतर्गत 'ज्ञानमार्गी' शाखा के प्रमुख संत कबीरदास का चिंतन आज भी प्रगतिशीलता की परिभाषा में पूर्णतः सार्थक है। कबीर के समय समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर करने के लिए एक सहज 'मानव धर्म' की आवश्यकता थी, क्योंकि व्यक्तिगत आंतरिक अशुद्धियाँ ही सामाजिक पतन का कारण बनती हैं। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मध्यकालीन परिप्रेक्ष्य से इतर आधुनिक भारतीय समाज हेतु कबीर की धार्मिक चेतना एवं उनकी कविताओं की प्रासंगिकता और उपयोगिता का अनुशीलन करना है। अध्ययन हेतु द्वितीयक आँकड़ों (Secondary Data) का उपयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत कबीर के काव्य से संबंधित शास्त्रीय ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य सहायक सामग्री का विश्लेषण किया गया है। शोध के निष्कर्ष आधुनिक भारतीय चिंतन में क्रांति लाने में कबीर की महत्वपूर्ण भूमिका का संकेत देते हैं। समग्र रूप से, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक सौहार्दपूर्ण समाज के निर्माण और आधुनिक भारतीय मूल्य प्रणाली को आकार देने में कबीर की धार्मिक चेतना का अत्यंत गहरा प्रभाव रहा है।

बीज शब्द (Keywords) : कबीरदास, धार्मिक चेतना, निर्गुण भक्ति, मानव धर्म, सामाजिक समरसता, आधुनिक प्रासंगिकता।

1. प्रस्तावना- मध्यकालीन भारतीय इतिहास एवं साहित्य के अंतर्गत 'भक्ति आंदोलन' एक ऐसा असाधारण सांस्कृतिक व सामाजिक पुनर्जागरण था, जिसने समाज की वैचारिक और धार्मिक संरचना को मूलभूत रूप से पुनर्गठित किया। इस व्यापक आंदोलन के प्रमुख स्तंभों में संत कबीरदास का स्थान अत्यंत विशिष्ट एवं शीर्षस्थ है।[1] हिंदी साहित्य की 'निर्गुण भक्ति' धारा की 'ज्ञानमार्गी' (संत काव्य) शाखा के अग्रणी विचारक के रूप में कबीर ने तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्याडंबरों, पाखंडों, जातिगत विभेदों और धार्मिक संकीर्णताओं पर तीखा प्रहार करते हुए एक सहज, व्यावहारिक एवं सार्वभौमिक 'मानव धर्म' की नींव रखी।[2] कबीर केवल एक भक्त या कवि मात्र नहीं थे, अपितु वे एक युगदृष्टा समाज सुधारक और वैचारिक क्रांतिकारी थे।

कबीर की धार्मिक चेतना पारंपरिक अर्थों में किसी संगठित धर्म, पंथ या संप्रदाय के तंग दायरों में बंधी हुई नहीं है। उनका धर्म कर्मकांडों, तीर्थयात्राओं, छुआछूत, वेशभूषा के प्रदर्शन और मूर्तिपूजा जैसे बाह्य अनुष्ठानों से परे अंतरात्मा की शुद्धि, नैतिक आचरण और सहज मानवीय प्रेम पर आधारित है। कबीर के धार्मिक चिंतन के दो प्रमुख आयाम परिलक्षित होते हैं—'खंडनात्मक' और 'साधनात्मक'।[3] जहाँ एक ओर उन्होंने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों में समाहित रूढ़िवादिता, हठधर्मिता और धर्मांधता का कठोरता से खंडन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने सत्य, करुणा, अहिंसा, समता और आत्म-साक्षात्कार जैसे साधनात्मक एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना की। कबीर की मूल मान्यता थी कि व्यक्ति समाज की प्राथमिक इकाई है; अतः जब तक व्यक्ति की आंतरिक चेतना अशुद्धियों और संकीर्णताओं से मुक्त नहीं होती, तब तक एक स्वस्थ और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण संभव नहीं है।

वर्तमान 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में यदि दृष्टिपात किया जाए, तो अत्यधिक तकनीकी प्रगति और भौतिक समृद्धि के

बावजूद आधुनिक समाज वैचारिक ध्रुवीकरण, सांप्रदायिक तनाव, सामाजिक विषमता और नैतिक मूल्यों के ह्रास जैसे गंभीर संकटों से जूझ रहा है। वैश्वीकरण और सूचना क्रांति के इस दौर में जहाँ भौतिक दूरियाँ सिमट गई हैं, वहीं मानवीय संवेदनाओं, आपसी विश्वास और सामाजिक सौहार्द में गहरी खाई उत्पन्न हुई है। ऐसी स्थिति में कबीर की धार्मिक चेतना और उनका चिंतन-दर्शन और भी अधिक प्रासंगिक व अपरिहार्य हो उठता है। कबीर का दर्शन किसी एक विशेष कालखंड या भौगोलिक सीमा तक सीमित न रहकर शाश्वत और सार्वभौमिक है। प्रस्तुत शोध पत्र मध्यकालीन साहित्यिक परिप्रेक्ष्य से आगे बढ़कर आधुनिक भारतीय समाज के संदर्भ में कबीर की धार्मिक चेतना, उनके सामाजिक मूल्यों और उनकी काव्य-शैलियों की प्रासंगिकता का गहन अध्ययन करता है। यह अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि किस प्रकार कबीर का चेतना-दर्शन समकालीन समाज में व्याप्त सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों के निवारण और एक समतामूलक, शांतिपूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण समाज की स्थापना के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शक का कार्य करता है।

2. शोध कार्यप्रणाली- प्रस्तुत शोध कार्य मुख्य रूप से गुणात्मक अनुसंधान (Qualitative Research) पर आधारित है। इसका उद्देश्य कबीरदास की धार्मिक चेतना और समकालीन भारतीय समाज में उसकी प्रासंगिकता का वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। शोध विषय की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित कार्यप्रणाली का अनुसरण किया गया है :

2.1 शोध पद्धति (Research Approach)

अध्ययन में मुख्य रूप से वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धतियों का संयोजन किया गया है। कबीर के विचारों और दर्शन को समझने के लिए पाठ्य-विश्लेषण (Textual Analysis) विधि का प्रयोग किया गया है, जिससे उनके काव्य में निहित सामाजिक-धार्मिक चेतना का आधुनिक संदर्भों में मूल्यांकन किया जा सके।

2.2 आँकड़ों एवं स्रोतों का संकलन (Data Collection)

प्रस्तुत अध्ययन हेतु आवश्यक प्रामाणिक तथ्य एवं सामग्री केवल द्वितीयक स्रोतों (Secondary Data) से संकलित की गई है, जिन्हें दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है :

मूल साहित्य (प्राथमिक पाठ्य) : 'कबीर ग्रंथावली' (संपादक : बाबू श्यामसुंदर दास), 'बीजक' (साखी, सबद, रमैनी) एवं संत काव्य परंपरा से जुड़े प्रामाणिक संकलन।

सहायक साहित्य (समीक्षात्मक ग्रंथ) : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा अन्य प्रमुख कबीर-मर्मज्ञों की आलोचनात्मक पुस्तकें, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय अकादमिक शोध-पत्रिकाएँ (Journals), समीक्षात्मक निबंध और संदर्भित वेबसाइट्स।

2.3 डेटा विश्लेषण एवं परिप्रेक्ष्य (Data Analysis & Perspective)

संग्रहित सामग्री का विश्लेषण कबीर की धार्मिक चेतना के दो मुख्य स्तंभों—खंडनात्मक पक्ष (रूढ़िवादिता व पाखंड का विरोध) और साधनात्मक पक्ष (आंतरिक शुद्धि व मानव-धर्म की स्थापना) के आधार पर किया गया है। इन विचारों की तुलना आधुनिक समाज की वैचारिक, सांप्रदायिक और नैतिक चुनौतियों से करते हुए कबीर की प्रासंगिकता का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया गया है।

3. शोध परिणाम- प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत कबीर के काव्य, उनके दर्शन और समकालीन सामाजिक-धार्मिक परिदृश्य के गहन विश्लेषण से कई महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए हैं। प्रथम परिणाम के रूप में यह स्पष्ट होता है कि कबीर की धार्मिक चेतना का 'खंडनात्मक पक्ष' केवल बाह्य आडंबरों की सतही आलोचना तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक समानता की स्थापना का एक सशक्त माध्यम है। कबीर ने जाति-पाति, छुआछूत, कर्मकांड और सांप्रदायिक कट्टरता पर प्रहार करके आधुनिक भारतीय चिंतनधारा में वैचारिक क्रांति का सूत्रपात किया। इसके साथ ही, उनका 'साधनात्मक पक्ष' बाह्य रीति-रिवाजों के स्थान पर आत्मा की शुद्धता, नैतिक सत्यनिष्ठा और ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्थापित करता है। यह शोध दर्शाता है कि कबीर का धर्म किसी संगठित संप्रदाय का मोहताज न होकर 'सहज मानव धर्म' पर आधारित है, जो मनुष्य

को मनुष्य से जोड़ने का काम करता है।

समकालीन भारतीय समाज के संदर्भ में परिणाम यह उजागर करते हैं कि कबीर के विचार आज व्याप्त वैचारिक ध्रुवीकरण, धार्मिक असहिष्णुता और वर्ग-विभाजन का एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करते हैं। उनका दर्शन अंतर-धार्मिक संवाद (Inter-faith Dialogue) और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देता है। इसके अतिरिक्त, कबीर की व्यावहारिक शब्दावली और लोक-भाषा (सधुक्कड़ी) में रचित काव्य-युक्तियाँ आधुनिक जनमानस की चेतना को झकझोरने में आज भी प्रासंगिक हैं। यह अध्ययन सिद्ध करता है कि कबीर की धार्मिक चेतना ने आधुनिक भारतीय मूल्य प्रणाली (Modern Indian Value System) को अधिक मानवीय, सहिष्णु और न्यायसंगत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

4. विचार-विमर्श- कबीर की धार्मिक चेतना का अनुशीलन करते समय एक मुख्य समालोचनात्मक प्रश्न उभरता है : क्या कबीर केवल एक उग्र 'खंडनकारी' (Rebel) थे, अथवा वे एक 'नव-सृजनकारी' (Constructive Reformer) दार्शनिक थे? आलोचकों का एक वर्ग उन्हें मुख्यतः हिंदू-मुस्लिम रूढ़ियों के आलोचक के रूप में प्रस्तुत करता है, किंतु यह दृष्टिकोण आंशिक है। कबीर का 'खंडनात्मक' रुख दरअसल उनके 'साधनात्मक' उद्देश्य की अनिवार्य पूर्व-शर्त था। जब तक बाह्य पाखंडों, कर्मकांडों और संस्थागत धर्म के संकीर्ण दायरों को ध्वस्त नहीं किया जाता, तब तक आत्म-शुद्धि और 'सहज मानव धर्म' की स्थापना संभव नहीं थी।

आधुनिक दौर में, जहाँ धर्म का व्यवसायीकरण और पहचान की राजनीति चरम पर है, कबीर का यह द्विआयामी दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

चित्र 1. कबीर की धार्मिक चेतना का द्विआयामी मॉडल एवं आधुनिक प्रभाव

आयाम (Dimension)	**मुख्य तत्व (Core Elements)**	**आधुनिक संदर्भ में अनुप्रयोग (Modern Application)**
खंडनात्मक पक्ष (Critique)	बाह्याडंबर व कर्मकांड विरोध जातिगत श्रेष्ठता का खंडन संस्थागत धार्मिक कट्टरता पर प्रहार	वैचारिक ध्रुवीकरण पर रोक जातिगत विषमता का अंत अंधविश्वास व पाखंड का निवारण
साधनात्मक पक्ष (Constructive Ethics)	आत्म-निरीक्षण व आंतरिक शुद्धि सर्वव्यापी ईश्वर (निर्गुण राम) करुणा, समता व प्रेम	सांप्रदायिक सौहार्द एवं शांति मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना नैतिक सत्यनिष्ठा व भ्रातृत्व

समकालीन संदर्भ में समालोचनात्मक तर्क (Critical Argument) :

आधुनिक भारतीय समाज में तकनीकी उन्नति के साथ-साथ नैतिक मूल्य-ह्रास और सांप्रदायिक विभाजन की प्रवृत्तियाँ बढ़ी हैं। कबीर का चिंतन पारंपरिक धर्मशास्त्रों (Dogma) के स्थान पर 'अनुभव-ज्ञान' (Empirical Wisdom) को प्राथमिकता देता है—"तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।"[4] यह दृष्टिकोण आधुनिक वैज्ञानिक चेतना (Scientific Temper) के साथ पूर्णतः तालमेल बिठाता है।

समीक्षात्मक दृष्टि से, कबीर की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने धर्म को 'सामूहिक पहचान' के बजाय 'व्यक्तिगत चरित्र व आंतरिक चेतना' से जोड़ा। आज जब धार्मिक प्रतीकवाद सामाजिक तनाव का कारण बन रहा है, तब कबीर का

यह संदेश कि ईश्वर मंदिर-मस्जिद में नहीं बल्कि 'घट-घट' में विद्यमान है, सामाजिक समरसता का अचूक सूत्र प्रदान करता है।[5]

चित्र २: आधुनिक सामाजिक चुनौतियाँ एवं कबीर का दार्शनिक समाधान

विचार-विमर्श से यह सिद्ध होता है कि कबीर का दर्शन अतीत का कोई निष्क्रिय अवशेष नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय समाज को समावेशी, सहिष्णु और नैतिक रूप से सशक्त बनाने की एक जीवंत व्यावहारिक कार्ययोजना (Actionable Blueprint) है।

5. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन यह सिद्ध करता है कि कबीरदास की धार्मिक चेतना केवल 15वीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन तक सीमित कोई ऐतिहासिक अवशेष नहीं है, बल्कि यह 21वीं सदी के आधुनिक समाज के लिए भी एक अत्यंत जीवंत और व्यावहारिक चेतना-दर्शन है। कबीर ने संस्थागत धर्म, बाह्याडंबरों, जातिगत विभेद और सांप्रदायिक संकीर्णता का कठोरता से खंडन करते हुए जिस 'सहज मानव धर्म' की नींव रखी, वह आज के वैचारिक ध्रुवीकरण, सामाजिक विषमता और नैतिक ह्रास के दौर में और भी अधिक अपरिहार्य हो उठा है।

शोध के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कबीर का 'खंडनात्मक पक्ष' सामाजिक संकीर्णताओं को ध्वस्त करने का साधन था, जबकि उनका 'साधनात्मक पक्ष' आंतरिक शुद्धि, करुणा, आत्म-निरीक्षण और सार्वभौमिक समता पर आधारित नैतिक समाज का आधार निर्मित करता है। उन्होंने धर्म को बाह्य अनुष्ठानों और सामूहिक पहचान के स्थान पर व्यक्तिगत चरित्र तथा अंतरात्मा की सत्यनिष्ठा से जोड़कर आधुनिक भारतीय मूल्य प्रणाली (Modern Indian Value System) को अधिक मानवीय और न्यायसंगत बनाने में क्रांतिकारी भूमिका निभाई है।

अंततः, यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि एक समरस, सहिष्णु और सौहार्दपूर्ण समाज के निर्माण के लिए कबीर की धार्मिक चेतना एक शाश्वत मार्गदर्शिका (Timeless Blueprint) प्रदान करती है। समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त सांप्रदायिक तनावों और सामाजिक विभाजन के स्थायी समाधान हेतु कबीर के 'मानव-धर्म' और उनके प्रगतिशील वैचारिक दर्शन को पुनर्जीवित करना समय की मुख्य आवश्यकता है।

अंत-टिप्पणियाँ

1. रोहरा, सतीश कुमार (2002), हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 13।
2. शर्मा, रामकिशोर (2006), कबीर-ग्रंथावली (सटीक), पृष्ठ 59।
3. शुक्ल, बैजनाथप्रसाद (1975), कबीररू एक नव्य बोध, पृ. 89।

4. वही, पृ. 88।

5. कुमारी, विनीता (2001), कबीर-काव्य के सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ 123।

"जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू रांम नांम उच्चरै।
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीरा को स्वामी घटि-घटि रह्यो समाई॥

6. संदर्भ सूची (References)

संदर्भ ग्रंथ - हिंदी

उपाध्याय, अयोध्यासिंह 'हरिऔध' (सं.). (2015). कबीर वचनावली अर्थात् कबीर साहब के उत्तमोत्तम भजनों और साखियों का संग्रह. नागरीप्रचारिणी सभा।

कपूर, श्यामचंद्र. (1991). हिंदी साहित्य का इतिहास. ग्रंथ अकादमी।

कांतकुमार. (1972). कबीरदास. किताब घर।

कुमारी, विनीता. (2001). कबीर-काव्य के सांस्कृतिक स्रोत. साहित्य सहकार।

चतुर्वेदी, परशुराम. (2008). उत्तरी भारत की संत-परंपरा. राजकमल प्रकाशन।

दास, बाबू श्यामसुंदर (संपा.). (2015). कबीर ग्रंथावली. नागरीप्रचारिणी सभा।

दास, श्यामसुंदर (सं.). (2025). कबीर-ग्रंथावली. नागरीप्रचारिणी सभा।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1971). कबीर. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2012). कबीर. राजकमल प्रकाशन।

वर्मा, रामकुमार. (2010). हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. लोकभारती प्रकाशन।

शर्मा, रामकिशोर. (2006). कबीर-ग्रंथावली (सटीक). लोक भारती प्रकाशन।

शास्त्री, विष्णुकांत. (1971). कुछ चंदन की कुछ कपूर की (भारतीय संस्कृति में कबीर का योगदान). हिंदी प्रचारक संस्थान।

शुक्ल, बैजनाथप्रसाद. (1975). कबीररू एक नव्य बोध. लखनऊ : साहित्य-कुटीर।

शुक्ल, रामचंद्र. (2018). हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरीप्रचारिणी सभा।

सिंह, जयदेव, एवं सिंह, वासुदेव. (2000). कबीर वाङ्मय : खंड 3 (साखी). विश्वविद्यालय प्रकाशन।

सिंह, धर्मवीर. (2005). कबीर के आलोचक. वाणी प्रकाशन।

सिंह, नामवर. (2002). दूसरी परंपरा की खोज. राजकमल प्रकाशन।

स्नातक, विजयेंद्र. (1965). कबीर—आलोचना. राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड।

संदर्भ ग्रंथ — अंग्रेज़ी

Tendal, K. B. (1955). A history of Indian literature

सहायक ग्रंथ — हिंदी

आडकर, शं. के. (1972). हिंदी निर्गुण-काव्य का प्रारंभ और नामदेव की हिंदी कविता. रचना प्रकाशन।

चतुर्वेदी, परशुराम. (1982). संत साहित्य की परख. भारती भंडार।

त्रिगुणायत, गोविंद. (वर्ष उपलब्ध नहीं). शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (भाग 1). भारतीय साहित्य मंदिर।

त्रिगुणायत, गोविंद. (1971). कबीर और जायसी का रहस्यवाद और तुलनात्मक-विवेचन. साहित्य सदन।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद। (1965)। साहित्य सहचर। नैवेद्य निकेतन।

रोहरा, सतीश कुमार. (1990). हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास. आगरारू केंद्रीय हिंदी संस्थान।

शुक्ल, रामचंद्र। (सं. 2025 / 1968)। हिंदी साहित्य का इतिहास। नागरीप्रचारिणी सभा।

सिंह, राजदेव. (1981). हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और कबीर. आलेख प्रकाशन।

सिंह, व्योहार राजेंद्र. (सं. 2026). गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना. नागरीप्रचारिणी सभा।

पत्रिकाएँ

उपाध्याय, प्रवीण (संपा.). (2006, फरवरी). आजकल. प्रकाशन विभाग।

उपाध्याय, प्रवीण (संपा.). (2006, अगस्त). आजकल (अंक 4). प्रकाशन विभाग।

माथुर, गिरिजा कुमार (संपा.). (1988). गगनांचल (अंक 2). भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद।

मोहन, मधुप (संपा.). (2004, जनवरी–मार्च). गगनांचल (अंक 1). भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद।

शर्मा, योगेंद्र दत्त (संपा.). (2010, जुलाई). आजकल. प्रकाशन विभाग।

सिंह, प्रताप (संपा.). (1996, जून). आजकल. पटियाला हाउस।

शोध-पत्रिकाएँ (Journals)

कुमार, संजीव एवं सिंह, प्रियंका। (2020)। कबीर का मानवतावाद और 21वीं सदी के वैचारिक संकट।

अंतरराष्ट्रीय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान अनुसंधान पत्रिका, 8(6), 15-22।

गुप्ता, मीनाक्षी। (2023)। कबीर काव्य में सामाजिक एवं धार्मिक क्रांतियों की अवधारणा। एशियन जर्नल ऑफ MULTIDISCIPLINARY स्टडीज, 11(2), 40-46।

जोशी, अनिल कुमार। (2019)। कबीर दर्शन की प्रासंगिकता और आधुनिक सामाजिक चेतना।

अनुशीलन : मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 14(2), 45-52।

द्विवेदी, संतोष। (2018)। मध्यकालीन संत साहित्य में निर्गुण चेतना और सामाजिक सौहार्द। शोध दिशा, 39(4), 87-94।

फर्नांडो, डब्लू. सी. एम.। (2022)। रिलीजियस कॉन्शियसनेस इन कबीर्स पोएट्रीज़ कबीर के काव्य में धार्मिक चेतना,। प्रभाषा विमर्शित शास्त्रीय संग्रहय, (अंक 2), भाषा विभाग, भिक्षु यूनिवर्सिटी ऑफ श्रीलंका।

शर्मा, रमेश चंद्र। (2021)। कबीर का समाजशास्त्र : समकालीन भारतीय परिदृश्य के संदर्भ में। अकादमिक दृष्टि, 22(1), 112-119।

Senior Lecturer
Department of Languages
Faculty of Indigenous Medicine
Gampaha Wickramarachchi University of Indigenous Medicine
Kandy Road, Yakkala, Sri Lanka.
chathuf/gwu.ac.lk
Mon. : 94742269280

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में डॉ. रामदयाल मुंडा की भागीदारी

कृष्णा सरदार

सारांश- डॉ. रामदयाल मुंडा (1939-2011) भारतीय आदिवासी समाज के एक असाधारण चिंतक, बुद्धिजीवी, शिक्षाविद, साहित्यकार, समाज सुधारक, नृतत्तवशास्त्री एवं सांस्कृतिक कार्यकर्ता थे जिन्होंने आदिवासी समुदाय के भाषा, संस्कृति और पहचान से जुड़े मुद्दों को स्थानीय से निकालकर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किया। उनके लिए आदिवासी समाज केवल एक आर्थिक रूप से पिछड़े या वंचित समुदाय ही नहीं था बल्कि यह एक ऐसा समाज था जिसकी अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, परंपराएँ, सामुदायिक जीवन-पद्धति और प्रकृति के साथ गहरा संबंध था। इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य ने उन्हें भारत के आदिवासी प्रश्न को विश्व के अन्य स्वदेशी समुदायों (Indigenous Peoples) के संघर्षों के साथ जोड़ने हेतु प्रेरित किया। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उनकी सक्रियता का उद्देश्य केवल भारत के आदिवासियों की समस्याओं को उजागर करना नहीं था बल्कि उनके अधिकारों, गरिमा और सांस्कृतिक पहचान के लिए एक व्यापक वैश्विक संवाद को पोषित करना भी था। भारतीय आदिवासियों की समस्याओं को वैश्विक मंच पर लाने में उनकी सक्रिय भूमिका रही है विशेषकर संयुक्त राष्ट्र के आदिवासी जनसमुदायों से संबंधित मंचों जैसे जिनेवा स्थित मूल निवासी लोगों पर कार्य समूह और अन्य अंतरराष्ट्रीय आदिवासी मंचों पर उन्होंने भूमि विस्थापन, प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार, सांस्कृतिक पहचान, भाषा, आत्मनिर्णय और विकास की वैकल्पिक अवधारणा जैसे मुद्दों को प्रमुखता से उठाया। इस आलेख का मुख्य उद्देश्य डॉ. मुंडा की अंतरराष्ट्रीय भागीदारी का विश्लेषण करना है। हम यह समझना चाहते हैं कि उन्होंने आदिवासी पहचान को केवल एक प्रशासनिक या जनजातीय वर्गीकरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया बल्कि इसे इतिहास, भू-अधिकार, संस्कृति, सामुदायिक ज्ञान और सामूहिक गरिमा से जुड़े एक समुदाय के रूप में स्थापित किया। उनके अंतरराष्ट्रीय हस्तक्षेपों में स्थानीय और वैश्विक मुद्दों का एक अनूठा जुड़ाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनके लिए झारखंड की भूमि, जंगल, भाषा और संस्कृति से जुड़े मुद्दे दुनिया के अन्य स्वदेशी लोगों के सामने आने वाले सवालों से भिन्न नहीं थे। इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ. मुंडा भारतीय आदिवासी विमर्श को वैश्विक मूल निवासी विमर्श से जोड़ने वाले एक महत्वपूर्ण सेतु के रूप में उभरते हैं।

बीज शब्द : डॉ. रामदयाल मुंडा, आदिवासी विमर्श, अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन, स्वदेशी अधिकार, आदिवासी संस्कृति।

प्रस्तावना- भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता के भीतर आदिवासी समाज की एक विशिष्ट पहचान है। जंगल, ज़मीन, नदी, पहाड़, लोकगीत, नृत्य, भाषा और सामुदायिक जीवन के साथ आदिवासी समाज का संबंध केवल उपयोगिता वादी न होकर भावनात्मक और सांस्कृतिक जुड़ाव का रहा है। फिर भी आधुनिक भारत में आदिवासी समाज को लंबे समय तक विकास और प्रशासन के दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति रही है, जिससे उसकी अपनी ज्ञान-परंपरा, सांस्कृतिक दृष्टि और जीवन-दर्शन को अपेक्षित महत्व नहीं मिल पाया। इसी पृष्ठभूमि में डॉ. रामदयाल मुंडा का व्यक्तित्व उभरता है, जिन्होंने आदिवासी समाज को उसकी अपनी आवाज़ और परिप्रेक्ष्य के साथ समझने का प्रयास किया। डॉ. मुंडा के लिए आदिवासी पहचान मात्र एक सरकारी वर्गीकरण नहीं थी। यह इतिहास, भाषा, भूमि, संस्कृति और सामुदायिक स्मृति से निर्मित एक जीवन-दृष्टि थी। यही कारण है कि जब उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर आदिवासी समाजों के बारे में बात की तो उनकी चर्चा

केवल आर्थिक समस्याओं तक सीमित नहीं रही। उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि किसी समुदाय को उसकी भूमि, भाषा, संस्कृति और निर्णय लेने के अधिकारों से वंचित करके उसके विकास की परिकल्पना कैसे की जा सकती है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में डॉ. मुंडा ने भारतीय संदर्भ में यह प्रश्न उठाया कि भारत के आदिवासी समुदायों को केवल प्रशासनिक श्रेणी अनुसूचित जनजाति के रूप में देखने के बजाय उनकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामुदायिक विशिष्टता को भी समझा जाना चाहिए। इसी दृष्टि से उनके अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन केवल औपचारिक यात्राएँ नहीं थे बल्कि भारतीय आदिवासी समाज की वैकल्पिक पहचान और अधिकारों को अंतरराष्ट्रीय मंच पर स्थापित करने का माध्यम थे। डॉ. मुंडा का जन्म 23 अगस्त 1939 को झारखंड में हुआ और 30 सितंबर 2011 को उनका निधन हो गया। वे शिकागो विश्वविद्यालय से संबद्ध एक उच्च शिक्षित भाषाविद् थे। उनकी विद्वत्ता का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि उन्होंने आदिवासी भाषाओं को केवल लोक भाषाओं के रूप में नहीं बल्कि ज्ञान, संस्कृति और सामुदायिक अस्तित्व के वाहक के रूप में देखा। उनके शोध के मुख्य विषय भारतीय भाषाएँ आदिवासी समाज और विश्व आदिवासी आंदोलन थे। उनके प्रकाशित कार्यों में The Jharkhand Movement: Indigenous Peoples' Struggle for Autonomy in India, जिसे उन्होंने एस. बसु मल्लिक के साथ लिखा था विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इंटरनेशनल वर्क ग्रुप फॉर इंडीजीनस अफेयर्स (IWGIA) के अनुसार, यह पुस्तक झारखंड आंदोलन, भूमि, वन और जल से विस्थापन, सांस्कृतिक पहचान और आदिवासी दृष्टिकोण से विकास की आलोचना जैसे मुद्दों का दस्तावेजीकरण करती है। वे वस्तुत ऐसे व्यक्तित्व थे जिनमें विद्वत्ता, कलात्मकता, शिक्षण-कौशल, सांस्कृतिक चेतना और अपने समाज के प्रति गहन संवेदनशीलता का अद्भुत संगम था। उनके जीवन की असाधारण विशेषता यह थी कि विश्व के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में अकादमिक जीवन व्यतीत करने के उपरांत भी उन्होंने अपनी जड़ों से संबंध विच्छेद नहीं किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में दीर्घकालिक अध्यापन के पश्चात रांची विश्वविद्यालय में जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन को संस्थागत स्वरूप प्रदान करना इसी प्रतिबद्धता का ज्वलंत प्रमाण है।

आदिवासी विमर्श केवल आदिवासी समुदायों की समस्याओं तक सीमित नहीं है बल्कि यह समाज और विकास को उनकी विशिष्ट दृष्टि, अनुभव, इतिहास, संस्कृति, भाषा, ज्ञान-परंपरा और अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में समझने का एक वैचारिक प्रयास है। लंबे समय से आदिवासी समाज का अध्ययन बाह्य दृष्टिकोण से होता रहा है, चाहे वह मानवशास्त्रीय, प्रशासनिक अथवा विकासवादी ही क्यों न हो? आधुनिक आदिवासी विमर्श इस एकतरफा दृष्टिकोण को चुनौती देता है और यह प्रश्न उठाता है कि आदिवासी स्वयं अपने जीवन, इतिहास और भविष्य को कैसे देखते हैं? इस विमर्श के केंद्र में जल, जंगल, जमीन एवं पहाड़ - पर्वत के साथ-साथ पहचान, स्वशासन, आत्म निर्णय, विस्थापन, सांस्कृतिक अधिकार, भाषा, शिक्षा और प्राकृतिक संसाधनों पर सामुदायिक अधिकार आदि जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। आदिवासी समाज के लिए भूमि केवल एक आर्थिक संपत्ति नहीं है यह सामाजिक स्मृति, पूर्वजों, धार्मिक विश्वासों और सामुदायिक जीवन से गहराई से जुड़ी हुई है। इसी प्रकार वन केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं बल्कि उनके जीवन और संस्कृति का आधार है। डॉ. रामदयाल मुंडा का महत्व इस बात में है कि उन्होंने आदिवासी विमर्श को स्थानीय अनुभवों के धरातल से उठाकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों तक पहुँचाया। वे आदिवासी समाज के बाहरी अध्येता नहीं थे बल्कि स्वयं उसी समाज की उपज थे जिनकी गहन अंतर्दृष्टि आदिवासी भाषा, संस्कृति और जीवन-पद्धति की उनकी गहरी समझ से विकसित हुई थी। परिणामस्वरूप उनके चिंतन में आदिवासी समाज केवल अध्ययन का विषय न रहकर ज्ञान का एक मूलभूत स्रोत और इतिहास का एक सक्रिय निर्माता बन जाता है। डॉ. रामदयाल मुंडा के लिए अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन सिर्फ विदेश यात्रा, बड़े सभागार में भाषण या विद्वानों के बीच विचार-विमर्श का मंच नहीं थे। ये उनके लिए अपने लोगों की आवाज़ को वैश्विक स्तर पर पहुँचाने के अवसर थे। जब वे किसी अंतरराष्ट्रीय मंच पर खड़े होते थे तो वे केवल एक विद्वान के रूप में नहीं बल्कि झारखंड के गांवों, जंगलों, पहाड़ों, अखाड़ा, लोकगीतों, ढोल - मांदर की थाप और उन लोगों के जीवन का प्रतिनिधित्व करते थे जिनकी भाषा और संस्कृति के प्रति उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इसलिए उनके अंतरराष्ट्रीय वक्तव्यों को गहराई से समझने के लिए उनके भीतर के मनुष्य और कलाकार को समझना अत्यंत आवश्यक है। डॉ. मुंडा का जीवन स्वयं आदिवासी समाज की गहरी समझ पर आधारित था जहाँ यह जीवनशैली

केवल अध्ययन का विषय न होकर उनकी रोज़मर्रा की वास्तविकता थी। झारखंड की संस्कृति को विश्व के मानस पटल पर लाने में मुंडा जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा. 1987 में सोवियत रूस में आयोजित भारत उत्सव में झारखंड से पहली बार सांस्कृतिक टीम लेकर गये और यहां के नगाड़े, ढोल, भेंर के साथ पाइका नृत्य की अमिट छाप छोड़ आए. ये सिलसिला बाली (इंडोनेशिया), फिलीपींस, ताइपेइ, युरोप आदि देश में भी चला। एक शिक्षाविद के साथ-साथ अपनी भाषा संस्कृति के साथ लगाव और अपनी मातृभूमि से प्रेम अटूट था। यही कारण है कि जब वे संयुक्त राष्ट्र जैसे मंच पर भूमि, जंगल, विस्थापन या सांस्कृतिक अधिकारों पर बात करते थे तो वे किसी दूरस्थ समाज के बारे में सैद्धांतिक चर्चा नहीं कर रहे होते थे। उनके लिए ये प्रश्न सीधे जीवन से जुड़े थे। उनके चिंतन में भूमि केवल एक संपत्ति नहीं थी बल्कि वह पूर्वजों की स्मृति और आने वाली पीढ़ियों के भविष्य से गहराई से जुड़ी हुई थी। उसी प्रकार जंगल मात्र एक प्राकृतिक संसाधन नहीं था बल्कि वह उनके जीवन, संस्कृति और सामुदायिक अस्तित्व का आधार था। डॉ. मुंडा का संयुक्त राष्ट्र के Working Group on Indigenous Peoples से जुड़ाव उनके अंतरराष्ट्रीय करियर का एक महत्वपूर्ण अध्याय था। उनके बाद के शोधों में भी यह परिलक्षित होता है कि उन्होंने जिनेवा स्थित UN Working Group और न्यूयॉर्क स्थित UN Forum on Indigenous Issues के मंचों पर भारतीय आदिवासी प्रश्न को वैश्विक स्वदेशी विमर्श से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। जिनेवा के औपचारिक अंतरराष्ट्रीय सभागार में जहाँ विभिन्न देशों के प्रतिनिधि Indigenous Peoples के अधिकारों पर विचार कर रहे थे डॉ. मुंडा एक भारतीय विद्वान के रूप में उपस्थित थे जिनके मन में झारखंड के गाँवों की स्मृतियाँ बसी थीं। उनकी यह अद्वितीय विशेषता थी कि वे इन दो भिन्न दुनियाओं के बीच एक सेतु का निर्माण करते थे। उनकी अकादमिक भाषा में भी लोकजीवन की गहरी संवेदनाएँ परिलक्षित होती थीं। उनके लिए अंतरराष्ट्रीय मंच पर वक्तव्य देना अपने समाज का प्रतिनिधित्व करना था। यही कारण है कि उनकी वाणी में केवल राजनीतिक माँगें ही नहीं बल्कि गहन आत्मीयता और पीड़ा का भाव भी स्पष्ट रूप से मुखरित होता था। उनकी अंतरराष्ट्रीयता का अर्थ दुनिया से जुड़ना था न कि अपनी जड़ों से कटना। उन्होंने विश्व समुदाय को यह समझाने का प्रयास किया कि आदिवासी समाज को केवल विकास की समस्या के रूप में नहीं बल्कि ज्ञान, संस्कृति, गरिमा और अधिकारों से परिपूर्ण मानव समुदाय के रूप में देखा जाना चाहिए।

स्वदेशी अधिकार केवल कानूनी या राजनीतिक अधिकारों का एक समूह मात्र नहीं हैं। ये उन समुदायों के गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार से जुड़े हैं जिनका किसी भूभाग उसकी प्रकृति और अपनी सांस्कृतिक परंपराओं से पीढ़ियों पुराना संबंध रहा है। उनके लिए भूमि केवल संपत्ति नहीं होती वह उनके पूर्वजों की स्मृति, आजीविका, आस्था और आने वाली पीढ़ियों की उम्मीद होती है। उसी प्रकार जंगल केवल लकड़ी या खनिज का स्रोत नहीं बल्कि उनके जीवन और संस्कृति का एक अभिन्न अंग होता है। जब किसी समुदाय को उसकी भूमि से बिना उचित सहमति के विस्थापित किया जाता है तो उससे केवल उसका घर नहीं छिनता बल्कि उसकी सामाजिक स्मृति, रिश्ते और सांस्कृतिक परिवेश भी प्रभावित होते हैं। डॉ. रामदयाल मुंडा के इस संदर्भ में स्वदेशी अधिकार का अर्थ और भी व्यापक हो जाता है। उन्होंने आदिवासी अधिकारों को अस्मिता, संस्कृति, भाषा, आत्मनिर्णय और गरिमा से जोड़कर देखा। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वे इस बात को सामने रखते थे कि आदिवासी समुदायों को विकास का निष्क्रिय लाभार्थी नहीं बल्कि अपने भविष्य का निर्णय लेने वाला सक्रिय समुदाय माना जाना चाहिए। इस दृष्टि से स्वदेशी अधिकार अंतत मनुष्य को उसकी जमीन, संस्कृति और पहचान के साथ सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार है।

आदिवासी संस्कृति मनुष्य और प्रकृति के मध्य एक गहरे संबंध का प्रतिरूप है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवन का आधार रहा है। एक आदिवासी व्यक्ति के लिए जंगल मात्र पेड़ों का समूह नहीं बल्कि जीवन का सहचर है नदियाँ केवल जल का स्रोत नहीं बल्कि स्मृतियों और आस्था से परिपूर्ण धाराएँ हैं और भूमि केवल संपत्ति नहीं अपितु पूर्वजों की विरासत एवं भावी पीढ़ियों की आशा है। आदिवासी संस्कृति का मूल तत्व उसकी सामुदायिकता है जहाँ व्यक्ति का जीवन समुदाय से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा होता है। जन्म से लेकर विवाह, फसल, पर्व, दुख और उत्सव तक प्रत्येक अवसर पर सामूहिक सहभागिता को दर्शाता है। गाँव का अखाड़ा मात्र नृत्य स्थल न होकर संवाद, मेल-मिलाप, ज्ञानार्जन और सामुदायिक पहचान को अक्षुण्ण रखने का केंद्र है। मांदर की थाप पर सामूहिक नृत्य केवल संगीत का प्रदर्शन नहीं बल्कि पीढ़ियों की स्मृतियों और सामूहिक जीवन

ऊर्जा का स्पंदन है। आदिवासी गीत और लोककथाएँ उनके समाज के इतिहास का संरक्षण करती हैं। इनमें ऐसी घटनाएँ भी शामिल होती हैं जिन्हें लिखित इतिहास में अक्सर दर्ज नहीं किया जाता पर लोकगीतों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखा जाता है। दादी या नानी द्वारा सुनाई गई कहानियाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं होतीं वे प्रकृति के प्रति सम्मान, सामाजिक व्यवहार, नैतिकता और जीवन जीने के महत्वपूर्ण सबक सिखाती हैं। इस प्रकार आदिवासी संस्कृति वास्तव में एक जीवित ज्ञान-परंपरा है। आदिवासी संस्कृति का मानवीय पहलू विस्थापन और आधुनिक विकास के संदर्भ में और अधिक मुखर हो उठता है। किसी आदिवासी परिवार को उसकी भूमि से विस्थापित करना केवल उसके आवास का परिवर्तन नहीं है बल्कि यह उसके पूजा स्थलों, पैतृक स्मृतियों, सामुदायिक संबंधों, वन-आधारित ज्ञान और जीवन-शैली को भी प्रभावित करता है। इसलिए आदिवासी संस्कृति की सुरक्षा का अर्थ मात्र लोकनृत्यों या त्योहारों का संरक्षण नहीं है, बल्कि उन व्यक्तियों के जीवन-जगत का सम्मान करना है जो उस संस्कृति को जीते हैं। आदिवासी संस्कृति न तो स्थिर है और न ही अतीत में बंधी हुई। यह निरंतर परिवर्तनशील, जीवंत और संघर्षशील संस्कृति है जिसका मूल संदेश मनुष्य, प्रकृति और समुदाय के बीच संतुलित संबंध में निहित है। डॉ. रामदयाल मुंडा के विचारों में यही संस्कृति पहचान, आत्मसम्मान और अस्तित्व का आधार बनती है। इसलिए आदिवासी संस्कृति को समझना वास्तव में उन मनुष्यों को समझना है जिनके लिए संस्कृति कोई बाहरी प्रदर्शन नहीं बल्कि उनका अपना जीवन है।

निष्कर्ष- डॉ. रामदयाल मुंडा की अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी को केवल एक विद्वान की विदेश यात्रा या सम्मेलन में उपस्थिति मात्र नहीं माना जा सकता। उनके लिए ये अंतरराष्ट्रीय मंच अपने समाज की आवाज़ को दुनिया तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम थे। जब वे किसी वैश्विक मंच पर आदिवासी अधिकारों, भाषा, संस्कृति, भूमि, जंगल, विस्थापन और आत्मनिर्णय जैसे मुद्दों पर बात करते थे तो उनके पीछे झारखंड के उन समुदायों का गहरा जीवन-अनुभव होता था जिनसे वे स्वयं गहराई से जुड़े हुए थे। उनकी विशेषता स्थानीय अनुभवों को वैश्विक विमर्श से जोड़ने में थी। उन्होंने आदिवासी समाज को केवल पिछड़ा या विकास के लाभार्थी समुदाय के रूप में देखने की पारंपरिक धारणा को चुनौती दी। इसके बजाय उन्होंने उन्हें अपनी संस्कृति, ज्ञान-परंपरा, भाषा और प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार रखने वाले एक जीवंत समाज के रूप में प्रस्तुत किया। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उनकी सक्रिय भागीदारी ने भारतीय आदिवासी प्रश्न को विश्व के स्वदेशी लोगों के व्यापक विमर्श से सफलतापूर्वक जोड़ा। डॉ. मुंडा की अंतरराष्ट्रीय भूमिका का एक महत्वपूर्ण मानवीय पहलू भी था। वे आदिवासी संस्कृति पर केवल सैद्धांतिक रूप से चर्चा नहीं करते थे बल्कि उसे अपने जीवन में आत्मसात करते थे। उनके लिए गीत - संगीत, नृत्य, भाषा और सामुदायिक परंपराएँ मात्र सांस्कृतिक प्रतीक नहीं थीं बल्कि उनके अस्तित्व और आत्मसम्मान का आधार थीं। यही कारण है कि उनका विचार 'जे नाची से बाँची' आदिवासी संस्कृति के संरक्षण और सामुदायिक पहचान को बनाए रखने का एक व्यापक संदेश बन जाता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि डॉ. रामदयाल मुंडा की अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी उनके व्यक्तित्व की विद्वत्ता, संवेदनशीलता, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक प्रतिबद्धता का एक समन्वित स्वरूप थी। उन्होंने वैश्विक मंचों तक पहुँच बनाई किंतु अपनी मिट्टी, भाषा और समुदाय से अपना जुड़ाव कभी नहीं छोड़ा। उन्होंने अंतरराष्ट्रीय संवाद में यह स्थापित करने का प्रयास किया कि आदिवासी समाज को दया या पिछड़ेपन के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि गरिमा, अधिकार, संस्कृति और आत्मनिर्णय से परिपूर्ण मानव समुदाय के रूप में देखा जाना चाहिए। यही उनकी अंतरराष्ट्रीय भागीदारी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि और उनके जीवन की स्थायी विरासत है।

संदर्भ सूची

1. मुंडा, रामदयाल एवं एस. बासु मालिक। The Jharkhand Movement: Indigenous Peoples' Struggle for Autonomy in India। कोपेनहेगन : International Work Group for Indigenous Affairs (IWGIA) एवं Bindrai Institute for Research, Study and Action, 2003

2. मुंडा, रामदयाल एवं मालिक, एस. बासु (सं)। "Recent Development in Jharkhand Movement." in The Jharkhand Movement: Indigenous Peoples' Struggle for Autonomy in India? Copenhagen: IWGIA, 2003?
3. मुंडा, रामदयाल। "Tribal Identity: The Crisis and the Way Out." in Cultural Forces Shaping India? Bangalore: Macmillan, 1989?
4. United Nations. Permanent Forum on Indigenous Issues: Documents and ReportsA United Nations, New YorkA
5. https://www.prabhatkhabar.com/state/jharkhand/ranchi/my-mati-dr-ramdayal-munda-was-a-social-and-cultural-leader-of-jharkhand-unk
6. झारखंड सरकार, जनजातीय कल्याण एवं शोध संस्थान. डॉ. रामदयाल मुंडारू व्यक्तित्व एवं कृतित्व. रांची।

शोधार्थी (हिन्दी)
कलिंग इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस
(किस्) मानित विश्वविधालय भुवनेश्वर, ओड़िशा
संपर्क नं - 7667398568
डाकघर - किट शाखा, भुवनेश्वर, 751024

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Print Research Journal

बौद्ध दर्शन एवं बौद्ध धर्म के पंचशील : मानवीय मूल्यों और समकालीन समाज के लिए एक नैतिक आधार

राजवीर सिंह ओझा

शोध सार- बौद्ध दर्शन विश्व की प्रमुख नैतिक एवं दार्शनिक परंपराओं में से एक है। इसकी उत्पत्ति प्राचीन भारत में सिद्धार्थ गौतम, जिन्हें बाद में बुद्ध के नाम से जाना गया, की शिक्षाओं से हुई। बौद्ध दर्शन का मुख्य उद्देश्य दुःख की प्रकृति, उसके कारणों तथा उससे मुक्ति के मार्ग को समझना है। अन्य दार्शनिक परंपराओं की तुलना में बौद्ध दर्शन केवल आध्यात्मिक या तात्त्विक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यावहारिक आचरण, मानसिक अनुशासन, प्रज्ञा, करुणा और नैतिक जीवन पर विशेष बल देता है। बौद्ध नैतिकता के आधारभूत सिद्धांतों में पंचशील का विशेष स्थान है। पंचशील में प्राणियों की हिंसा से बचना, जो वस्तु प्रदान न की गई हो उसे ग्रहण न करना, कामाचार में दुराचार से बचना, असत्य भाषण से बचना तथा मादक पदार्थों से दूर रहना शामिल है। ये केवल निषेधात्मक नियम नहीं हैं, बल्कि करुणा, सत्यनिष्ठा, आत्मसंयम, उत्तरदायित्व और सजगता जैसे मानवीय गुणों के विकास के साधन हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में बौद्ध दर्शन के मूलभूत सिद्धांतों तथा पंचशील के नैतिक महत्व का अध्ययन किया गया है। साथ ही समकालीन समाज में पंचशील की प्रासंगिकता, विशेषकर शांति, सामाजिक सद्भाव, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, पर्यावरणीय संवेदनशीलता और सतत जीवन-शैली के संदर्भ में इसकी उपयोगिता का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध दर्शन और पंचशील आधुनिक समाज की नैतिक एवं सामाजिक चुनौतियों के समाधान के लिए आज भी महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

प्रमुख शब्द : बौद्ध दर्शन, बौद्ध धर्म, पंचशील, बौद्ध नैतिकता, मानवीय मूल्य, करुणा, नैतिकता, सजगता, सामाजिक सद्भाव

1. प्रस्तावना- बौद्ध धर्म का उद्भव प्राचीन भारत में उस समय हुआ जब सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। सिद्धार्थ गौतम, जिन्हें बुद्ध के नाम से जाना जाता है, ने मानव जीवन की मूल समस्या के रूप में दुःख को समझने तथा उससे मुक्ति का मार्ग प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनकी शिक्षाओं का विकास आगे चलकर एक व्यापक दार्शनिक एवं नैतिक परंपरा के रूप में हुआ, जिसमें मानवीय आचरण, मानसिक विकास, प्रज्ञा, करुणा और मुक्ति को विशेष महत्व दिया गया[1]।

बौद्ध दर्शन की एक प्रमुख विशेषता इसकी व्यावहारिक प्रकृति है। इसमें दर्शन को केवल बौद्धिक चिंतन का विषय नहीं माना गया, बल्कि इसे मानव जीवन और व्यवहार के परिवर्तन से जोड़ा गया है। बुद्ध की शिक्षाएँ व्यक्ति को जीवन की वास्तविक प्रकृति को समझने, दुःख के कारणों को पहचानने, हानिकारक इच्छाओं एवं आसक्तियों पर नियंत्रण रखने तथा करुणा और प्रज्ञा का विकास करने के लिए प्रेरित करती हैं। इस प्रक्रिया में नैतिक आचरण की महत्वपूर्ण भूमिका है। बौद्ध नैतिकता व्यक्ति को हानिकारक कार्यों से बचने और कल्याणकारी मानसिक एवं व्यवहारिक प्रवृत्तियों को विकसित करने की प्रेरणा देती है। पंचशील बौद्ध धर्म के गृहस्थ अनुयायियों के लिए नैतिक जीवन के मूलभूत सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करता है। इन्हें किसी बाहरी सत्ता द्वारा लगाए गए कठोर आदेश के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से अपनाए जाने वाले नैतिक संकल्प

के रूप में देखा जाता है9। पंचशील इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मानव व्यवहार के मूलभूत क्षेत्रों को संबोधित करता है। यह हिंसा, चोरी, अनैतिक यौन आचरण, असत्य भाषण तथा नशीले पदार्थों से उत्पन्न असावधानी से बचने की प्रेरणा देता है। इसके गहरे नैतिक पक्ष में करुणा, उदारता, उत्तरदायित्व, सत्यनिष्ठा, आत्मसंयम और सजगता का विकास निहित है।[6] आधुनिक समाज वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के साथ-साथ उपभोक्तावाद, पर्यावरणीय संकट, सामाजिक संघर्ष, हिंसा, भ्रष्टाचार और मानसिक तनाव जैसी अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। ऐसी परिस्थितियों में बौद्ध दर्शन और पंचशील के नैतिक सिद्धांत आज भी प्रासंगिक दिखाई देते हैं 13, 17। इसलिए प्रस्तुत शोध-पत्र में बौद्ध दर्शन और पंचशील का दार्शनिक, नैतिक तथा समकालीन दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है।

2. बौद्ध दर्शन के आधारभूत सिद्धांत- बौद्ध दर्शन मूलतः मानव जीवन की प्रकृति और मानवीय अनुभव को समझने से संबंधित है। बुद्ध की शिक्षाओं में सामान्य मानवीय जीवन में व्याप्त दुःख को स्वीकार करते हुए उसके कारणों की पहचान और उससे मुक्ति का व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत किया गया है।[3]

2.1 चार आर्य सत्य- चार आर्य सत्य बौद्ध दर्शन की आधारशिला हैं। इन्हें निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. दुःख का सत्य : सामान्य मानवीय जीवन विभिन्न प्रकार के दुःख, असंतोष, परिवर्तनशीलता और अपूर्णता से प्रभावित है।

2. दुःख के कारण का सत्य : दुःख का प्रमुख कारण तृष्णा, आसक्ति, अज्ञान तथा वस्तुओं को स्थायी मानने की प्रवृत्ति है।

3. दुःख निरोध का सत्य : दुःख के मूल कारणों को समाप्त करके दुःख से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

4. दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा : दुःख के निरोध के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया जाता है।

इन सिद्धांतों में ज्ञान, नैतिक आचरण, मानसिक अनुशासन और मुक्ति के बीच गहरा संबंध स्थापित किया गया है।

2.2 आर्य अष्टांगिक मार्ग- आर्य अष्टांगिक मार्ग बौद्ध साधना और नैतिक जीवन का व्यावहारिक आधार है। इसके आठ अंग हैं—सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक प्रयास, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि[2]। इन्हें व्यापक रूप से प्रज्ञा, शील और मानसिक विकास के तीन आयामों में समझा जाता है। सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत और सम्यक आजीविका नैतिक आचरण से सीधे संबंधित हैं। पंचशील इन्हीं नैतिक आदर्शों को दैनिक जीवन में व्यवहारिक रूप प्रदान करता है।

2.3 अनित्य, दुःख और अनात्म- बौद्ध दर्शन के महत्वपूर्ण सिद्धांतों में अनित्य, दुःख और अनात्म प्रमुख हैं। बौद्ध विचार के अनुसार संसार की सभी संस्कारित वस्तुएँ निरंतर परिवर्तनशील हैं। किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति को स्थायी मानकर उससे अत्यधिक आसक्ति करना दुःख का कारण बन सकता है। अनात्म का सिद्धांत स्थायी, स्वतंत्र और अपरिवर्तनशील आत्मा की धारणा पर प्रश्न उठाता है। इन दार्शनिक अवधारणाओं का उद्देश्य व्यक्ति को अत्यधिक आसक्ति से मुक्त करना तथा स्वयं, अन्य व्यक्तियों और संसार के प्रति अधिक संतुलित दृष्टिकोण विकसित करना है।

2.4 करुणा और मैत्री- करुणा और मैत्री बौद्ध नैतिकता के महत्वपूर्ण आदर्श हैं। बौद्ध धर्म व्यक्ति को अन्य प्राणियों के दुःख को समझने तथा उनके प्रति घृणा या हिंसा के स्थान पर करुणा का भाव रखने के लिए प्रेरित करता है। यह नैतिक दृष्टिकोण केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त जीव-जगत के प्रति संवेदनशीलता विकसित करता है। इसी कारण बौद्ध दर्शन में पशु-कल्याण, अहिंसा और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व जैसे विषयों की समकालीन संदर्भ में विशेष चर्चा की जाती है।

3. बौद्ध धर्म के पंचशील- पंचशील बौद्ध धर्म के गृहस्थ अनुयायियों के लिए मूलभूत नैतिक सिद्धांतों का समूह है। इन्हें सामान्यतः पाँच ऐसे नैतिक संकल्पों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिनका उद्देश्य हानिकारक व्यवहार से बचना और सदाचारी जीवन को विकसित करना है।

3.1 प्राणियों की हिंसा से विरत रहना- पहला शील जीवित प्राणियों की हत्या या हिंसा से विरत रहने से संबंधित

है। इसका मूल आधार करुणा और जीवन के प्रति सम्मान है। यह सिद्धांत केवल हत्या से बचने तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति को समस्त जीवों के प्रति संवेदनशीलता तथा अनावश्यक हिंसा को कम करने की प्रेरणा देता है [8, 10]। इसके व्यापक नैतिक अर्थ में दया, करुणा और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को महत्व दिया जाता है। समकालीन समाज में यह सिद्धांत घरेलू एवं सामाजिक हिंसा, युद्ध, पशु-कल्याण, संघर्ष समाधान और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के संदर्भ में महत्वपूर्ण है [11,14]। यह व्यक्ति को अपने कार्यों से होने वाले परिणामों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देता है।

3.2 अदत्त वस्तु को ग्रहण न करना- दूसरा शील ऐसी वस्तु को ग्रहण करने से रोकता है जो व्यक्ति को स्वेच्छा से प्रदान नहीं की गई हो। यह चोरी, धोखाधड़ी, शोषण और अनुचित लाभ प्राप्त करने जैसे व्यवहारों से संबंधित है। इसका सकारात्मक नैतिक आधार दूसरों की संपत्ति, श्रम, अधिकार और गरिमा का सम्मान करना है। व्यापक अर्थ में यह सिद्धांत ईमानदारी और न्यायपूर्ण व्यवहार को प्रोत्साहित करता है। आधुनिक समाज में यह सिद्धांत केवल भौतिक चोरी तक सीमित नहीं है। भ्रष्टाचार, आर्थिक धोखाधड़ी, बौद्धिक संपदा का उल्लंघन, संसाधनों का अनुचित उपयोग और विभिन्न प्रकार के शोषण को भी इसके व्यापक नैतिक संदर्भ में देखा जा सकता है।[16]

3.3 कामाचार में दुराचार से बचना- तीसरा शील यौन आचरण में अनुचित व्यवहार से बचने की शिक्षा देता है। बौद्ध नैतिकता में इसे ऐसे यौन व्यवहार से बचने के रूप में समझा जाता है जिसमें शोषण, जबरदस्ती, धोखा या दूसरे व्यक्ति की गरिमा की उपेक्षा शामिल हो। इस सिद्धांत का मूल आधार व्यक्तिगत जिम्मेदारी और दूसरों के प्रति सम्मान है। आधुनिक संदर्भ में इसे पारस्परिक सम्मान, सहमति, गरिमा और जिम्मेदार संबंधों से जोड़ा जा सकता है।

3.4 असत्य भाषण से विरत रहना- चौथा शील सत्य और जिम्मेदार संचार से संबंधित है। बौद्ध नैतिकता में वाणी को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि वाणी समाज में शांति भी स्थापित कर सकती है और संघर्ष भी उत्पन्न कर सकती है। यह सिद्धांत झूठ और हानिकारक संचार से बचने की प्रेरणा देता है। इसके सकारात्मक पक्ष में सत्य, हितकारी, मधुर और उचित वाणी का विकास शामिल है। डिजिटल युग में इसकी प्रासंगिकता और बढ़ गई है। सोशल मीडिया और ऑनलाइन संचार के माध्यम से गलत सूचना, अफवाह, भ्रामक प्रचार और चरित्र-हनन बहुत तेजी से फैल सकता है। इसलिए जिम्मेदार और सत्यपरक संचार आधुनिक नैतिक जीवन का महत्वपूर्ण आधार है।

3.5 मादक पदार्थों से विरत रहना- पाँचवाँ शील उन मादक पदार्थों से दूर रहने की शिक्षा देता है जो व्यक्ति को असावधान या विवेकहीन बना सकते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य केवल किसी पदार्थ का निषेध करना नहीं है, बल्कि ऐसी अवस्था से बचना है जिसमें व्यक्ति अपने विवेक और आत्म-नियंत्रण को खो देता है। बौद्ध दर्शन में सजगता का विशेष महत्व है। असावधानी की अवस्था में किए गए कार्यों से व्यक्ति स्वयं तथा अन्य लोग भी प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए पाँचवाँ शील आत्मसंयम, जागरूकता और जिम्मेदार निर्णय लेने को प्रोत्साहित करता है।

4. पंचशील का दार्शनिक महत्व- पंचशील को केवल निषेधों की सूची के रूप में नहीं समझना चाहिए। प्रत्येक शील के पीछे एक सकारात्मक नैतिक मूल्य निहित है। पहला शील करुणा और अहिंसा को विकसित करता है। दूसरा ईमानदारी और दूसरों के अधिकारों के सम्मान को प्रोत्साहित करता है। तीसरा जिम्मेदारी और पारस्परिक सम्मान की भावना विकसित करता है। चौथा सत्यनिष्ठा और जिम्मेदार संचार को बढ़ावा देता है। पाँचवाँ सजगता और आत्मसंयम को विकसित करता है। इस प्रकार पंचशील व्यक्ति के विचार, वाणी और कर्म के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायता करता है। बौद्ध नैतिकता के अनुसार व्यक्ति के बाहरी व्यवहार का संबंध उसके मानसिक भावों से भी होता है। लोभ, द्वेष, अज्ञान और असावधानी जैसे मानसिक तत्व हानिकारक व्यवहार को जन्म दे सकते हैं, जबकि उदारता, करुणा, प्रज्ञा और सजगता नैतिक व्यवहार को विकसित करते हैं। इस दृष्टि से पंचशील चरित्र निर्माण की एक व्यावहारिक पद्धति के रूप में भी समझा जा सकता है।

5. बौद्ध नैतिकता और मानवीय मूल्य- पंचशील का संबंध सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से देखा जा सकता है। यद्यपि इन सिद्धांतों का विकास बौद्ध धार्मिक-दर्शनिक परंपरा में हुआ, लेकिन इनके नैतिक मूल्य व्यापक मानवीय संदर्भ में

भी उपयोगी हैं।[15]

अहिंसा : शांति और जीवन के सम्मान को बढ़ावा देती है।

ईमानदारी : व्यक्तियों के बीच विश्वास को मजबूत करती है।

जिम्मेदार संबंध : गरिमा और पारस्परिक सम्मान की रक्षा करते हैं।

सत्यपूर्ण वाणी : सामाजिक विश्वास को मजबूत करती है।

सजगता और आत्मसंयम : जिम्मेदार निर्णय लेने की क्षमता को विकसित करते हैं।

ये मूल्य परिवार, शैक्षणिक संस्थानों, कार्यस्थलों और समुदायों के स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक हैं। बौद्ध नैतिकता यह भी मानती है कि नैतिक विकास की शुरुआत व्यक्ति से होती है। सामाजिक परिवर्तन केवल बाहरी संस्थागत व्यवस्था से नहीं, बल्कि व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन से भी जुड़ा होता है। जब व्यक्ति अपने कार्यों के परिणामों के प्रति अधिक जागरूक होता है, तो सामाजिक संबंधों में सद्भाव की संभावना बढ़ती है।

6. समकालीन समाज में पंचशील की प्रासंगिकता- आधुनिक विश्व ने विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, लेकिन इसके साथ हिंसा, भ्रष्टाचार, गलत सूचना, शोषण, पर्यावरणीय संकट और अनियंत्रित उपभोग जैसी अनेक समस्याएँ भी सामने आई हैं। पंचशील इन समस्याओं के प्रति एक सरल लेकिन व्यापक नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अहिंसा का सिद्धांत शांति की संस्कृति को बढ़ावा दे सकता है। अदत्त वस्तु को ग्रहण न करने का सिद्धांत आर्थिक नैतिकता और ईमानदारी को मजबूत कर सकता है। जिम्मेदार यौन आचरण मानवीय गरिमा और सम्मान की रक्षा करता है। सत्यपूर्ण वाणी गलत सूचना और सामाजिक तनाव को कम करने में सहायक हो सकती है। मादक पदार्थों से बचना तथा सजग जीवन-शैली व्यक्तिगत और सामाजिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देती है। इन सिद्धांतों को मूल्य-आधारित शिक्षा में भी उपयोग किया जा सकता है। शैक्षणिक संस्थानों में इन्हें धार्मिक निर्देश के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय ईमानदारी, करुणा, जिम्मेदारी, शांतिपूर्ण व्यवहार और नैतिक नागरिकता जैसे मानवीय मूल्यों के संदर्भ में समझाया जा सकता है।[12]

7. बौद्ध दर्शन और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व- यद्यपि पर्यावरणीय नैतिकता एक स्वतंत्र शैक्षणिक क्षेत्र के रूप में अपेक्षाकृत आधुनिक है, फिर भी बौद्ध दर्शन के सिद्धांतों का पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के संदर्भ में अध्ययन किया जा रहा है। बौद्ध दर्शन में परस्पर निर्भरता, करुणा, संयम और अत्यधिक आसक्ति से मुक्ति जैसे विचार पर्यावरण-अनुकूल दृष्टिकोण को प्रोत्साहित कर सकते हैं। असीमित इच्छाओं पर आधारित उपभोक्तावाद प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन और पर्यावरणीय क्षरण को बढ़ा सकता है। इसके विपरीत बौद्ध दर्शन में संयम और सजग उपभोग की अवधारणाएँ एक वैकल्पिक नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।

पहले शील में जीवित प्राणियों को हानि न पहुँचाने का सिद्धांत भी पशुओं और अन्य जीवों के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ावा दे सकता है। इसी प्रकार परस्पर निर्भरता की अवधारणा व्यक्ति को यह समझने में सहायता करती है कि मानव कल्याण स्वस्थ पारिस्थितिक तंत्रों से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार बौद्ध नैतिकता सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, जैव-विविधता संरक्षण और जिम्मेदार उपभोग जैसे आधुनिक विषयों की चर्चा में महत्वपूर्ण वैचारिक योगदान दे सकती है।

8. बौद्ध नैतिकता, शांति और सामाजिक सद्भाव- शांति केवल शारीरिक संघर्ष की अनुपस्थिति का नाम नहीं है। इसमें घृणा, शत्रुता, अन्याय और हानिकारक संचार को कम करना भी शामिल है। बौद्ध दर्शन क्रोध और द्वेष पर नियंत्रण तथा करुणा और मैत्री के विकास पर विशेष बल देता है। पंचशील व्यक्तिगत स्तर पर व्यवहार को नियंत्रित करके सामाजिक सद्भाव में योगदान दे सकता है। अहिंसा शारीरिक क्षति को कम करती है, ईमानदारी विश्वास को बढ़ाती है, जिम्मेदार संबंध शोषण को कम करते हैं, सत्यपूर्ण वाणी संघर्ष को कम कर सकती है और सजगता आवेगपूर्ण व्यवहार को नियंत्रित करने में सहायता करती है5। विविधताओं से युक्त समाज में, जहाँ विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और सामाजिक पृष्ठभूमियों के लोग साथ रहते हैं, ये सिद्धांत शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए विशेष रूप से उपयोगी हो सकते हैं।

9. चर्चा- पंचशील यह दर्शाता है कि बौद्ध दर्शन नैतिक व्यवहार को व्यक्ति के आंतरिक परिवर्तन से जोड़ता है। इसका

आधार मुख्यतः बाहरी दंड या पुरस्कार नहीं है, बल्कि व्यक्ति को अपने कार्यों के परिणामों को समझने और स्वेच्छा से नैतिक अनुशासन विकसित करने के लिए प्रेरित करना है। पंचशील की एक प्रमुख विशेषता इसकी सरलता है। यह मानव व्यवहार के पाँच महत्वपूर्ण क्षेत्रों—हिंसा, संपत्ति, व्यक्तिगत संबंध, वाणी और मानसिक सजगता—को संबोधित करता है। साथ ही इन सिद्धांतों को विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में व्यापक नैतिक संदर्भ में समझा जा सकता है। समकालीन समाज में इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता के लिए बौद्ध धर्म को केवल धार्मिक व्यवस्था के रूप में देखना आवश्यक नहीं है। इन्हें अहिंसा, उत्तरदायित्व, सजगता और करुणा पर आधारित नैतिक दर्शन के रूप में भी समझा जा सकता है। हालाँकि पंचशील का पालन केवल यांत्रिक रूप से नियमों का अनुसरण करना नहीं है। बौद्ध नैतिकता में व्यक्ति की मानसिक अवस्था और उसके उद्देश्य को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। इसलिए वास्तविक नैतिक आचरण तभी सार्थक होता है जब उसके साथ जागरूकता, समझ और करुणा भी जुड़ी हो।

10. निष्कर्ष- बौद्ध दर्शन मानव जीवन के प्रति एक व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसमें नैतिक आचरण, मानसिक अनुशासन, प्रज्ञा, करुणा और मुक्ति की अवधारणाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। व्यावहारिक स्तर पर पंचशील बौद्ध गृहस्थ अनुयायियों के नैतिक जीवन का महत्वपूर्ण आधार है। जीवन के प्रति सम्मान, दूसरों की संपत्ति का सम्मान, जिम्मेदार व्यक्तिगत संबंध, सत्यपूर्ण संचार तथा सजगता इसके प्रमुख नैतिक आयाम हैं। समकालीन समाज में इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता इसलिए बनी हुई है क्योंकि आधुनिक समस्याओं में हिंसा, असत्य, शोषण, गैर-जिम्मेदार संचार, अत्यधिक इच्छाएँ और आत्मसंयम की कमी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पंचशील व्यक्ति को अपने व्यवहार और उसके परिणामों का मूल्यांकन करने तथा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व विकसित करने के लिए एक नैतिक आधार प्रदान करता है। इन सिद्धांतों का महत्व केवल व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं है। अहिंसा शांति को बढ़ावा दे सकती है, ईमानदारी सामाजिक विश्वास को मजबूत कर सकती है, जिम्मेदार संबंध मानव गरिमा की रक्षा कर सकते हैं, सत्यपूर्ण संचार गलत सूचना को कम कर सकता है तथा सजगता जिम्मेदार निर्णय लेने में सहायता कर सकती है। इसी प्रकार करुणा, संयम और परस्पर निर्भरता से संबंधित बौद्ध विचार पर्यावरणीय उत्तरदायित्व और सतत जीवन-शैली की समकालीन चर्चाओं में योगदान दे सकते हैं। अतः बौद्ध दर्शन और पंचशील को केवल ऐतिहासिक अथवा धार्मिक अवधारणाओं के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। ये एक ऐसे स्थायी नैतिक ढाँचे का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके मूल्यों के माध्यम से व्यक्तिगत कल्याण, सामाजिक सद्भाव, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार व्यवहार को प्रोत्साहित किया जा सकता है। आधुनिक समाज में पंचशील की विशेष उपयोगिता इस बात में निहित है कि यह व्यक्तिगत नैतिक विकास को व्यापक सामाजिक एवं पर्यावरणीय उत्तरदायित्व से जोड़ता है।

संदर्भ

1. Acep, L. (2025). Buddhist ecology and environmental ethics: A multiple-case study in Indonesia. Jurnal Nyanadassana: Jurnal Penelitian Pendidikan, Sosial dan Keagamaan, 4(2), 110–121.
2. Bodhi, B. (2012). The noble eightfold path: The way to the end of suffering. Buddhist Publication Society.
3. Bodhi, B. (Ed.). (2012). The numerical discourses of the Buddha: A complete translation of the Anguttara Nikaya. Wisdom Publications.
4. Capper, D. (2024). Buddhist environmental ethics and climate change. Religion Compass.
5. Collins, S. (1990). Selfless persons: Imagery and thought in Theravada Buddhism. Cambridge University Press.
6. Gethin, R. (1998). The foundations of Buddhism. Oxford University Press.
7. Harvey, P. (2000). An introduction to Buddhist ethics: Foundations, values and issues. Cambridge University Press.
8. Harvey, P. (2013). An introduction to Buddhism: Teachings, history and practices (2nd ed.). Cambridge

University Press.
9. Keown, D. (2001). The nature of Buddhist ethics. Palgrave.
10. Keown, D. (2005). Buddhism: The basics. Routledge.
11. Loy, D. R. (2003). The great awakening: A Buddhist social theory. Wisdom Publications.
12. Phasuko, P. W., - Kaewwilai, M. (2025). From Buddhadhamma to ecological harmony: Buddhist ethics as a pathway to sustainable wellbeing. The Journal of International Buddhist Studies College.
13. Rahula, W. (1974). What the Buddha taught (2nd ed.). Grove Press.
14. Sivaraksa, S. (1992). Seeds of peace: A Buddhist vision for renewing society. ParallaÛ Press.
15. Taina, L., - Dowarah, K. (2025). Buddhist ecological ethics in preservation of indigenous culture: A study in Tinsukia District of Assam. International Journal of Research and Innovation in Social Science, 168–175.
16. Thich Nhat Hanh. (1998). The heart of the Buddha's teaching: Transforming suffering into peace, joy, and liberation. Parallax Press.
17. Wang, J., - Tan, J. Q. (2024). Towards a holistic Buddhist eco-ethics. Religions, 15(7), 844.

Rajvir Singh Ojha (Retired Professor)
Department of Zoology, Raja Balwant Singh College, Agra - 282002
Uttar Pradesh, India
Mobile: 9411464946
Residence: 51 Girraj Nagar, Lawyers colony, Agra-282005